प्रथम पुष्प

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल

एवं

भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति

(व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

लेखक एवं सम्पादक

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रकाशक

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

प्राप्ति स्थान : श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी
गोदीकों का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२ ००३

श्रुत पंचमी
सन् १९७८

मूल्य : २० रुपये
मूल्य : ३० रुपये

मुद्रक : मनोज प्रिन्टर्स
जयपुर।

अध्यक्ष की ओर से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की ओर से प्रकाशित "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" पुस्तक को पाठकों के हाथों में देते हुये मुझे बड़ी प्रसन्नता है। प्रस्तुत पुस्तक महावीर ग्रन्थ अकादमी का प्रथम प्रकाशन है जो समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों मे प्रकाशित करने के उद्देश्य से स्थापित की गयी है। हिन्दी भाषा में जैन कवियो द्वारा निबद्ध विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के साहित्य शोध विभाग की ओर से डा० कासलीवाल के सम्पादन में राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की *ग्रन्थ सूचियो के पांच भाग प्रकाशित हुए हैं उनमें जैन कवियों की सैकड़ों रचनाओं* का उल्लेख मिलता है। डा० कासलीवाल जी ने "राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" तथा "महाकवि दौलतराम कासलीवाल-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" इन दो पुस्तकों के माध्यम से जैन कवियों के महत्वपूर्ण साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया है जिनका सभी ओर से स्वागत हुआ है। समाज में कितनी ही उच्चस्तरीय प्रकाशन संस्थायें हैं लेकिन हिन्दी मे निबद्ध जैन कवियों के साहित्य के प्रकाशन की कहीं कोई योजना नही दिखलायी दी। डा० कासलीवाल जी ने एवं उनके छोटे भाई वैद्य प्रभुदयाल जी जैन ने जब मुझे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की योजना के बारे में बतलाया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने तत्काल इस ओर आगे कार्य करने के लिये उनसे आग्रह किया। ग्रन्थ अकादमी की स्थापना डा० कासलीवाल की सूझबूझ का प्रतिफल है। मुझे यह लिखते हुये प्रसन्नता है कि अकादमी की इस योजना का सभी ओर से स्वागत हो रहा है।

"महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" ग्रन्थ अकादमी का सन् १९७८ का प्रथम प्रकाशन है जिसमें १७ वी शताब्दी के प्रथम चरण में होने वाले दो प्रमुख कवियो का परिचय एव उनकी मूल कृतियों के पाठ दिये गये हैं। इसी वर्ष में अकादमी की ओर से दो भाग और प्रकाशित किये जावेंगे जिनमें कविवर बूचराज एवं महाकवि ब्रह्म जिनदास तथा उनके समकालीन कवियों की कृतियां एवं उनकी

मूल्यांकन रहेगा। इन पुस्तकों से विश्वविद्यालयों में शोध करने वाले विद्वानों एवं विद्यार्थियों को इस दिशा में सामग्री भी उपलब्ध हो सकेगी और उन्हें जैन ग्रंथ भण्डारों में कम भागना पड़ेगा।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की योजना को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसकी अधिक से अधिक संख्या में संचालन समिति के सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य के रूप में समाज का सहयोग प्राप्त हो। यदि अकादमी के ५०० विशिष्ट सदस्य एवं ५१ सचालन समिति सदस्य बन जावें तो अकादमी की अपनी योजना के क्रियान्वयन में पूर्ण सफलता मिल सकेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज के साहित्य प्रेमी महानुभावों का इस दिशा में पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। मैं समाज को यह अवश्य विश्वास दिलाना चाहता हूं कि जिस उद्देश्य को लेकर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना हुई है उसमें वह बराबर आगे बढ़ती रहेगी तथा पांच वर्ष की अवधि में अर्थात् सन् १९८२ तक हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रस्तुत किया जा सकेगा। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि अकादमी को साहु अशोककुमारजी जैन का संरक्षण प्राप्त है।

अन्त में मैं डॉ० कासलीवाल जी का आभारी हूं जिन्होंने अपना समस्त जीवन जैन साहित्य की सेवा में समर्पित कर रखा है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना उन्हीं की कल्पनाओं का साकार रूप है। प्रस्तुत पुस्तक के वे ही लेखक एवं सम्पादक हैं। इसके अतिरिक्त सम्पादक मण्डल के सभी विद्वानों का आभारी हूं जिन्होंने इसे सर्वोपयोगी बनाने में अपना योग दिया है। साथ ही उन सभी महानुभावों का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने अकादमी की सदस्यता स्वीकार करके साहित्य सेवा की इस सुन्दर योजना को मूर्त्त रूप दिया है।

२३६ टी. एच. रोड़ कन्हैयालाल जैन
मद्रास

लेखक की कलम से

जैन कवियों द्वारा निबद्ध हिन्दी साहित्य कितना विशाल एवं व्यापक है इसका अनुमान वे ही कर सकते हैं जिन्होंने शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत पाण्डुलिपियों को देखा है तथा उनके अन्दर तक प्रवेश किया है। अब तक जितने भी जैन कवियों से सम्बन्धित ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं उनमें महाकवि बनारसीदास, महाकवि दौलतराम कासलीवाल, एवं महा पंडित टोडरमल के अतिरिक्त शेष सभी ग्रन्थ परिचयात्मक हैं और जिनमें लेखक का सामान्य परिचय एवं उसकी रचनाओं के नाम गिना दिये गये हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना पचास से भी अधिक हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधि जैन कवियों के मूल्यांकन एवं उनकी रचनाओं के प्रस्तुतीकरण के लिये हुई है। प्रस्तुत ग्रन्थ अकादमी का प्रथम पुष्प है जिसमें संवत् १६०१ से १६४० तक होने वाले प्रमुख दो कवियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और ये दो कवि हैं — ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति। ब्रह्म रायमल्ल ढूंढाड प्रदेश के कवि थे जबकि त्रिभुवनकीर्ति बागड़ एवं गुजरात प्रदेश मे अधिक रहे थे।

ब्रह्म रायमल्ल एवं त्रिभुवनकीर्ति दोनों ही लोक कवि थे। इन कवियों ने अपनी कृतियों की रचना जन सामान्य की रुचि एवं भावना के अनुसार की थी। ब्रह्म रायमल्ल पूर्ण रूप से घुमक्कड कवि थे जिन्होंने ढूंढाड प्रदेश के प्रमुख नगरों में विहार किया और अपने विहार की स्मृति में किसी न किसी काव्य की रचना करने में सफल हुये। कवि ने अपने काव्यों मे पौराणिक परम्परा का निर्वाह करते हुये तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया हैं। ब्रह्म रायमल्ल के सभी प्रमुख काव्य किसी न किसी नवीनता को लिये हुये हैं। कवि की परमहंस चौपई आध्यात्मिक कृति होने पर भी सामाजिकता से ओत प्रोत है। प्रस्तुत भाग में कवि के दो काव्य प्रद्युम्नु रास एवं श्रीपाल रास पूर्ण रूप से तथा परमहंस चौपई एवं भविष्यदत्त चौपई के एक भाग को ही दिया गया है। शेष रचनाओं के पाठों की पृष्ठ संख्या अधिक हो जाने के भय से नही दिया जा सका। इसी तरह भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति के दो काव्यों में से एक जम्बूस्वामी रास के पाठ को ही दिया गया है।

प्रस्तुत भाग में उक्त दो कवियों का जीवन परिचय के साथ ही उनके काव्यों का अध्ययन भी प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर काव्यों की विशेषताओं के साथ साथ कवि की काव्य शक्ति का भी परिचय प्राप्त हो सकेगा। दोनों ही कवि संगीतज्ञ

थे इसलिये उन्होंने अपने काव्यों को कितनी ही राग एवं ढाली में प्रस्तुत किया है। वास्तव में उनके काव्य गेय काव्य बन गये हैं जिन्हें भाव विभोर होकर श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है।

ब्रह्म रायमल्ल ने अपना जीवन ग्रन्थ लिपिक के रूप में प्रारम्भ किया था। सौभाग्य से उनके स्वयं द्वारा लिपिबद्ध गुटका जयपुर के ही पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है जिसका एक चित्र पाठकों के अवलोकनार्थ दिया गया है। इसी तरह यद्यपि स्वयं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति द्वारा लिपिबद्ध पाण्डु-लिपि प्राप्त नहीं हो सकी है लेकिन जिस गुटके में उनके काव्यों का संग्रह है वह भी उन्हीं की परम्परा में होने वाले ब्रह्म सामल द्वारा लिपिबद्ध है।

प्रस्तुत भाग के संपादन में जिन तीन अन्य विद्वानों आदरणीय डा. सत्येन्द्रजी, डा० माहेश्वरी जी एव पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हू। आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी के प्रति किन शब्दो में आभार व्यक्त करू, उन्होंने पुस्तक के सम्बन्ध में 'दो शब्द' लिखने की महती कृपा की है।

इस अवसर पर मैं श्रीमान् बा० अनूपचन्द जी जैन दीवान व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर जयपुर एवं श्री प्रेमचन्द जी सौगाणी व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा तेरहपथी मन्दिर जयपुर का भी आभारी हू जिन्होंने कवि की मूल पाण्डुलिपियां उपलब्ध करायी है। श्री प्रकाशचन्द जी वैद का भी आभारी हूं जिन्होने 'परमहस चौपई' की प्रति उपलब्ध कराने मे सहयोग प्रदान किया है। इनके अतिरिक्त श्री महेशचन्द जी जैन का भी आभारी हू जिन्होंने पुस्तक की साज-सज्जा में सहयोग दिया है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

दो शब्द

मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूं कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के इस 'प्रथम पुष्प' के लिए मुझ से 'दो शब्द' लिखने को कहा गया है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर के इस प्रथम पुष्प में महाकवि 'ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" के ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं। इन ग्रन्थों का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन डा० कासलीवाल ने किया है। हिन्दी साहित्य के अनुसंधान के क्षेत्र में डा० कासलीवाल का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्होंने हिन्दी जैन साहित्य के योगदान की ऐतिहासिक स्थापना की है। जैन ग्रन्थ भण्डारों की ग्रन्थ सूचियां प्रकाशित कर के इन भण्डारों मे उपलब्ध ग्रन्थों के नाम हस्तामलकवत् कर दिये है। इस भगीरथ प्रयत्न में इन्हें सधारू का 'प्रद्युम्न चरित' मिला जिसका सम्पादन करके भी इन्होंने यश अर्जन किया। यह प्रद्युम्न चरित सूर पूर्व ब्रज भाषा का प्रथम महाकाव्य माना जा सकता है।

महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की स्थापना में भी डा० कासलीवाल का ही प्रमुख हाथ रहा है। इस अकादमी की पंचवर्षीय योजना का दो सूत्री कार्यक्रम बनाया गया है। इस का द्वितीय सूत्र इस प्रकार है--

१. २० भागों में जैन कवियों द्वारा निबद्ध समस्त हिन्दी साहित्य का प्रकाशन।

यह सूत्र ही हिन्दी साहित्य की समृद्धि को प्रकाश में लाने और उसके इतिहास की कितनी ही अचर्चित और उपेक्षित कड़ियों को उभार कर ससंदर्भ उन्हें यथास्थान लगाने का श्लाघ्य कार्य करेगा।

महावीर ग्रन्थ अकादमी संकल्पबद्ध होकर पंचवर्षीय योजना का कार्य सम्पादित कर रही है. यह इस 'प्रथम पुष्प' से सिद्ध होता है।

आज यह 'प्रथम पुष्प' पाठकों के सामने है और इसमें "ब्रह्म रायमल्ल और त्रिभुवनकीर्ति" के कृतित्व का प्रकाशन हुआ है। यदि इन दोनों कवियों के ग्रन्थों का पाठ ही प्रकाशित करा दिया गया होता तब भी इस कार्य की प्रशंसा होती और अकादमी का योगदान ऐतिहासिक माना जाता। किन्तु सोने में सुगन्ध की भांति डा० कासलीवाल ने परिश्रमपूर्वक पाठ सम्पादित करके ग्रन्थ तो प्रकाशित किये ही

हैं, साथ ही एक विशद परिचयात्मक और विवेचनात्मक भूमिका देकर इन ग्रन्थों के सभी परिपार्श्वों का उद्घाटन कर दिया है।

ब्रह्म रायमल्ल सूर–तुलसी के युग के कवि हैं। इस युग के जैन कवियों के सम्बन्ध मे इस 'प्रथम पुष्प' के विद्वान् सम्पादक के ये शब्द महत्वपूर्ण हैं :

"इन वर्षों में जैन कवि भी पर्याप्त संख्या में हुए और वे भी देश में व्याप्त भक्ति धारा से अछूते नहीं रह सके। उनकी कृतियां भी भक्ति रस में आप्लावित होकर सामने आयी और इस दृष्टि से भट्टारक शुभचन्द्र, पाण्डे राजमल्ल, भट्टारक वीरचन्द, सुमतिकीर्ति, ब्रह्म विद्याभूषण, ब्रह्म रायमल्ल, उपाध्याय साधुकीर्ति, भीखम कवि, कनक सोम, वाचक मालदेव, नवरंग, कुशल लाभ, सकलभूषण, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने रास फागु, वेलि, चौपाई एवं पदों के माध्यम से हिन्दी साहित्य की महती सेवा की है। इन कवियों में से हम सर्वप्रथम ब्रह्म रायमल्ल का परिचय उपस्थित कर रहे हैं, क्योंकि संवत् १६०१ से १६४० तक की अवधि में ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के प्रतिनिधि कवि रहे हैं।"

डा० कासलीवाल की उक्त सूची को और संवर्धित किया जा सकता है, उन उल्लेखों के आधार पर जो जहां तहां हुए हैं। ऐसी सूची में ये कवि स्थान पा सकते हैं : १–तल्लमल्ल, २–कल्याणदेव, ३–बनारसीदास, ४- मालदेव , ५–विजयदेव सूरि, उदयराज, ७-ऋषभदास, ८–रायमल्ल ब्रह्मचारी (मिश्र बधुओ के अनुसार इनके ग्रन्थ हैं : भविष्यदत्त चरित्र और सीताचरित्र तथा रचना काल १६६४, विवरण–सकलचन्द्र भट्टारक के शिष्य थे)। ९–रूपचन्द, १०–हेमविजय, ११–विद्याकमल, १२–समय सुन्दर उपाध्याय।

सूर–तुलसी युग के इन जैन कवियों की सूची में नयी खोज रिपोर्टों से तथा अन्य खोजों से और नाम भी बढ़ाये जा सकते हैं।

हमने जो सूची दी है उसमें रायमल्ल ब्रह्मचारी का नाम आया है। यह मिश्र बन्धु विनोद की लेखक संख्या ३५७ के कवि है। इन्हें मिश्र बन्धुओं ने 'सकलचन्द्र भट्टारक का शिष्य बताया है। डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ की भूमिका में तो बता दिया है कि ब्रह्म रायमल्ल में ब्रह्म का अभिप्राय 'ब्रह्मचारी' से ही है। अतः रायमल्ल ब्रह्मचारी और ब्रह्मरायमल्ल मे अभेद विदित होता है।

डा० कासलीवाल ने इस भूमिका में विद्वत्तापूर्वक यह भी सिद्ध कर दिया है कि ये ब्रह्म रायमल्ल गुजराती ब्रह्मरायमल्ल से भिन्न है। गुजराती ब्रह्म रायमल्ल संस्कृत के विद्वान थे।

पर मिश्र बन्धु विनोद के उक्त कवि क्या कोई तीसरे ब्रह्म रायमल्ल हैं ? संभव हो सकता है कि मिश्र बन्धु विनोद के टिप्पणीकार ने 'सकलकीर्ति' मुनिवर गुणवंत को 'सकलचन्द्र' मान लिया हो। 'भविष्यदत्त चरित्र' इस संग्रह में दी गयी भविष्यदत्त चौपई ही हो सकती है। दूसरा ग्रन्थ 'सीताचरित्र' भी इस संग्रह की 'हनुमन्त कथा' का ही दूसरा नाम हो सकता है ? संवत् १६६४ रचनाकाल के लिए या तो गलत पढ़ लिया गया है या सम्भव है कि यह लिपिकाल ही हो ? किन्तु यहां कठिनाई यह है कि मिश्रबन्धु विनोद के उक्त उल्लेख के प्रामाणिक स्रोत का पता लगाना सम्भव नहीं, अतः यही कह सकते हैं कि डा० कासलीवाल ने अपनी भूमिका में जितना कुछ लिखा है वह प्रामाणिक है, और इस ग्रन्थ के द्वारा दो हिन्दी के महत्वपूर्ण और स्वल्पज्ञात कवियों का उद्घाटन हो रहा है।

ब्रह्म रायमल्ल महाकवि केशवदास के समकालिक हैं, और इनके काव्य में जहां-तहां केशवदास से साम्य सा भी मिलता है।

ब्रह्म रायमल्ल का 'पोदनपुर नगर वर्णन' का एक उदाहरण यहाँ देना उपयुक्त होगा :

मारण नाम न सुनजे जहां,
खेलत सारि मारि जे तहां
हाथ पाई नवि छेदै कान
सुभद्र खाय ते छेदै पान।
बंधन नाइ फूल बंधेर
बधन कोई किसहा न देइ।
कामणि नैण काजल होइ
हियड़ै मनुस न कालो होइ।
सर्पण परायो छिद्र जु गहै।
कोई किसका छिद्र न कहै।
गुगो कोई न दीसै सुनि।
पर अपवाद रहै धरि मौन
चोरी चोर न दीसे जहां
घडी नीर मैं चोरों जहां
दंड नाम को किस ही न लेई
मनवचकाइ मुनि दड देइ।।

और ऐसे ही आलंकारिक शिल्प में केशव ने लिखा था—

मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाई।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाई ॥
दुर्गति दुर्जन ही जु कुटिल गति सरितन ही में
श्रीफल की अभिलाष प्रकट कविकुल के जी में
अति चंचल जहं चलदलै विधवा बनी न नारि
मन मोह्यां ऋषि राज को अद्भुत नगर निहारि।

डा० कासलीवाल का प्रयत्न निश्चय ही स्वागत योग्य है। उन्होंने ब्रह्म रायमल्ल के ग्रन्थों का ही उद्धार नहीं किया, वरन् विस्तृत भूमिका में कवि और उसके काव्य के सभी पक्षों पर अध्यवसाय पूर्वक प्रकाश डाला है। ऐसी भूमिका से ही इस कवि के गहन अध्ययन के लिए रुचि जाग्रत होती है।

इस महान् प्रयत्न में सम्पादक मण्डल में मुझे भी सम्मिलित करके जो उदारता और कृपा दिखाई है, और दो शब्द लिखने का अवसर दिया है, उसके लिए कृतज्ञता व्यक्त कर सकने योग्य शब्द मेरे पास नहीं।

हां, मैं आशा करता हूं कि महावीर ग्रन्थ अकादमी के प्रकाशनों से समृद्ध जैन साहित्य का महत्वपूर्ण अंश भण्डारों के कक्षों से बाहर आयेगा। मैं इस प्रयत्न की सफलता हृदय से चाहता हू।

डा० सत्येन्द्र

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

एक परिचय

जैनाचार्यों, भट्टारकों एवं विद्वानों ने देश की प्रत्येक भाषा में विशाल साहित्य की रचना करके धर्म एवं संस्कृति की सुरक्षा एवं उसके विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी विशाल साहित्य को प्रकाश में लाने की दृष्टि से भगवान महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण वर्ष में साहित्य प्रकाशन की कितनी ही योजनाएं बनी। भारतीय ज्ञानपीठ देहली, विद्वत् परिषद्, साहित्य शोध विभाग, जयपुर, जैन विश्व भारती लाडनूं, शास्त्री परिषद् एवं पचासों अन्य संस्थाओं ने अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन भी किया लेकिन इतने प्रयासों के उपरान्त भी हम हमारे विशाल साहित्य को जन साधारण तक नहीं रख पाये तथा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कार्य करने वाले प्रोफेसरों एवं शोध छात्रों को अभीष्ट पुस्तकें उपलब्ध नहीं करा सके। इसलिये जब कभी विद्वानों, शोधार्थियों एवं पाठकों द्वारा किसी आचार्य एवं विद्वान् की अथवा किसी विशिष्ट विषय पर उच्चस्तरीय पुस्तक की मांग की जाती है तो हम इधर उधर देखने लगते हैं और कभी-कभी एक दो पुस्तकों के नाम भी नहीं बता पाते। इसके अतिरिक्त आजकल जिस प्रकार साहित्य के विविध पक्षों के प्रस्तुतीकरण की नवीन शैली अपनायी जा रही है उससे हम अपने आपको कोसों दूर पाते हैं।

उत्तरी भारत एवं विशेषतः राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं देहली मे स्थापित जैन ग्रन्थागारों मे लाखों पाण्डुलिपियां संग्रहीत है। श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग द्वारा हस्तलिखित शास्त्रों की जो पाच भागो मे ग्रन्थ सूचियां प्रकाशित हुई है उनसे हमारे विशाल साहित्य के दर्शन हो सके है तथा पचासो विद्वानो को साहित्यिक क्षेत्र मे कार्य करने की प्रेरणा मिली है। लेकिन प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी मे जिन आचार्यों एवं विद्वानों ने अनेकों ग्रन्थों की संरचना की है उनके विषय में सामान्य परिचय के अतिरिक्त उनका अभी तक न तो हम मूल्यांकन कर पाये हैं और न उनकी मूलकृतियों को प्रकाशित ही कर सके हैं।

गत कुछ वर्षों से ऐसी ही किसी एक संस्था की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा था जो योजना बद्ध ढंग से सपूर्ण भाषागत जैन साहित्य का प्रकाशन कर सके। अक्टूबर ७६ में अकस्मात् श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का नाम सामने आया और संस्था का यही नाम रखना उचित समझा। नामकरण के साथ ही एक पंचवर्षीय योजना भी तैयार की।

सर्व प्रथम जैन कवियों द्वारा निबद्ध हिन्दी साहित्य को प्रकाशित करने का विचार सामने आया क्योंकि सवत् १४०१ से लेकर १६०० तक हिन्दी एवं राजस्थानी में जिस प्रकार के विपुल साहित्य का निर्माण किया गया वह सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है और उसके विस्तृत परिचय की महती आवश्यकता है। हिन्दी भाषा में जिस प्रकार जायसी, सूरदास, मीरा, तुलसीदास, रसखान, बिहारी, दादू, रज्जब, जैसे पचासो कवि हुये जिनके काव्यो के विविध पक्षों पर शोध कार्य हो चुका है और आगे भी होता रहेगा तथा जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को नये-नये आयामों के आधार परखा जा रहा है लेकिन इस प्रकार से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों में जैन कवियों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता और यदि कहीं मिलता भी है तो वह एकदम संक्षिप्त एवं अपूर्ण होता है। जैन कवियों में सधारु, राजसिंह, ब्रह्म जिनदास, ज्ञानभूषण, बूचराज, ब्रह्म रायमल्ल, विद्याभूषण, त्रिभुवनकीर्ति, समयसुन्दर, यशोधर, रत्नकीर्ति, सोमसेन, बनारसीदास, भगवतीदास, भूधरदास, द्यानतराय, बुधजन, रूपचन्द, बुलाकीदास, किशनसिंह, दौलतराम जैसे कितने ही महाकवि हैं जिन्होंने हिन्दी में सैकड़ों रचनायें निबद्ध की और उसके विकास में अपना सर्वाधिक योगदान दिया लेकिन इनमें सधारु राजसिंह, बनारसीदास एवं दौलतराम जैसे कुछ कवियों को छोड शेष के सम्बन्ध हम स्वय अन्धेरे में हैं। इसलिये इन कवियों के जीवन एवं व्यक्तित्व के अध्ययन के साथ ही तथा उनकी कृतियों के मूल भाग को सम्पादित एवं प्रकाशित करने की अतीव आवश्यकता है। मूल कृतियों के बिना कोई भी विद्वान् कवियों के मूल्यांकन के कार्य में आगे नहीं बढ़ सकता। और न आज शोधार्थी विभिन्न भण्डारों में जाकर उनकी मूल पाण्डुलिपियो के अध्ययन का कष्ट साध्य परिश्रम करना चाहता है।

इसलिये प्रथम पंचवर्षीय के अन्तर्गत २० भागों में कम से कम पचास जैन कवियों का जीवन परिचय तथा उनके कृतित्व का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करना ही इस महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य निश्चित किया गया है।

इन कवियों के काव्यों के सूक्ष्म अध्ययन के साथ-साथ उनकी प्रमुख कृतियाँ भी प्रकाशित की जावेंगी। अकादमी के प्रथम भाग में महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति को लिया गया है। दोनों ही कवि विक्रम की १७वीं शताब्दि के प्रथम चरण के कवि हैं और जिनका साहित्यिक योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है।

अकादमी द्वारा पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार पुस्तकों के प्रकाशन की संख्या रहेगी।

वर्ष	पुस्तक संख्या
१९७८	३
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

इस योजना के अन्तर्गत जिन कवियों पर प्रकाशन कार्य होगा उनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति
२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं प्रतापकीर्ति
४. महाकवि वीरचन्द एवं महिचन्द
५. विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे।
६. ब्रह्म यशोधर एवं भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र
८. कविवर रूपचन्द, जगजीवन एवं ब्रह्म कपूरचन्द
९. महाकवि भूधरदास एवं बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज

११. महाकवि द्यानतराय
१२. भगवतीदास एवं भाऊकवि
१३. कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज पाटनी
१४. कविवर किशनसिंह, नथमल बिलाला एवं पाण्डे लालचन्द
१५. कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि
१६. कविवर नेमिचन्द्र एवं हर्षकीर्ति
१७. भैया भगवतीदास एवं उनके समकालीन कवि
१८. कविवर दौलतराम एवं छत्तदास
१९. मनराम, मन्नासाह एवं लोहट
२०. २० वीं शताब्दि के जैन कवि

२० भागों में उक्त कवियों के व्यक्तित्व एव कृतित्व का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया जावेगा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कवि की मूल कृतियो के पाठ भी उनमे रहेगे। ऐसे कवियों एवं साहित्य निर्माताओ की सख्या कम से कम ५० होगी।

महावीर ग्रन्थ अकादमी की प्रथम पचवर्षीय योजना करीब २ लाख रुपये की अनुमानित की गयी है जिसके अन्तर्गत २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे। प्रत्येक भाग २५० से ३०० पृष्ठ का होगा। इस प्रकार अकादमी ५-६ हजार पृष्ठों का साहित्य प्रथम पाच वर्षों मे अपने पाठको को उपलब्ध करायेगी। इस योजना की क्रियान्विति के लिये संचालन समिति के ५१ सदस्य जिनमे संरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष उपाध्यक्ष एव निदेशक सम्मिलित हैं, होगे तथा कम से कम ५०० विशिष्ट सदस्य बनाये जावेंगे। विशिष्ट सदस्यो से २०१) रु० तथा सचालन समिति के सदस्यों से (पदाधिकारियो के अतिरिक्त) कम से कम ५०१) रु० लिये जावेंगे। मुझे यह लिखते हुये बड़ी प्रसन्नता होती है कि समाज मे साहित्य प्रकाशन की इस योजना का स्वागत हुआ है तथा अब तक संचालन समिति की सदस्यता के लिये एवं विशिष्ट सदस्यता के लिये १०० से अधिक महानुभावो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। इस प्रकार अकादमी का कार्य चल पड़ा है। अकादमी की संरक्षकता के लिये मैंने श्रावक शिरोमणि स्व० साहु शान्तिप्रसाद जी जैन से अकादमी की योजना भेजते हुये जब निवेदन किया तो वे योजना से अत्यधिक प्रभावित हुये और एक सप्ताह मे ही उन्होंने अपनी स्वीकृति भेज दी। मुझे बड़ा खेद है कि उसके कुछ महीने पश्चात् ही

उनका अकस्मात स्वर्गवास हो गया और वे इसके एक भी प्रकाशन को नहीं देख सके लेकिन मुझे यह लिखते हुये प्रसन्नता है उन्हीं के सुपुत्र साहु अशोक कुमार जी जैन ने हमारे विशिष्ट आग्रह पर अकादमी का संरक्षक बनने की स्वीकृति दे दी है साथ ही में अपना पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया है। इसी प्रकार जब मैंने श्रीमान सेठ गुलाबचन्द जी साहब गंगवाल से उपाध्यक्ष बनने की स्वीकृति चाही तो उन्होंने भी तत्काल ही अपनी स्वीकृति भिजवादी। इसी तरह श्रीमान् लाला अजीतप्रसाद जी जैन ठेकेदार देहली का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने सर्व प्रथम विशिष्ट सदस्यता के लिये और फिर विशेष आग्रह करने पर अकादमी के उपाध्यक्ष के लिये अपनी स्वीकृति भिजवादी।

अकादमी की स्थापना के सम्बन्ध में जब मैंने श्रीमान् सेठ कन्हैयालाल जी सा० जैन पहाड़िया,मद्रास वालों से बात चलायी और उनसे उसकी अध्यक्षता स्वीकार करने के लिये आग्रह किया तो उन्होंने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुये दूसरे ही दिन बातचीत करने के लिये कहा। मै एवं वैद्य प्रभुदयाल जी कासलीवाल भिषगाचार्य दोनों ही दूसरे दिन उनके पास पहुंचे तो उन्होंने अकादमी के कार्य को आगे बढ़ाने के लिये कहा और उसका अध्यक्ष बनना भी स्वीकार कर लिया। इसी तरह श्रीमान् सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल एवं श्री कन्हैयालाल जी सेठी ने भी उपाध्यक्ष बनने की जो स्वीकृति दी है उसके लिये हम उनके आभारी हैं। अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य में मुझे जिनका विशेष सहयोग मिला उनमें श्रीमती सुदर्शना देवी जी छाबड़ा, वैद्य प्रभुदयाल जी भिषगाचार्य, श्रीमती कोकिला जी सेठी, पं० अमृतलाल जी दर्शनाचार्य वाराणसी एवं श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल, श्री महेशचन्द जी जैन, डॉ० चान्दमल जैन एवं डॉ० कमलचन्द सोगाणी उदयपुर के नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। मैं इन सभी महानुभावों का हृदय से आभारी हू जिन्होंने संचालन समिति अथवा विशिष्ट सदस्यता के रूप में अपनी स्वीकृति भेजी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज के साहित्य प्रेमी महानुभाव समूचे हिन्दी जैन साहित्य के प्रकाशन में भागीदार बनकर सहयोग देने का कष्ट करेंगे।

साहित्य प्रकाशन के इस कार्य में कितने ही विद्वानों ने सम्पादक के रूप में और कितने ही विद्वानो ने लेखक के रूप मे अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया है। श्री महावीर अकादमी की इस योजना में हम अधिक से अधिक विद्वानों का सहयोग लेना चाहेंगे। अभी तक देश एवं समाज के कम से कम ३० विद्वानों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। ऐसे विद्वानों मे डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, डा० रामचन्द्र

जी द्विवेदी उदयपुर, डा० दरबारीलाल जी कोठिया वाराणसी, डा० गंगाराम गर्ग, डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, डा० प्रेमचन्द रांवका जयपुर, डा० प्रेमचन्द जैन, पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ, डा० हीरालाल जी महेश्वरी, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री, पं० भंवरलाल जी न्यायतीर्थ एवं डा० नरेन्द्र भानावत जयपुर का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है ।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक

विषय–सूची

पूर्व पीठिका

जैनाचार्यों, भट्टारकों एवं विद्वानों का भारतीय साहित्य को समृद्ध एवं सशक्त बनाने में विशेष योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति के स्वर में स्वर मिलाकर उन्होंने देश की सभी भाषाओं में विशाल साहित्य का निर्माण किया और उसके विकास मे चार चांद लगाये। उन्होंने न किसी भाषा विशेष से राग किया और न द्वेषवश किसी भारतीय भाषा मे साहित्य निर्माण को बन्द किया। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव हिन्दी जैसी राष्ट्रभाषाओं तथा राजस्थानी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू एवं कन्नड़ जैसी प्रादेशिक भाषाओं के विकास मे योग दिया। जैन कवियों ने काव्य, पुराण, सिद्धान्त, अध्यात्म, कथा, ज्योतिष, आयुर्वेद, गणित, छन्द एवं अलंकार जैसे विषयो पर सैंकड़ों ग्रन्थ लिखकर साहित्य सेवा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। जैन कवि जन-जन मे बौद्धिक चेतना जागृत करने मे कभी पीछे नहीं रहे और किसी न किसी विषय पर साहित्य निर्माण करते रहे। देश के जैन ग्रन्थागारो में जो विशाल साहित्य उपलब्ध होता है वह जैन आचार्यों एवं विद्वानों के साहित्य प्रेम का स्पष्ट द्योतक है। इन ग्रन्थागारों मे संग्रहीत साहित्य अत्यधिक व्यापक एवं समृद्ध है। यद्यपि अब तक सकड़ो कृतियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं लेकिन यह प्रकाशन तो उस विशाल साहित्य का एक अंश मात्र है। वास्तव मे जैन ग्रन्थागार साहित्य के विपुल कोष हैं तथा उनमे संग्रहीत साहित्य देश की महान् निधि है।

हिन्दी मे भी जैन विद्वानों ने उस समय लिखना प्रारम्भ किया जब उसमें लिखना पाडित्य से परे समझा जाता था और वे भाषा के पंडित कहलाते थे। यह भेदभाव तो महाकवि तुलसीदास एवं बनारसीदास के बाद तक चलता रहा। हिन्दी मे जैन कवियों ने रास संज्ञक रचनाओं से काव्य निर्माण प्रारम्भ किया। जब अपभ्रंश भाषा का देश मे प्रचार था तब भी इन कवियों ने अपनी दूरदर्शिता के कारण हिन्दी मे भी अपनी लेखनी चलाई और साहित्य की सभी विधाओं को पल्लवित करते रहे और उनमे संस्कृति एवं समाज की मनोदशा का यथार्थ चित्रण करने लगे। जिनदत्त-चरित (सं० १३५४) एवं प्रद्युम्नचरित (सं० १४११) जैसी कृतियां अपने युग की खुली पुस्तकें हैं। जैन कवियों ने हिन्दी की सबसे अधिक एवं सबसे लम्बे समय तक सेवा की तथा उसमे अबाध गति से साहित्य निर्माण करते रहे। लेकिन हिन्दी विद्वानों की जैन ग्रन्थागारों तक पहुंच नहीं होने के कारण वे उसका मूल्यांकन नहीं

कर सके और जब हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास लिखा गया तब जैन भण्डारों में संग्रहीत विशाल हिन्दी साहित्य को पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे महारथी विद्वान् ने यह लिख कर साहित्य की परिधि से बाहर निकाल दिया कि वह केवल धार्मिक साहित्य है और उसमें साहित्यिक तत्त्व विद्यमान नहीं है। रामचन्द्र शुक्ल की इस एक पंक्ति ने जैन विद्वानों द्वारा निर्मित हिन्दी साहित्य का बड़ा भारी अहित किया। उसका फल आज भी उसे भुगतना पड़ रहा है।

समय ने पल्टा खाया। जैन ग्रन्थागारो के ताले खुलने लगे तथा विद्वानों का उस ओर ध्यान जाने लगा। शनैः शनैः जैनाचार्यों का विशाल साहित्य बाहर आने लगा। सर्वप्रथम अपभ्रंश साहित्य पर विद्वानों का ध्यान गया और धनपाल के 'भविसयत्तचरिउ' की पाण्डुलिपि प्राप्त होते ही साहित्यिक जगत में हलचल मच गयी क्योंकि इसके पूर्व हिन्दी के विद्वानों ने समूचे अपभ्रंश साहित्य को ही लुप्त प्रायः साहित्य घोषित कर दिया था। अपभ्रंश के महाकाव्य पउमचरिउ (स्वयंभू) रिट्ठणेमिचरिउ, महापुराण, जम्बूसामिचरिउ जैसे महाकाव्यों का जब पता चला तो महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने रामचन्द्र शुक्ल के विरुद्ध झण्डे गाड़ दिये और महाकवि स्वयंभू के पउमचरिउ को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य घोषित कर दिया। इसके पश्चात् और भी विद्वानों का उस ओर ध्यान गया और उन्होंने जैन कवियों के निर्मित काव्यों का मूल्याकन करके उन्हें हिन्दी के श्रेष्ठ महाकाव्यों की कोटि मे ला बिठाया। ऐसे विद्वानो मे स्वर्गीय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, स्वर्गीय डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० रामसिंह तोमर, एव डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के वर्तमान मूर्द्धन्य विद्वानों मे डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम इस दिशा मे सर्वाधिक उल्लेखनीय है जिन्होने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" मे हिन्दी जैन साहित्य के विषय में जो पक्तिया लिखी हैं वे निम्न प्रकार हैं—

"इधर जैन अपभ्रंश चरित काव्यो की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय के मुहर लगाने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नही है। स्वयम्भू, चतुर्मुख, पुष्पदन्त और धनपाल जैसे कवि केवल जैन होने के कारण ही काव्यक्षेत्र से बाहर नही चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्य कोटि से अलग नही की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाना लगे तो तुलसीदास का रामचरितमानस भी साहित्य क्षेत्र मे अविवेच्य हो जाएगा और जायसी का पद्मावत भी साहित्य-सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा।"[१]

श्री महावीर क्षेत्र के द्वारा राजस्थान के जैन ग्रन्थागारो के सूचीकरण कार्य से अपभ्रंश एवं हिन्दी कृतियों को प्रकाश मे लाने मे बहुत योग मिला। इससे

---

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—पृष्ठ ११ प्रथम सस्करण १९५२

अपभ्रंश की पचासों कृतियाँ प्रकाश में आ सकी। सन् १९५० में जब इस क्षेत्र की ओर से एक प्रशस्ति संग्रह प्रकाशित किया गया तो अपभ्रंश के विशाल साहित्य की ओर विद्वानों का ध्यान गया और हिन्दी के मूर्द्धन्य विद्वानों ने उस अज्ञात साहित्य को हिन्दी के लिये वरदान माना। 'प्रशस्ति संग्रह' प्रकाशन के पश्चात् डा० हरिवंश कोछड़ ने अपभ्रंश साहित्य पर अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जिसमें उसके महत्व पर प्रथम बार अच्छा प्रकाश डाला तथा अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी का ही पूर्वकालिक साहित्य स्वीकार किया। डा० हीरालाल जैन, एवं डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ने अपभ्रंश की कृतियो को प्रकाश में लाने की दृष्टि से अत्यधिक महती सेवा की और महाकवि पुष्पदन्त के तीन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने में सफलता प्राप्त की।

गत २५ वर्षों मे हिन्दी जैन कवियों एवं उनके काव्यों पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जो शोध कार्य हुआ है और वर्तमान मे हो रहा है वह यद्यपि एक रूप मे सर्वे कार्य ही है फिर भी इससे -जैन हिन्दी विद्वानो एव उनकी कृतियों को प्रकाश मे आने में बहुत सहायता मिली है और हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान् यह अनुभव करने लगे हैं कि जैन विद्वानों किकृतियो की केवल धार्मिक साहित्य के बहाने साहित्य जगत् से दूर रखना उनके साथ अन्याय होगा। इसलिये उसको भी वही स्थान प्राप्त होना चाहिये जो अन्य हिन्दी कवियों के साहित्य को प्राप्त है।

जैन कवियो के विशाल साहित्य को देखते हुये अभी तक जो कवि सामने आ सके हैं वे तो 'आटे में नमक' के बराबर ही कहे जा सकते हैं। हिन्दी जैन साहित्य विशाल है और उसकी विशालता के मूल्यांकन के लिये हजारो पृष्ठ भी कम रहेगे। अभी तो ऐसे सकड़ो कवि हैं जिनकी कृतियो का ग्रन्थ सूचियो के अतिरिक्त कही कोई नामोल्लेख भी नही हुआ है। मूल्यांकन की बात का प्रश्न ही सामने नही *आया। ब्रह्म जिनदास जैसे कवियो की रचनाओ को प्रकाशित करने के लिये वर्षों की* साधना चाहिये और हजारो पृष्ठों का मैटर छापने के लिये चाहिये।

ब्रह्म रायमल्ल एक ऐसे ही हिन्दी कवि हैं जिनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही महत्त्वपूर्ण होते हुये भी अभी तक अज्ञात अवस्था को प्राप्त हैं। प्रस्तुत पुस्तक में हम उनके एवं उनके समकालीन (सवत् १६०१ से १६४० तक) होने वाले अन्य कवियो के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर सामान्य रूप से प्रकाश डालने का प्रयास कर रहे हैं। हमारा यह प्रयास कितना सफल रहता है इसका मूल्याकन तो विद्वान् ही कर सकेंगे।

तत्कालीन युग

संवत् १६०१ से १६४० तक का युग हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन की दृष्टि से भक्तिकाल मे आता है। मिश्रबन्धु विनोद में इस काल को

प्रौढ़ माध्यमिक काल (संवत् १५६१ से १६८० तक) में समाहित किया गया है।[2] पं० रामचन्द्र शुक्ल इस काल को पूर्व मध्यकाल-भक्तिकाल (संवत् १३७५ से १७००) के रूप में अभिव्यक्त किया है।[3] आचार्य श्यामसुन्दरदास ने सम्वत् १४०० से १७०० तक के काल को भक्ति युग का काल स्वीकार किया है।[4] इनसे आगे होने वाले डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने इस काल को तारुण्य काल कह कर सम्बोधित किया है। डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ संवत् ७५० से मानते हुए सम्वत् १३७५ से १७०० तक के काल को भक्तिकाल का युग कहा है। इसके पश्चात् होने वाले सभी विद्वानों ने संवत् १७०० तक के काल को भक्तिकाल की संज्ञा दी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का आलोच्य काल संवत् १६०१ से १६४० तक का रखा गया है। जो भक्तिकाल के अन्तर्गत आता है। हिन्दी साहित्य के ये ४० वर्ष भक्तिकाल के स्वर्ण वर्ष कहे जा सकते हैं। सगुण भक्तिधारा के अधिकांश कवियों का साहित्यिक जीवन इन्हीं वर्षों में निखरा और उन्होंने इन्हीं वर्षों मे देश को अपनी मौलिक कृतियाँ समर्पित की। महाकवि सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास जैसे भक्त कवि इसी काल की भेंट हैं। इसलिये ब्रह्म रायमल्ल को हिन्दी के इन महान् कवियों के समकालीन होने का गौरव प्राप्त है। कवि की रचनाओं में भक्ति रस की जो छटा देखने को मिलती है वह सब उसी युग का प्रभाव है। क्योंकि जब चारों ओर भक्ति रस की धारा बह रही हो तब उस धारा से जैन कवि कैसे अछूते रह सकते थे। संवत् १६०१ से १६४० की अवधि मे होने वाले प्रसिद्ध जैनेतर भक्त कवियो का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

कुम्भनदास

ये अष्ट छाप के कवि थे तथा बल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य थे। इनकी जन्म तिथि सम्वत् १५२५ एवं मृत्यु तिथि सम्वत् १६२६ के आस-पास मानी जाती है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि सम्राट् अकबर ने कुंभनदास को फतेहपुर सीकरी बुलवाया था। जिसका उल्लेख उन्होंने अपने एक पद में किया है।[5] इनके द्वारा निबद्ध भक्ति रस के पद कीर्त्तनसंग्रह, कीर्त्तन रत्नाकर, राग कल्पद्रुम आदि में मिलते हैं।

---

२. मिश्रबन्धु विनोद भूमिका पृष्ठ-६३
३. पं रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ-६
४. पं. श्यामसुन्दरराम-हिन्दी साहित्य पृष्ठ २६-२१
५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ४१, ४३
५. भक्तन को कहा सीकरी सो काम
 आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम
 जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी प्रनाम।

तुलसीदास

महाकवि तुलसीदास देश के जनकवि थे। राम काव्य के सबसे बड़े प्रणेता महाकवि तुलसीदास ही माने जाते हैं। ब्रजभाषा एवं अवधि दोनों ही भाषाओं में इन्होंने समान रूप से लिखा है। इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में अत्यधिक मतभेद है लेकिन डा० माताप्रसाद गुप्त ने इनका जन्म सम्वत् १५८९ भादवा शुक्ला ११ माना है।[६] इनकी मृत्यु तिथि सम्वत् १६८० मानी जाती है। महाकवि ने अपनी केवल तीन रचनाओं में रचना संवत् दिया है वह निम्न प्रकार है—

रामचरितमानस	वि० सं० १६३१
पार्वतीमंगल	,, १६४३
कवितावली	,, १६८० के पूर्व

तुलसीदास की उक्त रचनाओं के अतिरिक्त रामगीतावली, सतसई, जानकी मंगल, कृष्णगीतावली, दोहावली आदि ११ रचनाएँ और हैं। महाकवि ने अपने आपको जिस प्रकार रामभक्ति में समर्पित कर दिया था वह जगत प्रसिद्ध है। रामचरितमानस उनका सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक शब्द भक्तिरस से ओतप्रोत है।

नन्ददास

नन्ददास अष्टछाप के कवियों में से श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये रामपुर ग्राम के निवासी थे। इन्हें महाकवि तुलसीदास का भाई बताया जाता है। डा० दीनदयाल गुप्त नन्ददास का जन्म संवत् १५९० के लगभग एवं मृत्यु संवत् १६४३ के लगभग मानते हैं। इनकी २६ रचनाएँ बतायी जाती है जिनमें रास पंचाध्यायी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, सुदामाचरित, रुक्मणी मंगल, भंवर गीत, दानलीला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त नन्ददास के स्फुट पद भी प्राप्त है।

परमानन्ददास

ये भी अष्टछाप के एक कवि थे। डा० दीनदयाल गुप्त के अनुसार ये जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा इनका जन्म कन्नोज में हुआ था। इनकी जन्म तिथि संवत् १५५० तथा मृत्यु तिथि संवत् १६४० मानी जाती है। इनकी दो कृतियाँ दानलीला एवं ध्रुव चरित्र तथा बहुत से पद मिलते हैं।[७]

---

६. तुलसीदास, पृष्ठ १०९–११

७. मिश्र बन्धु विनोद पृष्ठ २३४

सूरदास

महाकवि सूरदास भक्तियुग के महान् कवि थे। ये वल्लभाचार्य के समकालीन थे। इनका जन्म संवत् १५३५ बैशाख सुदी ५ को तथा मृत्यु संवत् १६३८ के लगभग हुई थी। बादशाह अकबर ने इनसे मथुरा में भेंट की थी। सूरदास के पद देश में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं और वे हजारों की संख्या में हैं। अब तक इनकी २५ रचनाओं की प्राप्ति हो चुकी है जिनमे से उल्लेखनीय रचनाएँ निम्न प्रकार है—

१. सूरसागर	२. भागवत भाषा
३. दशमस्कध भाषा	४. सूरदास के पद
५. प्राणप्यारी	६. भवर गीत
७. सूर रामायण	८. नागलीला
९. गोवर्धन लीला	१०. सूर पच्चीसी
११. सूरसागर सार	१२. सूरसारावली
१३. साहित्य लहरी	१४. सूरशतक
१५. दानलीला	१६. मानलीला

मीराबाई

मीराबाई राजस्थानी महिला भक्त कवि थी। मीराबाई के पद जन-जन को कण्ठस्थ है। "मीरा के प्रभु गिरधर नागर" पंक्तियाँ अत्यधिक लोकप्रिय है। मीराबाई का जन्म सवत् १५५५ से १५७३ तक तथा मृत्यु सवत् १६२० से १६३० के बीच हुई थी। बगला भक्तमाला और सियाराम की हिन्दी भक्तमाला की टीकाओ मे सम्राट अकबर और तानसेन का मीरा के दर्शनो को आने का तथा मीराबाई का वृन्दावन जाकर रूप गोस्वामी के दर्शन करने का उल्लेख है।

उक्त कुछ प्रमुख कवियो के अतिरिक्त आसकरनदास, कल्लानदास, कान्हरदास, कृष्णदास, केशवभट्ट, गिरिधर, गोपीनाथ, चतुरबिहारी, तानसेन, सन्त तुकाराम, दामोदरदास, नागरीदास, नारायन भट्ट, माधवदास, रामदास, लालदास, विष्णुदास, आदि पचासो कवियो के नाम उल्लेखनीय है। इन कवियो ने हिन्दी मे भक्तिरस की रचनाएँ निबद्ध कर देश मे भक्तिरस की धारा प्रवाहित की थी और इसके माध्यम से सारे देश को भावात्मक एकता मे निबद्ध किया था। यही नही देश में वर्गभेद, जातिभेद की भावना मे भी परिवर्तन ला दिया था।

जैन कवि

इन वर्षों मे जैन कवि भी पर्याप्त सख्या मे हुए और वे भी देश मे व्याप्त भक्ति धारा से अछूते नही रह सके। उनकी कृतियाँ भी भक्तिरस में आप्लावित

होकर सामने आयीं और इस दृष्टि से भट्टारक शुभचन्द्र, पाण्डे राजमल्ल, भट्टारक वीरचन्द्र, सुमतिकीर्ति, ब्रह्म विद्याभूषरण, ब्रह्म रायमल्ल, उपाध्याय साधुकीर्ति, बीरूमकवि, कनकसोम, वाचक मालदेव, नयरंग, कुशललाभ, हरिभूषण, सकलभूषण आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों ने रास, फागु, वेलि, चौपाई एवं पदों के माध्यम से हिन्दी साहित्य की महती सेवा की है। इन कवियों में से हम सर्वप्रथम ब्रह्म रायमल्ल का परिचय उपस्थित कर रहे हैं क्योंकि संवत् १६०१ से १६४० तक की अवधि में ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के प्रतिनिधि कवि रहे हैं।

ब्रह्म रायमल्ल

हमारे आलोच्य कवि ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के इसी स्वर्णयुग के प्रतिनिधि कवि थे। तत्कालीन जनभावनाओं का समादर करके कवि ने अपनी रचनाएँ लिखी और उन्हें मुक्त रूप से स्वाध्याय प्रेमियों को समर्पित किया। कवि ने अपने काव्यों को जन-जन के काव्य बनाने का प्रयास किया और लोक प्रचलित शैली में लिखकर एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की। ब्रह्म रायमल्ल की रचनाएँ इतनी अधिक लोकप्रिय रही कि राजस्थान के अधिकांश ग्रन्थालयों में वे आज भी अच्छी संख्या मे मिलती है। जैन समाज में ब्रह्म रायमल्ल सदैव बहुचर्चित कवि रहे और उनकी कृतियों का स्वाध्याय बड़ी रुचिपूर्वक किया जाता रहा।

ब्रह्म रायमल्ल की अधिकाश रचनाएँ राससज्ञक रचनाएँ हैं जिनमे अधिकतर कथापरक हैं। कवि ने श्रीपाल, सुदर्शन भविष्यदत्त, हनुमान, नेमिनाथ जैसे महापुरुषों के जीवन पर आख्यान परक रचनाएँ निबद्ध करके तत्कालीन समाज को एक नयी दिशा प्रदान की तथा उन महापुरुषों के अनुकूल अपने जीवन निर्माण को प्रोत्साहित किया, साथ ही में तीर्थंकरों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति भावना को पुनर्जीवित किया। यद्यपि महाकवि ने सूरदास एवं कबीर जैसे पद नहीं लिखे और न निर्गुण एवं सगुण जैसी भक्ति धारा मे बहे। उन्होने तो अपनी रचनाओं के माध्यम से यही सिद्ध करने का प्रयास किया कि तीर्थंकरों की पूजा, भक्ति एवं स्तवन से अपार पुण्य की प्राप्ति होती है तथा दुष्कर्मों का नाश होता है।[८] श्रीपाल, सुदर्शन, प्रद्युम्न, भविष्यदत्त, हनुमान जैसे महापुरुषों का जीवन तीर्थंकरो की भक्ति एवं श्रद्धा से उपार्जित पुण्य की खुली पुस्तकें हैं। उनका जीवन आगे आने वाली सन्तति के लिये प्रेरणा स्रोत है। यही कारण है कि इन महापुरुषो के जीवन को ब्रह्म रायमल्ल के पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती सभी कवियों ने अपने-अपने काव्यो में सर्वाधिक स्थान दिया है।

---

८. भाव भगति जिरा दीया हो, करि स्नान पहरे शुभ चीर।
जिरा चरण पूजा करी हो, झारी हाथ लई भरि नीर।।

ब्रह्म रायमल्ल का जन्म कब और कहाँ हुआ। वे किस देश एवं जाति के थे और किस प्रेरणा से उन्होंने गृहत्याग किया इस सम्बन्ध में हमे अभी तक कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा कहाँ प्राप्त की तथा विवाह होने के पश्चात् गृह त्याग किया अथवा विवाह के पूर्व ही ब्रह्मचारी बन गये, इसके सम्बन्ध में भी न तो स्वयं कवि ने अपनी रचनाओं में उल्लेख किया है और न किसी अन्य विद्वान् ने अपनी रचना मे ब्रह्म रायमल्ल का स्मरण किया है। इनके नाम के पूर्व 'ब्रह्म' शब्द मिलने से सम्भवत: रायमल्ल ब्रह्मचारी थे और अन्तिम समय तक मे ब्रह्मचारी ही बने रहे इसके अतिरिक्त हम अधिक कुछ नही कह सकते।

पं० परमानन्द जी शास्त्री[९] एवं डा० प्रेमसागर जैन[१०] ने ब्रह्म रायमल्ल का परिचय देते हुए भक्तामर स्तोत्र वृत्ति के कर्त्ता ब्रह्म रायमल्ल एवं रास ग्रन्थों के निर्माता ब्रह्म रायमल्ल को एक ही माना है। 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' मे दूसरे ब्रह्म रायमल्ल ने जो अपने माता-पिता आदि का नामोल्लेख किया है उसी को आलोच्य ब्रह्म रायमल्ल के माता पिता मान लिया है। 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' के कर्त्ता ब्रह्म रायमल्ल हुंबड वश के भूषण थे। इनके पिता का नाम मह्य एवं माता का नाम चम्पा था। ये जिन चरण कमलों के उपासक थे।[११] इन्होंने महासागर तटभाग में समाश्रित ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभु चैत्यालय मे वर्णी कर्मसी के वचनो से 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' की रचना विक्रम सवत् १६६७ में समाप्त की थी।

हमारे विचार से ब्रह्म रायमल्ल नाम वाले दो भिन्न भिन्न विद्वान् हुए। प्रथम रायमल्ल रास ग्रन्थों के रचयिता थे जिन्होने हिन्दी मे काव्य रचना की तथा जिनकी सवत् १६१५ से सवत् १६३६ तक निर्मित एक दो नही किन्तु पूरी १५ रचनाएँ

---

९. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह—प्रस्तावना-पृष्ठ सख्या ५१

१०. जैन शोध और समीक्षा—पृष्ठ संख्या

११ श्रीमद् हूबड-वश-मडणमणि र्मह्ये ति नामा वणिक्

तद्भार्या गुणमडिता व्रतयुता चम्पामितीताभिधा ॥६॥

तत्पुत्रो जिनपादकंजमधुपो रायादिमल्लोव्रती।

चक्रे वृत्तिमिमा स्तवस्य नितरां नत्वा श्री (सु) वादींदुकं ॥७॥

सप्तषठ्यंकिते वर्षे षोडशाख्ये हि संवते (१६६७)

आषाढ-श्वेतपक्षस्य पंचम्या बुधवारके ॥८॥

ग्रीवापुरे महासिन्धोस्तटभाग समाश्रिते

प्रोत्तुंगदुर्ग संयुक्ते श्री चन्द्रप्रभसद्मनि ॥९॥

वर्णिन: कर्मसी नाम्न. वचनात् मयकाऽरचि।

भक्तामरस्य सद्वृत्ति: रायमल्लेन वर्णिना ॥१०॥

मिलती है। सभी कृतियाँ भक्ति परक है तथा रास एवं कथा संज्ञक है सभी में उन्होंने अपना समान परिचय दिया है। इन कृतियों के आधार पर ब्रह्म रायमल्ल मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे जो भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्टधर शिष्य थे। इन दोनों नामों के अतिरिक्त हिन्दी की किसी भी कृति में उन्होंने अपना अधिक परिचय नहीं दिया।[12] अपनी अन्तिम कृति 'परमहंस चौपई' में भी ब्रह्म रायमल्ल ने अपने गुरु एवं दादागुरु का वही नामोल्लेख किया है केवल मुनि सकलकीर्ति का नामोल्लेख और किया है और उसीका दूसरा नाम मुनि रत्नकीर्ति था जिसको कवि ने अमृतोपम कहा है।

मूल संघ जग तारण हार, सरद गच्छ गरबो आचार।
सकलकीर्ति मुनिवर गुणवंत, ता समाहि गुण लही न अंत ॥६४०॥
तिह को अमृत नांव अति बंग, रत्नकीर्ति मुनि गुणा अभंग।
अनन्तकीर्ति तास सिष जान, बोलै मुख तैं अमृत बान।
तास शिष्य जिन चरणा लीन, ब्रह्म रायमल्ल बुधि को हीन ॥

उक्त प्रशस्तियों के आधार पर आलोच्य ब्रह्म रायमल्ल मूलसंघ एवं सरस्वती गच्छ के भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रशिष्य एवं मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। ये ब्रह्म रायमल्ल राजस्थानी विद्वान् थे तथा जिनका ढूंढाहड प्रदेश प्रमुख केन्द्र था।

दूसरे ब्रह्म रायमल्ल गुजरात के सन्त थे जो संस्कृत के विद्वान् थे। ये हूबंड जाति के थे तथा जिनके पिता मह्य एवं माता चम्पादेवी थी। भक्तामर स्तोत्र वृत्ति इनकी एक मात्र कृति है जिसको उन्होंने संवत् १६६७ मे ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे समाप्त की थी। संस्कृत के विद्वान् ब्रह्म रायमल्ल ने न तो अपने गुरु का उल्लेख किया है और न मूलसंघ के सरस्वती गच्छ से अपना कोई सम्बन्ध बतलाया है। इस प्रकार दोनों रायमल्ल भिन्न भिन्न विद्वान् है। एक १७वी शताब्दि के पूर्वार्द्ध के है और दूसरे रायमल्ल उसी शताब्दि के उत्तरार्ध के विद्वान् हैं। हमारे मत का एक और सबल प्रमाण यह है कि प्रथम रायमल्ल की संवत् १६३६ के पश्चात् कोई रचना नही मिलती। यदि दोनों रायमल्लों को एक ही मान लिया जावे तो तो प्रथम रायमल्ल ३१ वर्ष तक साहित्य निर्माण से अपने आपको अलग रखे और फिर ३१ वर्ष पश्चात् 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' लिखे इसे हम सम्भव नही मान सकते।

---

12. श्री मूलसघ मुनि सरसुती गछ, छोडी ही चारि कषाय निभंछ।
अनन्तकीर्ति गुरु विदितौ, तासु तणौ सिषि कीयो जी बखाण।
ब्रह्म रायमल्ल जगि जाणियो, स्वामी जी पार्श्वनाथ को जी थान।
—नेमिनाथ रास

क्योंकि जिस कवि ने पहिले ३१ वर्षों में १५ रचनाएँ निर्मित की हो वह आगे ३१ वर्षों तक चुपचाप बैठा रहे यह संभव प्रतीत नहीं होता।

जीवन परिचय

ब्रह्म रायमल्ल के प्रारम्भिक जीवन का कोई इतिवृत्त नहीं मिलता। कवि ने किस अवस्था में साधु जीवन स्वीकार किया इसके बारे में भी हमें जानकारी नहीं मिलती लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है कि कवि १०–१२ वर्ष की अवस्था में ही भट्टारकों अथवा उनके शिष्य प्रशिष्यों के निर्देशन में चले गये। मुनि अनन्तकीर्ति को जब कवि की व्युत्पन्नमति एवं शास्त्रों के उच्च अध्ययन की रुचि का पता चला तो उन्होंने इन्हें अपना शिष्य बना लिया और अपने पास ही रख कर इन्हें प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी का अध्ययन कराने लगे। सामान्य अध्ययन के पश्चात् कवि को शास्त्रो का अध्ययन कराया गया और ऐसे योग्य शिष्य को पाकर वे स्वयं गौरवान्वित हो गये। मुनि अनन्तकीर्ति भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्टधर शिष्य थे। भट्टारक रत्नकीर्ति नागौर गादी के प्रथम भट्टारकों में से हैं जो भट्टारक जिनचन्द्र के पश्चात् हुए थे। यदि मुनि अनन्तकीर्ति इन्हीं भट्टारक जी के शिष्य थे तब तो ब्रह्म रायमल्ल का सम्बन्ध नागौर गादी से होना चाहिये। कवि ने ज्येष्ठजिनवर व्रत कथा को संवत् १६२५ में सांभर मे समाप्त किया था।[13] लेकिन कवि संघ में नही रह कर स्वतन्त्र रूप से ही विहार करते रहे, यह निश्चित है।

उक्त सब तथ्यों के आधार पर कवि का जन्म संवत् १५८० के आस-पास होना चाहिये। यदि १५ वर्ष की अवस्था में भी इनका भट्टारकों से सम्पर्क मान लिया जावे तो इन्हे ग्रन्थो के गम्भीर अध्ययन में कम से कम १० वर्ष तो लग ही गये होंगे। २५ वर्ष की अवस्था में ये एक अच्छे विद्वान् की श्रेणी में आ गये। प्रारम्भ में इनको प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के पढ़ने एवं लिपि करने का काम दिया गया और यह कार्य ब्रह्म रायमल्ल बिना सकोच के तथा विद्वत्तापूर्ण तरीके से करने लगे। संवत् १६१३ में कवि द्वारा लिखा हुआ एक गुटका उपलब्ध हुआ है जिससे भी मालूम पड़ता है कि कवि को सर्वप्रथम ग्रन्थो के लेखन का कार्य दिया गया था। इस गुटके के कुछ प्रमुख पाठ निम्न प्रकार हैं—

---

13. मूलसंघ भव तारण हार, सारद गछ गरवो संसार।
    रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटिमुनि गुणह निधान ॥७१॥
    अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यं नाम, कीर्त्ति अनन्त विस्तरी ताम।
    मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जाइ न भणी ॥७२॥
    तास शिष्य जिणचरणां लीन, ब्रह्म रायमल्ल मति को हीन।
    हण कथा कौ कियौ प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर दास ॥७३॥

चौबीस ठाणा चर्चा	१–२८
जीव समास	२६–५६
सुप्यय दोहा	६०–६७
परमात्म प्रकाश	६२
रत्नकरण्डश्रावकाचार	—

उक्त गुटके मे पृष्ठ ६० पर निम्न प्रशस्ति दी हुई है—

श्री । श्री संवतु १६१३ वर्ष जेष्ठ वदि ८ शनौ वारे लिखितं ब्रह्म रायमल्ल ।। देहली ग्रामे ।

इसी गुटके के पृष्ठ ६३ पर भी ब्रह्म रायमल्ल ने अपना निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

इति परमात्मप्रकाश समाप्त । प्रभुदास कृत ।। सुभं भवतु ।। श्री ।। छ ।। श्री ।। लिखित ब्रह्म रायमल्लु ।।

इस प्रकार उक्त गुटका ब्रह्म रायमल्ल द्वारा लिपि बद्ध किया हुआ है । इस समय कवि देहली मे थे और वहाँ ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने का कार्य करते थे । कवि ने इस गुटके के पूर्व एव इसके पश्चात् और कितने ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ की थी इसका अभी कोई उल्लेख नही मिला है लेकिन इतना अवश्य है कि कवि ने अपना साहित्यिक जीवन ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने के साथ प्रारम्भ किया था । उक्त गुटके मे कवि ने न तो अपने गुरू के नाम का उल्लेख किया है और न किसी श्रावक के नाम का, जिसके अनुरोध पर उक्त गुटका लिखा गया था । इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि उसने यह गुटका स्वय अपने अध्ययन के लिये लिखा हो ।

साहित्य साधना

ग्रन्थो की प्रतिलिपि करते-करते ब्रह्म रायमल्ल साहित्य निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए और सर्व प्रथम इन्होने नेमीश्वररास की रचना को हाथ मे लिया । साहित्य निर्माण का कार्य सम्भवतः देहली छोड़ने के बाद ही प्रारम्भ किया था । देहली के बाद ये स्वतन्त्र रूप से बिहार करने लगे और सर्व प्रथम झुंझुनू मे जाकर इन्होने अपना स्वतंत्र लेखन कार्य प्रारम्भ किया । झुंझुनु उस समय साहित्यिक केन्द्र था । देहली के पास होने से वहाँ जैन साधुओं का आवागमन बराबर रहता था । कवि ने उक्त नगर मे सवत् १६१५ की श्रावण बुदी १३ बुधवार के शुभ दिन 'नेमीश्वररास' का समापन दिवस मनाया[१५] तथा अपनी प्रथम कृति को विद्वानो एवं स्वाध्याय

---

१४. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ ७६५

१५. अहो सोलहसै पन्द्रह रच्यौ रास, सावलि तेरसि सावण मास।
बरतै जी बुधि वासौ भलौ, अहो जैसी जी बुधि दीन्हौ अवकास ।

प्रेमियों की सेवा में समर्पित की। कवि ने 'नेमीश्वररास' के अन्त में विद्वानों से विनय पूर्वक इतना अवश्य निवेदन किया कि जैसी उसकी बुद्धि थी उसी के अनुसार उसने ग्रन्थ रचना की है इसलिये पंडितजन यदि कहीं त्रुटि हो तो उसके लिये क्षमा करें।

'नेमीश्वररास' काव्य कृति का अच्छा स्वागत हुआ तथा कवि से इस तरह की दूसरी रचना निबद्ध करने के लिये चारों ओर से आग्रह किया जाने लगा। एक ओर कवि का काव्य रचना के प्रति उत्साह, दूसरी ओर जनता का आग्रह, इन दोनों के कारण ६ महिने पश्चात् ही वैशाख कृष्णा नवमी शनिवार के शुभ दिन कवि ने "हनुमन्त कथा" को छन्दोबद्ध करके दूसरी काव्य रचना करने का गौरव प्राप्त किया।[१६] हनुमन्त कथा एक वृहद् रचना है। इसमे कवि ने हनुमान की जीवन गाथा को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। काव्य के रचना स्थान वाला पद कवि सम्भवत· देना भूल गये या फिर इसे भी झुंझुनु नगर मे ही कविता बद्ध करने के कारण नगर का नाम दुबारा नही दिया। उक्त दोनों रचनाओं से कवि की कीर्ति चारो ओर फैल गयी और श्रावक गण उन्हें अपने यहाँ सादर आमन्त्रित करने लगे। इसके पश्चात् ८–९ वर्ष के दीर्घकाल तक कवि की कोई बडी रचना उपलब्ध नही होती। जिन लघु रचनाओ मे सवत् नही दिया हुआ है हो सकता है उनमे से अधिकांश रचनाएँ इसी समय की हो।

संवत् १६२५ में कवि का सांभर नगर में विहार होने का उल्लेख "ज्येष्ठ जिनवर कथा" की प्रशस्ति से मिलता है। प्रस्तुत कृति सांभर प्रवास में ही निबद्ध की गयी थी। यह एक लघु कृति है जिसमें आदिनाथ के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इसकी एक मात्र प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है।[१७] साभर नगर मे कवि ने जिणलाडू गीत का और निर्माण किया। यह रचना भी छोटी है जिसमें केवल १७ पद्य हैं।[१८]

उक्त संवतोल्लेखवाली तृतीय रचना समाप्ति के पश्चात् कवि का सांभर से विहार हो गया और वे मारवाड के अंचल में विहार करने लगे। नागौर की भट्टारक गादी से सम्बन्ध होने के कारण वे इस प्रदेश को कैसे भुला सकते थे। यद्यपि ब्रह्म रायमल्ल स्वाभिमानी सन्त थे और भट्टारकों के पूर्णत: अधीन नहीं रहना चाहते थे फिर भी उन्होंने शाकम्भरी प्रदेश एवं नागौर प्रदेश को अपने उपदेशों से पावन किया और संवत् १६२८ में वे हरसोरगढ़ पहुंच गये जो नागौर प्रदेश का प्रमुख नगर था।

---

१७. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग, पृष्ठ सं.६४५

१८ देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची तृतीय भाग, पृष्ठ स. ११७

यहां उन्होंने 'प्रद्युम्न रास' को समाप्त किया और अपनी रचना में एक कड़ी और जोड़ दी। प्रद्युम्न रास कवि की उत्तम कृतियों में से है। यह रचना १९५ पद्यों में पूर्ण होती है। प्रस्तुत रास में कवि ने अपना जो परिचय दिया है उसकी कुछ पंक्तियां निम्न प्रकार है—

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो लोई, हो अनन्तकीर्ति जाणो सहु कोइ।
तासु तणो सिषि जाणिज्यो जी, हो ब्रह्म रायमलि कीयो बखाणो।
हो सोलहसै अठवीस विचारो, हो भादव सुदी दुतीया बुधवारो।
गढ हरसौर महाभला जी, तिमै भलो जिणेसुरथानो।
श्रीवंत लोग बसै भला जी, हो देव सास्त्र गुरु राखै मानो ॥१९४॥

हरसोर नागौर प्रदेश के इतिहास एवं संस्कृति दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण नगर माना जाता रहा है।[१९] यह नगर संवत् १६२८ में अजमेर सूबा में सम्मिलित था।

हरसोर के पश्चात् महाकवि का काव्य रचना की ओर फिर ध्यान गया और वे एक के पश्चात् दूसरी रचना निर्मित करने लगे। संवत् १६२९ में वे मारवाड से विहार कर धौलपुर आ गये। धौलपुर का क्षेत्र आज के समान उस समय भी संभवतः डाकू आतंकित क्षेत्र था इसलिये सन्त रायमल्ल ने इस प्रदेश के लोगों में धार्मिक भावना जाग्रत करने के लिये विहार किया और पथ भ्रष्टों को वापिस गले लगाया। धौलपुर में आने के पश्चात् उन्होंने "सुदर्शन रास" को छन्दोबद्ध किया और सवत् १६२९ में वैशाख सुदी सप्तमी के शुभ दिन अपनी नवीनतम काव्यकृति को साहित्य जगत् को भेंट किया।[२०] धौलपुर पर उस समय बादशाह अकबर का शासन था। 'सुदर्शन रास' कवि की उत्तम कृतियों में से हैं। धौलपुर के बीहड क्षेत्र में विहार करने के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल आगरा, भरतपुर एवं हिण्डौन होते हुये रणथम्भौर पहुंचे। यह दुर्ग सदैव वीरता एवं शौर्य के लिये प्रसिद्ध गढ़ माना जाता रहा तथा साहित्य एवं संस्कृति का भी सैकड़ों वर्षों तक केन्द्र रहा। जब रायमल्ल ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया तो उस समय वहां बादशाह अकबर का शासन था। चारों ओर शांति थी। महाकवि ने इस दुर्ग को कितने समय तक अपनी चरण रज से पावन किया इस विषय मे तो कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन संवत् १६३० के प्रारम्भ में जब इस दुर्ग में प्रवेश किया तो जैन समाज के साथ-साथ सभी दुर्ग निवासियों ने ब्रह्म रायमल्ल का भावभीना स्वागत किया। कवि ने उस समय के दुर्ग का जो वर्णन किया है उससे ऐसा लगता है कि वहां के निवासी युद्धों की ज्वाला को भूल चुके थे

---

१९. Ancient Cities of Rajasthan page 329.
२०. अहो सोलहसै गुणतीसै वैसाखि, सातै जी राति उजालै जी पाखि।

और अब शांतिपूर्ण जीवन यापन करने लगे थे।[२१] यहां रहने के कुछ समय पश्चात् ही संवत् १६३० की अषाढ़ शुक्ला १३ शनिवार को उन्होंने श्रीपाल रास की रचना समाप्त करने का गौरव प्राप्त किया। समाप्ति के दिन अष्टान्हिका पर्व था इसलिये उस दिन समस्त समाज ने मिलकर नयी रासकृति का स्वागत किया। श्रीपाल रास कवि की बड़ी रचनाओं मे से हैं तथा उसमे २९८ छन्द हैं।

रणथम्भोर ढूढाड प्रदेश का ही भाग माना जाता है। इसलिये कवि वहाँ से विहार करके सांगानेर की ओर चल पड़े। मार्ग मे आने वाले अनेक नगरों एव ग्रामों के नागरिको को सम्बोधित करते हुये वे सवत् १६३३ मे सागानेर आ पहुंचे सांगानेर ढूंढाड प्रदेश का प्रमुख नगर था तथा प्रदेश की राजधानी आमेर से केवल १४ मील दूरी पर स्थित था। सांगानेर को जैन साहित्य एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहने का गौरव प्राप्त रहा है। उस समय राजा भगवन्तदास ढूढाड के शासक थे तथा अपने युवराज मानसिंह के साथ राज्य का शासन भार सम्हालते थे। सांगानेर आने के पश्चात् कविवर ब्रह्म रायमल्ल ने अपनी सबसे बडी कृति भविष्यदत्त चौपई को समाप्त करने का श्रेय प्राप्त किया। सयोग की बात है कि भविष्यदत्त चौपई की समाप्ति के दिन भी अष्टान्हिका पर्व चल रहा था। उस दिन शनिवार था तथा संवत् १६३३ की कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी की पावन तिथि थी। नगर मे चारो ओर अष्टान्हिका महोत्सव मनाया जा रहा था। इसलिये ब्रह्म रायमल्ल की उक्त रचना का विमोचन समारोह भी बड़े उत्साह के साथ आयोजित किया गया। उस समय तक तक ब्रह्म रायमल्ल की ख्याति आकाश को छूने लगी थी और साहित्यिक जगत् मे उनका नाम प्रथम पक्ति मे आ चुका था। वे कवि से महाकवि बन चुके थे तथा उनकी सभी रचनाये लोकप्रिय हो चुकी थी।

सागानेर मे पर्याप्त समय तक ठहरने के पश्चात् महाकवि ब्रह्म रायमल्ल चाटसू की ओर विहार कर गये और काठाडा भाग के कितने ही ग्रामो को अपने प्रवचनो का लाभ पहुचाते हुए वे टोडारायसिंह जा पहुंचे। टोडारायसिंह का दूसरा नाम तक्षकगढ भी है। यह दुर्ग भी राजस्थान के विशिष्ट दुर्गों मे से एक दुर्ग है। १७ वी शताब्दि मे टोडारायसिंह जैन साहित्य एव सस्कृति की दृष्टि से ख्याति प्राप्त केन्द्र रहा। देहली एवं चाटसू गादी के भट्टारकों का यहाँ खूब आवागमन रहा। ब्रह्म रायमल्ल यहाँ आने के पश्चात् साहित्य सरचना मे लग गये और कुछ ही समय पश्चात् सवत् १६३६ ज्येष्ठ बुदी १३ शनिवार के दिन 'परमहस चौपई' की रचना समाप्त करके उसे स्वाध्याय प्रेमियो को स्वाध्याय के लिये विमुक्त कर दिया।

---

२१. हो रणथभ्रमर सोभै कवि लास, भरीया नीर ताल चहु पास।
बाग विहरि बाडी घणी, हो धन कण सम्पत्ति तणो निधान।

कवि की यह आध्यात्मिक कृति है तथा रूपक काव्य है जिसमें परमहंस परमात्मा का विशद वर्णन किया गया है। संवतोल्लेख वाली कवि की यह अन्तिम कृति है। इसमें ६५१ दोहा चौपई छन्द हैं।

संवत् १६३६ के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल और कितने वर्षों तक जीवित रहे तथा उनकी साहित्य साधना किस दिशा में चलती रही इस सम्बन्ध में अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिल सका है। कवि की अब तक १५ रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी है जिनमें ८ रचनाएँ संवतोल्लेख वाली हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है शेष ७ रचनाओं में रचना समाप्ति का कोई उल्लेख नहीं मिलता इसलिये उनकी कोई निश्चित रचना तिथि के बारे में नहीं कहा जा सकता। लेकिन इन सात रचनाओं मे जम्बूस्वामिरास के अतिरिक्त सभी रचनाएँ लघु रचनाएँ हैं इसलिये हमारा अनुमान है कि वे सभी कृतियाँ संवत् १६१५ से १६३६ के बीच में किसी समय रची गयी होगी।

रचनाएँ

महाकवि की अब तक १५ कृतियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१ नेमीश्वररास	रचना संवत् १६१५
२. हनुमन्त कथा	रचना संवत् १६१६
३. ज्येष्ठिजिनवर कथा	रचना संवत् १६२५
४. प्रद्युम्न रास	रचना सवत् १६२८
५ सुदर्शन रास	रचना संवत् १६२९
६ श्रीपाल रास	रचना संवत् १६३०
७ भविष्यदत्त चौपई	रचना संवत् १६३३
८. परमहंस चौपई	रचना संवत् १६३६

बिना संवत् वाली रचनाएँ

९. जम्बूस्वामी चौपई
१०. निर्दोष सप्तमी कथा
११. चिन्तामणि जयमाल
१२ पच गुरु की जयमाल
१३. जिनलाडू गीत
१४. नेमिनिर्वाण
१५. चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न

उक्त सभी रचनाएँ हिन्दी की बहुमूल्य कृतियां है तथा भाषा, शैली एवं विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियों में उल्लेखनीय है । इन कृतियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. नेमीश्वररास

यह कवि की उपलब्ध कृतियों मे प्रथम कृति है । काव्य रचना में प्रवेश करने के साथ ही कवि ने नेमिनाथ स्वामी के जीवन पर रास काव्य लिख कर उन्हीं के चरणों में उसे समर्पित किया है । इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि नेमिनाथ के अत्यधिक भक्त थे । कवि की उस समय आयु क्या होगी इसके बारे में कुछ नही कहा जा सकता । वैसे कवि का साहित्यिक जीवन संवत् १६१० से १६४० तक का रहा है । वे अपने पूरे साहित्यिक जीवन मे ब्रह्मचारी ही रहे और प्रत्येक काव्य के अन्त मे उन्होने अपने आपको अनन्तकीर्ति के शिष्य के रूप मे प्रस्तुत किया । अनन्तकीर्ति मूलसघ भट्टारक परम्परा में मुनि थे और उन्ही के शिष्य थे कविवर रायमल्ल जिन्होंने अपने गुरु का प्रस्तुत काव्य में उल्लेख किया है ।

नेमीश्वररास राजस्थानी भाषा की कृति है । इसमे नेमिनाथ का जीवन चरित अकित है । नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे और भगवान श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे । नेमिनाथ को ऐतिहासिक महापुरुष घोषित करने की ओर खोज जारी है । नेमि यदुवशी राजकुमार थे जिनके पिता समुद्रविजय थे । उनकी माता का नाम शिवादेवी था । एक रात्रि को माता ने सोलह स्वप्नों देखे । स्वप्नों का फल पूछने पर समुद्रविजय ने अपूर्व लक्षणो युक्त पुत्र होने की बात कही । कार्तिक शुक्ला ६ को देवों ने मिलकर गर्भ कल्याणक मनाया ।

श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ । नगर में विभिन्न उत्सव मनाये गये । आरती उतारी गयी और मौतियों का चौक मांडा गया । स्वर्ग लोक के इन्द्र देव देवियो के साथ नगर में आये और बाल तीर्थंकर को सुमेर पर्वत पर ले जाकर पाण्डुक शिला पर अभिषेक किया । इन्द्र अपने एक हजार आठ कलशो से जल भर कर नेमिकुमार का अभिषेक किया । दूध-दही, घृत एव रस के साथ औषधियों से मिले हुये जल से भगवान का न्हवण किया ।

सहस अठोतर इन्द्र कै हाथि, अवर भरि लीया जी देवतां साथि ।
जा हो जीऊ परि ढलिया, अहो दुध दही घृत रस कीजी धार ।
सार सुगंधी जी ऊषधी, अहो न्हवण भयो शिव देवकुमार ।।२५।।

तीर्थंकर का नाम नेमिकुमार रखा गया इस सम्बन्ध में कवि ने निम्न पद्य लिखा है—

अहो वज्र की सुइल्यो को वेधिया कान, वस्त्र आभरण दिनै अनुमान ।
अहो किया जी महोछा अतिघणा, चंचना भक्ति करि बारं-बी-बार ।।
अहो कर जोडै सुरपति भणी, नाम दियो तसु नेमिकुमार ।।२८।।

नेमिकार दोज के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे । सुख एवं ऐश्वर्य में समय जाते देर नही लगती । नेमिकुमार कब युवा हो गये इसका किसी को पता भी नहीं चला । एक दिन श्रीकृष्ण वन क्रीड़ा को जाने लगे तो नेमिकुमार उनके साथ हो गये । अनेक यादव कुमार भी साथ में थे तथा वे सभी हाथी रथ एवं पालकी में सवार थे । यही नही अन्तःपुर का पूरा परिवार साथ में था ।

वे वन मे विविध प्रकार की क्रीड़ा मे मस्त हो गये । एक युवती झूला झूलने लगी तो दूसरी हाथ में डण्डा लेकर उसे मारने लगी । एक युवती यह देख कर खिलखिलाकर हंसने लगी तो दूसरी अपने पति का नाम लिखने में ही मस्त हो गयी ।

एक तीया झुलै झुलणा, एक सखी हुणै साट लै हाथि ।
एक सखी हा हा करै, अहो एक सखी लिहि कंत को नाव ।।

वहीं पर एक विशाल एवं गहरी बावड़ी थी । वह गंगा के समान निर्मल पानी से ओत-प्रोत थी । नेमिकुमार ने उस बावड़ी में खूब स्नान किया । जब वे स्नान करके बावड़ी से बाहर निकले तो अपना दुपट्टा डाल दिया तथा अपनी भावज जामवती से उसे शीघ्र धोने का निवेदन किया । जामवती को वह अच्छा नही लगा और कहा कि यदि नारायण श्रीकृष्ण ऐसी बात सुन लें तो तुम्हें नगर से बाहर निकाल दे । नारायण के पास शंख, एवं धनुष जैसे शस्त्र हैं तथा नाग शैया पर वे सोते हैं । यदि तुम्हारे मे भी बल हो, तथा इनको प्राप्त कर सको तो वह उनके कपड़े धो सकती है । नेमिकुमार को जामवती की बात अच्छी नहीं लगी । वन क्रीडा से लौटने के पश्चात् नेमि नारायण के घर गये और वहां उनका शंख पूर दिया । शंख पूरने से तीनो लोको मे खलबली मच गयी । नेमिकुमार ने नारायण के धनुष को भी चढा दिया । वहीं श्रीकृष्णजी आ गये । वे क्रोधित होकर नेमिकुमार को डाटने लगे । दोनो मे मल्ल युद्ध होने लगा । लेकिन श्रीकृष्ण इन्हे नही हरा सके ।

नारायण ने समुद्र विजय के घर आकर शिवादेवी के चरण स्पर्श किये तथा कहा कि नेमिकुमार युवा हो गये हैं इसलिये शीघ्र ही उनका विवाह करना चाहिये तथा यह भी कहा कि उग्रसेन की पुत्री नेमिकुमार के योग्य कन्या है । माता ने श्रीकृष्ण के कहने पर अपनी स्वीकृति दे दी । इसके पश्चाद् नारायण ने राजा उग्रसेन के समक्ष राजुल के विवाह का प्रस्ताव रखा । उग्रसेन ने माना कि घर पर बैठे गंगा

आ गयी और उन्होंने अपने भाग्य को सराहा। ज्योतिषी को बुलाया गया तथा दोनों के नक्षत्र देखे गये। उग्रसेन एवं श्रीकृष्ण ने ज्योतिषी से निम्न प्रकार कहा—

ग्रहो लेहु शुभ लग्न जिव होई कुसलात, रोग बिजोगन सांचरौ।
स्वामि राहु सनिशर टालि जे लाभ, श्री नेमिजिनेश्वर पाय नमूं ।।४८।।

ज्योतिषी ने दोनों के निम्न प्रकार लग्न देखा—

ग्रहो मांडि जी लडहि कियौ बखाण, ग्यारहु सुर गुरु राजल थान।
नेमि नौ सात उरवि लौ, ग्रहो लिख्यौ जी लग्न गीणी ज्योतिगी यां ज्ञान।

सम्बन्ध निश्चित हो गया तथा श्रीकृष्ण जी के आंचल में पान सुपारी हल्दी और नारियल समर्पित कर दी गयी।

भगवान श्रीकृष्ण जी द्वारा सुपारी स्वीकार करते ही चारों ओर हर्ष छा गया। बाजे बजने लगे तथा घर घर में बधावा गाये जाने लगे। षट् रस व्यंजन बनाये गये तथा सभी राजा एक पंक्ति में भोजन करने लगे। भोजन के पश्चात् तांबूल दिये गये। वस्त्राभूषण का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। अन्त मे कृष्ण जी को हाथ जोड कर विदा किया गया। लगन लेकर जब कृष्ण जी वापिस पहुंचे तो शिवा-देवी से नेमिकुमार के विवाह की तैयारियां करने को कहा। एक ओर सुन्दरियां गीत गाने लगी। तेल इत्र छिडका जाने लगा तथा केसर कस्तूरी तथा फूलों से सारा राजमहल सुगन्धित होने लगा। दूसरी ओर विश्वस्त सेवकों को बुलाकर महिष, सुवर, सांभर, रोझ, सियाल आदि को एक बाडा में बन्द किये जाने का आदेश दिया गया।[1]

ग्रहो तब लगु केसौ जी रच्यौ हो उपाउ, सेवक आपणा लीयाजी बुलाई।
वेग देव नमौ जी गम करौ, ग्रहो छै लाहो महिष हरण सुवर—
सांबर रोझ सियाल, वेगि हो जाई बाडौ रचौ
ग्रहो गौरण ओप्रजी सेणि भोवाल ।।५५।।

नेमीकुमार की बारात में सभी यादव परिवार के अतिरिक्त कौरव, पांडव भी थे। बराती सभी सज धज कर चले। आंखों मे कज्जल, मुख में पान, केशर चन्दन तथा कुकुम के तिलक लगे हुये पालकी, रथ एवं हाथियों पर वे चले। लेकिन जब बारात चली तो दाहिनी ओर रासभ पुकारने लगा, रथ की ध्वजा फट गयी, कुत्ते ने कान फडफडाया, तथा बिल्ली ने रास्ता काट दिया।

नेमिकुमार के सेहरा बांधा गया उनके मोतियों की माला लटक रही थी। कानो मे कुडल थे तथा मुकुट में हीरे जडे हुये थे। उनके वस्त्र दक्षिण देश से विशेष रूप से मंगाये गये थे। जब बरात नगर में पहुंची तो बाजे बजने लगे। शंख ध्वनि होने लगी। बरात की अगुवानी हुई तथा महाराजा उग्रसेन ने नेमिकुमार से कृपा रखने के लिये निवेदन किया।

दूसरे दिन लग्न की तिथि आयी तो नेमिकुमार अपने परिजनों के साथ तोरण के लिये पहुंचे। उनके स्वागत में महिलाओं ने मंगल गीत गाये। राजुल ने भी अपना पूरा शृंगार किया।

अहो मंदिरि राजल करी जी सिंगार, सोहै जी गली रत्नांक्यो हार।
नासिका मोती जी अति बण्यौ, अहो पाई नेवर महा सिरहा मैह-मंव।
कामा हो कुंडल अति भला, अहो नेक बुहं बिसो बिम सूर अर चंद।

नेमिकुमार जब तोरण द्वार पर पहुंचे तो उन्हें एक स्थान से अनेक पशुओं की करुण पुकार सुनाई दी। उनकी पुकार सुन कर वे चुपचाप नहीं रह सके और उसका कारण पूछा। जब नेमिकुमार को मालूम पड़ा कि ये पशु उन्हीं की बरात में आये हुये बरातियो के लिये हैं तो वे चिन्तित हो उठे और सपत्ति को पाप का मूल जान कर विवाह के स्थान पर वैराग्य लेने को अधिक उचित समझा और ककन तोड़ कर गिरनार पर्वत पर चढ गये—

स्वामी जीव पसू सहु वीना जी छोड़ि, चाल्यौ जी फेरि तप नै रथ मोडि।
कांधे जी सुराहू लीधी पालिकी, अहो जं जं कार भयो असमान।
सुरपति विनौ जी बोलै घणौ, स्वामि आइ चढ्यो गिरनारि गढ थानि ॥७३॥

क्योंकि जहां जीव दया नहीं है वहां सब बेकार है—
जप तप संजम पाठ सहु, पूजा विधि व्यौहार।
जीव दया विण सहु अफल, ज्यौ दुरजन उपगार।

लेकिन जब राजुल ने नेमिकुमार द्वारा वैराग्य धारण करने की बात सुनी तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ी—

अहो गइ जी वचन सुणता मुरछाई, काटि जी बेलि जैसी कुमलाई।
नाटिका थानक छाडिया, अहो मात पिता जब लाधी जी सार।
रुदन करो अति सिर धुणै, अहो कीना जी सीतल उपचार ॥७५॥

जब राजुल के माता पिता ने उसका दूसरे कुमार के साथ विवाह करने की बात कही तो राजुल ने उसे भारतीय संस्कृति के विरुद्ध बतलाया तथा नेमिकुमार के अतिरिक्त सभी को अपने पिता एव भाई के समान मानने का अपना निश्चय प्रकट किया। वह अपनी एक सहेली को लेकर गिरनार पर्वत पर गयी जहां नेमिनाथ मुनि दीक्षा धारण कर तपस्या मे लीन हो गये थे। राजुल ने नेमिनाथ से वापिस घर चलने को कहा, अपने सौन्दर्य की प्रशंसा की। विभिन्न १२ महिनो मे होने वाले

प्राकृतिक उपद्रवों की भयंकरता पर प्रकाश डाला एवं विविध प्रकार से अनुनय विनय किया—

> अहो ग्रैसा जी बारह मास कुमार, रिति रित भोग कीजे असिसार ।
> आयला जन्म को को गिरणै, अहो घर में जी नाज खावाजे की होइ ।
> पापि लांघरण करि मरो स्वामी मुवा थे लाकवी देई न कोई ॥६७॥

नेमिनाथ ने राजुल की वेदना बड़े ध्यान से सुनी लेकिन वे उससे जरा भी प्रभावित नही हुये । उन्होंने संसार की असारता, मनुष्य जीवन का महत्त्व, जगत् के पारवारिक सम्बन्धों के बारे में विस्तृत-प्रकाश डाला तथा वैराग्य लेने के निश्चय को दोहराया ।

राजुल नेमिनाथ की बातों से प्रभावित तो हुई लेकिन उसने स्त्रीगत भावों का फिर प्रदर्शन किया । लेकिन नेमिनाथ को वह प्रभावित नही कर सकी । नेमिनाथ की माता शिवादेवी भी वहीं आ गयी और उन्हें घर चल कर राज्य सम्पदा भोगने के लिये अपना अनुनय किया ।

> अहो माता सिवदेवि जी नेमि नै दे उपदेसि पुत्र सुकमाल तुहुं बालक वेस ।
> विन वस घर में जी थिति करौ, अहो सुखस्यौ जी भोगवौ पिता को राज ।
> विष्या हो लेरण बेला नहि स्वामि चौथै हो आश्रमि आतमा काज ॥११४॥

माता शिवादेवी एव नेमिनाथ में खूब वाद विवाद हुआ । माता ने विविध दृष्टान्तो से राज्य सम्पदा के सुख भोगने की बात कही जबकि नेमिनाथ जगत् के सुखो की असारता के बारे मे दृष्टान्त दिये ।

माता पिता के पश्चात् बलभद्र, श्रीकृष्णजी एव अन्य परिवार के मुखिया नेमिनाथ को समझाने आये लेकिन नेमिनाथ ने वैराग्य लेने का दृढ निश्चय प्रकट किया और अन्त में सावन शुक्ला ६ को वैराग्य ले लिया । तत्काल स्वर्ग से इन्द्रो ने आकर नेमिनाथ के चरणों की पूजा, भक्ति एवं वन्दना की । राजुल ने भी वैराग्य लेने का निश्चय किया और अपने आभूषण एवं वस्त्रालंकार उतार दिये तथा उसने आर्यिका की दीक्षा ले ली । वह विविध व्रतों एवं तप में लीन रहती हुई अन्त में मर कर १६ वें स्वर्ग मे इन्द्र हो गयी । नेमिनाथ ने कैवल्य प्राप्त किया और देश में सैंकडों वर्षों तक विहार करके तथा अहिंसा, अनेकान्त एवं अन्य सिद्धान्तों का उपदेश देकर देश में अहिंसा धर्म का प्रचार किया और अन्त में गिरनार से ही मुक्ति प्राप्त की ।

प्रस्तुत काव्य ब्रह्म रायमल्ल की प्रथम कृति है । इसे कवि ने संवत् १६१५ सावन कृष्णा १३ बुधवार के शुभ दिन समाप्त किया था । नेमीश्वररास की रचना झुंझुनु नगर में हुई थी जहाँ चारों ओर बाग बगीचे थे । महाजन लोग जहाँ पर्याप्त

संख्या में थे तथा जिसमें ३६ जातियाँ रहती थी। उस नगर के शासक चौहान जाति के थे जो अपने परिवार के साथ राज्य करते थे। नगर में श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर था और वही नेमिश्वररास का रचना स्थान था। प्रशस्ति में कवि ने अपने आपको मूलसंघ सरस्वती गच्छ के मुनि अनन्तकीर्ति का शिष्य होना लिखा है। पूरी प्रशस्ति महत्वपूर्ण है जो निम्न प्रकार है—

श्री मूलसंघ मुनि सरसुती गछ, छोडी हो चारि कषाय निसंग।
अनन्तकीर्ति गुरु विदितो, तासु तणौ सिषि कीयौ जी बखाण।
ब्रह्म रायमल्ल जगि जाणियै, स्वामी जी पार्श्वनाथ को जी थानि ॥१४१॥

रचना काल—

अहो सोलाहसै पन्द्राह रच्यौ रास, सावलि तेरसि सावण मास।
वरतै जी बुधि वासरै भलो, अहो जैसी जी बुधि दीन्ही अवकास।
पंडित कोई जी मत हसौ, तैसी जी बुधि कीयो परगास ॥१४२॥

रचना स्थान—

वागवाडी धरणी नीकै जी ठाणि, वसै हो महाजन नग्र झाझौणि।
पौणि छत्तीस लीला करै, गाम को साहिब जाति चौहाण।
राज करौ परिवार स्यौ, अहो छह दरसन को राखौ जी मान ॥१४३॥

छंद संख्या—

भण्यौ जी रासौ सिवदेवी का बालकौ, कडवाहो एक सौ अधिक पैताल।
भाव जी भेद जुवा जुवा, छंद नामा इहु शब्द सुभवर्ण।
कर जोडै कवियण कहै, भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ॥१४४॥

श्री नेमिजिणेसर पय प्रभु ॥

उक्त प्रशस्ति के अनुसार रास में १४५ कडवक छन्द होने चाहिये।

२. हनुमन्त कथा

प्रस्तुत कृति भी कवि की विस्तृत कृतियों में से है। भविष्यदत्त चौपई के समान इस रचना के भी हनुमन्तकथा, हनुमन्तरास एवं हनुमन्त चौपई आदि नाम मिलते हैं। हनुमान पौराणिक पुण्य पुरुषों में से एक हैं तथा उनकी कथा का प्रमुख उद्गम स्थान रविषेणाचार्य का पद्म पुराण है जो संस्कृत भाषा में है। हनुमान का जीवन समाज में लोकप्रिय रहा है इसलिये हनुमान के जीवन पर आधारित कितनी ही रचनाएँ मिलती हैं। प्रस्तुत कृति भी कवि की ऐसी एक लोकप्रिय कृति है। जिसकी कितनी ही प्रतियाँ राजस्थान के विभिन्न भण्डारों में संग्रहीत है।

ब्रह्म रायमल्ल ने कथा का प्रारम्भ चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना से किया है। इसके पश्चात् सरस्वती का स्तवन किया गया है तथा अपनी निम्न शब्दों में लघुता प्रकट की है—

समरौ सरसति सामणि पाय, होइ बुधि तुम्ह तणौ पसाइ।
हौं मूरिख मति अपढ अयाण, पंडित जन मोहया सु विहाण ॥१५॥
अक्षर पद नवि पाऊं भेव, लह्यो न अर्थ होइ बहु खेव।
लघु दीर्घ जाणुं नहीं वर्ण, करिवा कहौं कथा आचर्ण ॥१६॥

इसके पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द का नमन करके कथा को प्रारम्भ किया गया है। सुमेरू के दक्षिण भाग की ओर विद्याधरों की बस्ती थी। चारों ओर सघन हरियाली थी वनो मे चारो ओर वृक्ष लगे हुये थे। सुपारी धी कमरख था तथा निबु एवं आम के सघन वृक्ष, लोंग, अखरोट एव जायफल में लदे हुये वृक्ष थे। कुजा, मरवा एव रायचंपा की बेलियां जुही, पाडल, बोलश्री, चमेली, एवं मुचकंद के लता एव वृक्ष थे।

चोल सुपारी कमरख घणी, निबु अर आवांकण लचिचिणि।
मिरि बिदाम लौंग अखरोट, बहुत जाइफल फले समाद ॥८॥
कुंजौ मरवौ साटौ जाइ, बेलि सिहाली चंपौ राइ।
जुही पाडल बौलश्री कंद, चंबेली कनयर मुचकंद ॥९॥

आदितपुर बहुत सुन्दर नगर था जिसके राजा का नाम प्रहलाद था। उसके एक पुत्र था नाम था पवनकुमार। आदितपुर नगर सब तरह से सम्पन्न था। मंदिर थे, बाजार थे, बडे बडे व्यापारी थे। श्रावक गण धन धान्य से पूर्ण थे। एक दूसरे मे ईर्ष्या नही थी। कही मल्लयुद्ध होता था तो कही अखाडा चलता था। घर घर विवाह होते रहते थे। नगर मे मुनियो का आहार होता रहता था।

इसी भरत क्षेत्र मे मेरू के पूर्व दिशा की ओर वसन्त नगर था उसका राजा महेन्द्र था तथा रानी का नाम इन्द्रदवनि था। अजना उसकी पुत्री का नाम था। वह बहुत रूपवती थी। अजना जब पूर्ण युवती हो गई तो राजा ने अपने चारो मत्रियो से बुलाकर अंजना के लिये उचित वर की तलाश करने को कहा। प्रथम मन्त्री ने रावण से विवाह करने का प्रस्ताव किया। दूसरे मन्त्री ने रावण के पुत्र इन्द्रजीत एव मेघनाद मे से किसी एक के साथ विवाह करने के लिये कहा। तीसरे मन्त्री ने हिरणाभ के पुत्र अरिद कुमार से करने की सलाह दी। चौथे मन्त्री ने पवनजय के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा। सभी सभासदो को अन्तिम प्रस्ताव अच्छा लगा।

कुछ दिनों पश्चात् अष्टान्हिका पर्व आ गया और सब विद्याधर अष्टान्हिका पूजा के निमित्त नन्दीश्वर द्वीप चले गये। वहा भक्तिपूर्वक पूजा होने लगी। वहीं

पर पवनकुमार के पिता प्रहलाद आ गये। दोनों राजा मिलकर अतीव प्रसन्न हुए—

बहुत आनन्द दुहु मन भयो, ताको वर्णन जाइ न कह्यो।
कनक सिला सीमें अति भली, बैठा तहाँ भूपति अति बली।

राजा महेन्द्र ने अपनी पुत्री अंजना का राजा प्रहलाद के सामने प्रस्ताव रखा और कहने लगा—

मुझ पुत्री सुन्दरि अंजनी, रूप विवेक कला बहु भरणी।
वर प्राप्ति सा कन्या भई, निस बासरि मुझ निद्रा गई।
चिंता अधिक भई सरीर, तज्यों तंबोल अन्न अरु नीर।
राज कुंवार देखे सब टोहि, बात विचार न आवें कोइ ॥५६॥
हम ऊपरि करि दया पसाव, राखौ बोल हमारो राव।
बात तुम्हारे चित्त सुहाइ, पवन अंजना दीजै ब्याहि ॥६६॥

अन्त में विवाह का निश्चय हो गया और शुभ मूहरत में दोनों का विवाह हो गया। एक महीने तक वहा बारात ठहरी।

लंका में रावण का शासन था। वह तीनखंड का सम्राट था। चारों दिशाओं में उसकी धाक थी। लेकिन पुंडरीक नगर के राजा वरुण अपने आपको अधिक शक्तिशाली मानते थे। इसलिये रावण ने उस पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया और अपना दूत उसके दरबार में भेजा। इसके पश्चात् दोनो की सेनाओं में युद्ध छिडा लेकिन रावण जीत नही सका। वह वापिस लंका आ गया और सेना एकत्रित करके युद्ध की पुनः तैयारी करने लगा। रावण ने प्रहलाद राजा को भी सेना लेकर बुलाया। पवनकुमार ने अपने पिता के समक्ष स्वयं जाने का प्रस्ताव रखा और पिता की स्वीकृति से सेना को साथ लेकर चल दिया। रात्रि होने पर सरोवर के पास पडाव डाल दिया। वहां पवनकुमार ने चकवी के विरह को देखा। पवनकुमार को अजना की याद आ गयी जिसको उसने अकारण ही १२ वर्ष से छोड रखा था। अन्त मे वह अपने मित्र की सहायता से तत्काल उसी रात्रि को अंजना से मिलने गया। अजना से अपने किये पर क्षमा मागी और दोनो ने रात्रि आनन्द से व्यतीत की। अजना की प्रार्थना पर उसे एक स्वर्ण अंगूठी देकर पवनंजय वापिस युद्ध भूमि के लिये चल दिया।

अंजना गर्भवती हो गयी। चारों ओर चर्चा होने लगी। उसकी सास को जब मालूम पडा तो अंजना ने अपना स्पष्टीकरण दे दिया लेकिन किसी ने उस पर विश्वास नही किया और उसको अपने पिता के घर भेज दिया। पिता ने भी उसके चरित्र पर सन्देह किया और बहुत कुछ समझाने पर भी किसी बात पर भी

विश्वास नहीं किया और अंजना को देश निकाला दे दिया। होनहार ऐसा ही था। कवि ने ऐसी घटनाओं पर अपनी बहुत सुन्दर टिप्पणी दी है—

> जा दिन आवै आपदा ता दिन प्रीत न कोइ।
> माता पिता, कटुंब सहु ते फिरि बैरी होइ।
> कंत सासु सुसरो पिता, रथ बल अधिक अनूप।
> सुन्दरी निकली एकली, यौ संसार सरूप ।।२७।।

अपने पिता की नगरी से अंजना अपनी एक दासी के साथ भयंकर वन में पहुंची। उसी वन में उसे एक मुनि के दर्शन हुए जिससे उसको बहुत कुछ सांत्वना मिली। उसने णमोकार मन्त्र का उच्चारण किया। मुनि ने भी उन्हें उपदेश दिया और विपत्ती में धैर्य धारण करने के लिये कहा। मुनि से अजना ने अपनी विपत्ति का कारण पूछा। अजना ने अपने पूर्व सचित पाप कर्मों का फल जानने के पश्चात् वह और उसकी दासी वन मे रहने लगी। वही एक रात्रि को गुफा मे अजना ने पुत्र को जन्म दिया।

> गुफा मध्य अति भयो उजास, जाणकि दिणयर कियो प्रकास।
> रूप कला गुण लहै न पार, परतखि··········काम अवतार ।।७९।।
> दिवयर कोटि दिपै तस देह, सोल कला चन्द्र मुख एह।
> तेज पुंज दीजै वर वीर, महाबज्र तसुं चर्म सरीर ।।८०।।

उसी गुफा के ऊपर से एक विद्याधर विमान द्वारा सपत्नीक जा रहा था। जब उसे मालूम हुआ तो वह गुफा में जाकर अजना एवं नवजात शिशु के सम्बन्ध में जानना चाहा। दासी द्वारा जब बात मालुम हुई कि वह तो उसका मामा ही है, वह तत्काल अंजना को अपने साथ ले गया और बालक का जन्मोत्सव मनाया। ज्योतिषी ने जन्म कुडली बनायी और कहा कि यह बालक अपूर्व तेजस्वी होगा तथा अन्त में निर्वाण प्राप्त करेगा। मामा के विमान में पांचों बैठ कर चल दिये। बालक मामा के हाथ मे था। विमान ऊपर चला जा रहा था कि मामा के हाथ से छूट कर वह नीचे गिर पडा। अजना पर फिर विपत्ति आ गयी। नीचे जब विमान को उतारा तो देखा बालक प्रसन्न होकर अगूठा चूस रहा है। अंजना की प्रसन्नता का पार नही रहा अन्त मे वे सब अपने घर आ गये। अंजना अपने मामा के घर रहने लगी।

इधर पवनकुमार रावण से सम्मानित होने के पश्चात् वापिस अपने देश लौट आया। वहां आने पर जब उसे अंजना नही मिली तो वह तत्काल अपने साथी के साथ राजा महेन्द्र के यहां गया। जब वहां भी उसे अंजना नही मिली तो वह उसके विरह मे उन्मत्त होकर चारों ओर वन, पर्वत एवं गुफाओं में उसकी तलाश करने लगा। लेकिन फिर भी उसे अंजना नहीं मिली। अन्त मे उसके पिता श्वसुर आदि

सभी उसे खोजते वहां आ गये और पवनंजय को अंजना मिलने की खुशखबरी सुनायी। कुछ समय पश्चात् पवन कुमार उसको साथ लेकर वापिस आदित्पुर चला गया और वहां सुख पूर्वक राज्य करने लगा।

बहुत वर्षों पश्चात् रावण का फिर संदेश लेकर दूत आया और शीघ्र ही सेना लेकर वरुण को पराजित करने का आदेश दिया। हनुमान ने अपने पिता के साथ जाने का प्रस्ताव रखा। लेकिन पिता ने बालक हनुमान को युद्ध की भयानकता के बारे में बतलाया लेकिन उसने एक भी नहीं सुनी। अन्त में पिता ने उसे सम्मान के साथ विदा किया। हनुमान को नगर से निकलते ही शुभ शकुन हुये। कवि ने उन्हे निम्न शब्दों में गिनाया है—

> भये सुगन सुभ चालत बार, बांई देव्या करैं चोकार।
> बावौ तीतर बाई माल, बांई सारस सांड सियाल ॥११॥
> बांवो घूघू घूमै घणौं, देहि मान रावण पति घणौं।
> बावो सुरहो ठोकै कंध, बेगौ करे शत्रु को बंध ॥१२॥
> बावैं सिव करै चोकार, बावैं रासभ बारंबार।
> आडी फिरि आई लौंगती, बांधैं शत्रु हण् भूपति ॥१३॥

हनुमान ने वरुण की सेना को सहज ही परास्त कर दिया। इससे चारों ओर उसकी जय जय कार होने लगी। एक दिन हनुमान अपने दीवान के साथ बैठे हुये थे। एक दूत ने हनुमान के हाथ मे पत्र दिया जिसमें उनसे कोंकिदा के राजा सुग्रीव की अत्यधिक सुन्दर पुत्री पद्मावती के साथ विवाह करने की प्रार्थना की गई थी। कुछ समय पश्चात् खरदूषण के मरने एवं संबुक के पतन के समाचार सुनकर हनुमान को भी दु:ख हुआ।

पर्याप्त समय के पश्चात् हनुमान के पास पत्र लेकर फिर एक दूत आया पत्र मे निम्न पंक्तियां थी—

> दूजा दिन आयो एक दूत, लिख्यो लेख दीनौ हनुवंत।
> सीता हरण कही सहु बात, राम लखमन की कुसलात ॥५॥
> रामचन्द्र कीन्हो उपगार, सहु सुग्रीव सुण्यो व्योहार।
> राम छुडाई आइ सुतार, सुणी सहु ते बात विचार ॥६॥

पत्र को पढ़ कर हनुमान शीघ्र ही राम के पास गये। राम ने हनुमान का स्वागत किया और सीता हरण की बात बतलायी तथा तत्काल लंका में जाकर सीता से मिलकर निम्न संदेश देने के लिये कहा—

> कहि जी सिया छु काढं तोहि, सकल जन्म सब बेरउ होई
> सिया धर्म सो जो नवि करे, तास भार धरती घर रहे ॥२५॥

हनुमान राम का शुभाशीर्वाद लेकर लंका के लिये रवाना हुये। मार्ग में दो मुनियों को संकट में देख कर उनका उपसर्ग शान्त किया। वहीं पर लंका सुन्दरी से विवाह किया और उसे सीता के सम्बन्ध में बात बतलायी।

हनुमान लंका मे जाकर विभीषण से मिले। वहां उनका उचित स्वागत हुआ। हनुमान जहा सीता रहती थी वहां गये।

हनुमान ने वहां सीता के दर्शन किये। सर्व प्रथम राम नाम की मुद्रिका को ऊपर से सीता के पास गिरा दी। मुद्रिका देख कर सीता प्रसन्न हुई। उधर रावण को भी मन्दोदरी ने बहुत समझाया। उसके पहले ही १८ हजार राणियां थी और वे भी एक से एक सुन्दर थी। सीता की भी मन्दोदरी ने निम्न शब्दों मे प्रशंसा की—

तुम्ह सम रूप नहीं को नारि, संयम सील बरत आचार।
धनि पिता माता जिहि जणी, धनि रामचन्द्र तस कामिनी ॥३६॥

हनुमान ने सीता से राम के समाचार कहे तथा सीता को छुड़ाने का रामचन्द्र का निश्चय घोषित किया। हनुमान एवं सीता ने एक दूसरे की बात पूछी तथा किस तरह सीता का हरण किया गया वह बतलाया। सुग्रीव का राम से जाकर मिलना तथा उन्हें अपनी राजधानी मे लाकर ठहराने की बात कही।

उधर मन्दोदरी ने हनुमान के आने की बात रावण से कही तो उसने तत्काल उसे बाध कर लाने का आदेश दिया। हनुमान ने सबका सामना किया। रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजीत को हनुमान को बांध कर लाने के लिये भेजा। अन्त मे इन्द्रजीत हनुमान को रावण के पास ले जाने में सफल हो गया। रावण ने हनुमान को बहुत समझाया, संसार का स्वरूप बतलाया, लेकिन रावण ने एक भी नही सुनी। हनुमान से अपने मरण की बात बतलायी और पूंछ के कपड़ा रूई आदि बाधने तथा उस पर तेल डालने के लिये कहा। हनुमान ने तत्काल अपनी पूंछ चारों और घुमा दी जिससे लंका जलने लगी। इसके पश्चात् हनुमान वापिस राम के पास आ गये। राम ने हनुमान का राजसी स्वागत किया। वापिस आने के पश्चात् हनुमान ने लंका का पूरा वृत्तान्त सुनाया। इसके पश्चात् राम ने लंका विजय के लिये सेना तैयार की और वे लका विजय के लिये चल पड़े। इसके पहले कि वे रावण पर आक्रमण करते उन्होंने रावण को समझाने के लिये अपना दूत भेजा लेकिन रावण ने दूत की बातों पर कोई ध्यान नही दिया तथा उसके नाक कान काटने का आदेश दिया।

अन्त मे राम को लंका पर आक्रमण करना पड़ा। दोनो की सेनाओ में घोर युद्ध हुआ और अन्त मे लक्ष्मण के हाथ से रावण का अन्त हुआ। सीता को लेकर राम वापिस अयोध्या लौट आये। हनुमान कुंडलपुर पर राज्य करने लगे। बहुत

समय तक राज्य करने के पश्चात् हनुमान को जगत् से उदासीनता हो गयी। उन्होंने मुनि दीक्षा धारण कर ली और महानिर्वाण प्राप्त किया।

रचना काल

कवि ने अपने इस काव्य को संवत् १६१६ वैशाख कृष्णा ६ शनिवार को समाप्त किया। उसने नम्रतापूर्वक अपने लघु ज्ञान के लिये सब विद्वानों से क्षमा मांगी है। जिसका उल्लेख उसने अपनी प्रशस्ति मे किया है।[1] उसने रत्नकीर्ति और मुनि अनन्तकीर्ति के नामो का उल्लेख किया है और अपने आपको अनन्तकीर्ति का शिष्य स्वीकार किया है।[2]

> मूलसंघ भव तारण हार, सारद गच्छ गरवौ संसार।
> रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटि मुनि गुणहनिधान।
> अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यौ नाम, कीर्ति अनन्त विस्तरी ताम।
> मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जाउन भणी।
> तास सिष्य जिण चरणां लीण, ब्रह्म राउमल मति को हीण।
> हणू कथा नौ कियौ प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर वास।

कवि की यह संवतोल्लेख वाली यह दूसरी रचना है।[3] कवि ने इसका रचना स्थन नही लिखा है और न तत्कालीन किसी शासक का नाम ही लिखा है। कवि ने प्रारम्भ और अन्त मे मुनिसुव्रतानाथ का स्मरण किया है जिससे पता चलता है कि इसकी रचना मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय मे हुई थी।[1]

प्रस्तुत राम काव्य मे ७५७ पद्य है जो वस्तुबन्ध, दोहा और चौपई छन्दों मे विभक्त है। रास की भाषा राजस्थानी है।

---

१. भणी कथ्य मन मै धरि हर्ष सोलासै सोला शुभ वर्ष।
रिति वसत मास वैशाख, नौमि सनीसर कृष्णहि पास॥

२. मूलसघ भव तारण हार, सारद गच्छ गरवौ संसार।
रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटि मुनि गुणहनिधान।
अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यौ नाम, कीर्ति अनन्त विरतरी ताम।
मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जासन भणी।
तास सिष्य जिण चरणां लीणा, ब्रह्म राउमल मति को हीण।
हरण कथा नौ कियो प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर वास।

३. प्रस्तुत पाडुलिपि एक गुटके मे है जो महावीर भवन में संग्रहीत है। गुटका का लेखनकाल सवत् १७१६ पौष सुदी प्रतिपदा है।

३. ज्येष्ठ जिनवर कथा

यह कवि की लघु रचना है जिसमें प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का जीवन चरित्र अंकित है। प्रथम तीर्थंकर होने के कारण वे सबसे बड़े जिन हैं, इसलिये इस कथा का नाम जेष्ठजिनवर कथा रखा गया है। इसका रचना काल संवत् १६२५ तथा रचना स्थान सांभर (राजस्थान) है। प्रस्तुत कथा का अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर में संग्रहीत है। रचना सामान्य है।

४. प्रद्युम्नरास

परदवरणरास ब्रह्म रायमल्ल की रास संज्ञक कृतियों में महत्वपूर्ण कृति है। राजस्थानी भाषा में निबद्ध इस रास काव्य का रचनाकाल संवत् १६२८ भादवा सुदी २ बुधवार है।[1] गढ हरसोर इसका रचना स्थान है। हरसोर जयपुर राज्य का ही एक ठिकाना था जहां जैन श्रीमन्तों की अच्छी बस्ती थी। जिनमन्दिर था तथा उसमे पूजा व्रत विधान होते रहते थे। कवि ने सम्भवतः संवत् १६२८ का चातुर्मास यहीं व्यतीत किया था और वहीं श्रावकों के आग्रह से इस रास की रचना समाप्त की थी।[1]

प्रद्युम्न की गणना १६६ पुण्य पुरुषों में की गयी है तथा २४ कामदेवों में भी प्रद्युम्न का सम्मानित स्थान है। ये नवें नारायण श्रीकृष्ण जी के पुत्र थे। चरम शरीरी थे। जैन वाङ्‌मय में प्रद्युम्न के चरित्र का महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी एवं राजस्थानी मे विभिन्न कवियों द्वारा निबद्ध प्रद्युम्न के जीवन पर २५ कृतियां खोज ली गयी हैं।[2] ब्रम्ह रायमल्ल के पूर्व निबद्ध ७ कृतियां मिलती है और प्रस्तुत रास काव्य के रचना के पश्चात् १७ कृतियां और लिखी गयी जिनसे प्रद्युम्न के जीवन की उत्तरोत्तर लोकप्रियता का भान होता है।[2]

रास काव्य का मूल्यांकन

प्रद्युम्न रास का प्रारम्भ तीर्थंकर की वन्दना से होता है इसके पश्चात् जिनवाणी तथा फिर निर्ग्रन्थ गुरू को नमस्कार किया गया है। कवि ने फिर अपनी अल्पज्ञता का निम्न पद्य में वर्णन किया है—

हो हौ मूढि अति अपढ अयाण, भावभेद जाणौं नहीं जी
हो थोडी जी बुधि किम करौ बखाण, रास भणौ परदवण को जी।

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग—पृष्ठ संख्या १४५
१. हो सोलहसै अठ्ठवीस विचारो, हो भादवा सुदि द्वितीया बुधवारो।
गढ हरसोर महाभलौ जी हो तिमै भला जिणोसुर थानौ।
श्रीवत लोग बसै भलाजी, हो देव शास्त्र गुरू राखै मानौ ॥१६४॥
२. देखिये-लेखक द्वारा सम्पादित प्रद्युम्न चरित्र की प्रस्तावना, पृ० ४३

द्वारिका के वर्णन से रास प्रारम्भ होता है। वहां अंधकवृष्टि राजा थे जो सम्यक्दृष्टि श्रावक थे। कुन्ती इसी की पुत्री थी जिसका पांडुराज से विवाह हुआ था। इसका पुत्र वसुदेव था तथा उसकी पत्नी का नाम रोहिणी था जो रूप सौन्दर्य में अप्सरा के समान थी (रूपकला अपसरा समान)। इसके दो पुत्र नारायण एवं बलिभद्र थे। दोनों ही शलाका पुरुषों में थे तथा जैन धर्म के प्रति उनका विशेष अनुराग था। एक दिन नारायण के घर पर नारद ऋषि का आगमन हुआ। ऋषि का स्वागत सत्कार करने के पश्चात् नारायण ने नारद से अढ़ाई द्वीप का समाचार कहने के लिये निवेदन किया क्योंकि नारद का सभी क्षेत्रों एवं स्थानों पर आवागमन रहता था। नारद ने कहा कि पूर्व और पश्चिम दोनों में केवल ज्ञानी विचरते हैं और उसके समवसरण में प्राणी मात्र धर्मलाभ लेते हैं। इसके पश्चात् नारद महलों मे गये जहां श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा रहती थी। सत्यभामा ने नारद का स्वागत नही किया और अपने ही शृंगार में व्यस्त रही। इस पर नारद ने सत्यभामा को गर्व नहीं करने की बात कही किन्तु इस पर वह उल्टे नारद को मान कषाय त्यागने का उपदेश देने लगी। इस पर नारद क्रोधित हो गये और निम्न शब्दों में उसकी भर्त्सना की—

> हो भणै रवीसुर देवी अभागी, हो हम नै जी सीख देण तू लागी।
> पाप धर्म जाणै नहीं जी, हो मुझ नै जी मानदान सहु आपै।
> सुर नर सहु सेवा करै जी, हो तीनि लोक मुझ थे सहु कंपै।

सत्यभामा ने उसका फिर कटाक्ष रूप में उत्तर दिया जिससे नारद ऋषि और भी जल गये। उन्होने निश्चय किया कि सत्यभामा अपने रूप लावण्य के मद में चूर है इसलिये श्रीकृष्ण जी के इससे भी सुन्दर वधु लानी चाहिये। इसी विचार से वे चारों ओर घूमने लगे। वे विद्याधरो की नगरी में गये और देश की विभिन्न राजधानियों में गये। अन्त में चल कर वे कुण्डलपुर पहुंचे जहां भीषमराज राज करते थे। श्रीमती उनकी पटरानी थी। रूप कुमार पुत्र था तथा रुक्मिणी पुत्री थी। एक मुनि ने नारद ऋषि के आने के पूर्व ही रुक्मिणी का विवाह कृष्णजी के साथ होगा ऐसी भविष्यवाणी कर दी थी। जब रुक्मिणी की भुवा सुमति ने मुनि की भविष्य-वाणी के बारे मे बतलाया तो भीषम राजा ने श्रीकृष्ण जी के साथ विवाह करने का विरोध किया तथा शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना निश्चय किया।

नारद ऋषि भीषम राजा के महल में गये। वहां रानियों ने नमस्कार करके उन्हे उचित आदर सत्कार दिया। रुक्मिणी ने आकर जब नारद की वन्दना की तो उसे श्रीकृष्ण जी की पटरानी बनने का आशीर्वाद दिया। नारद वहीं से कृष्ण जी की सभा में गये और वहां उन्होंने निम्न बात कही—

हो नारद बोलै हरी नरेसो, हो कुंडलपुर बसै असेसो ।
भीषम राजा राजई जी, हो तिहकै सुता रुपिणी जाणों ।
तासु रूप लिखि आणियौ जी, हो सोमै नाराईण कै राणी ।।३६।।

भीषमराजा ने रुक्मिणी के विवाह की तैयारियां प्रारम्भ कर दी । लेकिन जब उसकी भुवा को मालूम पड़ा तो वह अत्यधिक चिन्तित हुई और पत्र के द्वारा श्रीकृष्ण जी को निमन्त्रण भेज दिया । पत्र वाहक ने पूरे समाचार मौखिक रूप से कहे कि विवाह के दिन नागपूजने के बहाने से रुक्मिणी बाग में आवेगी तब वहां भेंट हो सकेगी । पूर्व निश्चयानुसार रुक्मिणी वहां आगयी और कहने लगी–

हो ताहि औसरि रूपणि तहा आई, हो नाग देवता की पूज रचाइ ।
हाथ जोडि बिनती करै जी हो, जे छै सकल देवता साचौ ।
नाराइण अब आइज्यौ जी, हो फुरिज्यो सही तुहारी बाचो ।।४२।।

रुक्मिणी हरण की नगर मे जब खबर पहुची तो युद्ध की तैयारी प्रारम्भ हो गयी—

हो कुंडलपुर मैं लाधी सारो, ठाइ ठाइव पडि पुकारो ।
रूपिणि नै हरि ले गयो जी, हो राजा जी भषिम बाहर लागौ ।
साठि सहस रथ जोतिया जी, हो तीनि लाख घोडा सुर बागा ।।४५।।

रूक्मिणी सेना देख कर डर गयी और कृष्ण जी से 'अब आगे क्या होगा' कहने लगी । लेकिन श्रीकृष्ण जी ने शीघ्र ही धनुषबाण चलाना प्रारम्भ कर दिया और सर्वप्रथम रूपकुमार को धराशायी कर दिया । शिशुपाल और श्रीकृष्ण मे युद्ध होने लगा । और कृष्ण जी ने बाण से उसका भी सिर छेद दिया । उसके पश्चात् वे रूपकुमार को साथ मे लेकर रैवत पर्वत पर चले गये वहां रुक्मिणी के साथ विवाह कर लिया । द्वारिका पहुचने पर उनका जोरदार स्वागत किया गया ।

हो हलधर किस्न द्वारिका आया, हो जित्याजी सम निसाण बजाया

एक दिन कृष्ण ने अपना एक दूत दुर्योधन के पास भेजा और कहलवाया कि रुक्मिणी और सत्यभामा दोनो मे से जिस किसी के प्रथम पुत्र होगा वह उसकी सुता उदधिमाला से विवाह करेगा । इधर सत्यभामा एवं रूक्मिणी मे यह तय हुआ कि जो दोनों मे से प्रथम पुत्र पैदा करेगी वह दुर्योधन की लडकी के साथ विवाह करने के पश्चात् दूसरी का सिर मुण्डन करेगी । नौ महिने के पश्चात् दोनो को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई । लेकिन कृष्णजी के पास रूक्मिणी का दूत पहिले पहुंचा और सत्यभामा का दूत पीछे । पुत्र उत्पन्न होने पर द्वारिका मे खूब उत्सव मनाये गये—

हो नग्र द्वारिका भयौ उछाहो, घरि घरि गावै कामणी जी ।।६७।।

जन्म के ६ दिन पश्चात् धूमकेतु नामक विद्याधर प्रद्युम्न को आकाश मार्ग से उडाकर ले गया और महाभयानक बन में एक सिला के नीचे दबा कर चला गया ।

इसी अवसर पर वहां कालसंवर का विमान आया। प्रद्युम्न के ऊपर आने पर जब विमान रुक गया तो नीचे उतर कर उसने शिला के नीचे से शिशु प्रद्युम्न को उठा लिया और अपनी रानी कंचनमाला को ले जाकर दे दिया। कालसंवर के पहिले ही पांचसौ पुत्र थे इसलिये उसने कहा—

हो थारे जी पुत्र पांचसै सारो, हो ईहि बालक को करै प्रहारो।
ते दुख आईन में सहया जी, हो सुणि बोलो संवर नर नाहीं।

कालसंवर प्रद्युम्न को मेघकूट दुर्ग पर ले गया जहां उसका राज्य था। वहां प्रद्युम्न की प्राप्ति पर अनेक उत्सव मनाये गये। उधर द्वारिका में शिशु प्रद्युम्न के हरण पर शोक छा गया। रुक्मिणी रोने पीटने लगी—

रुदन करै हरि कामिणी जी, हो धूणै सीस दुवै कर पीटै ॥७६॥
हो राजा जी भीखम तणी कुमारी, हो हिइडो सिर कूटै अति भारी।
बोलै जी खरी डरावणी जी, हो सुणी बात किस्न कै वि वाणि।
मुख तंबोल हरि रालीयोजी, हो हाहाकार भयो असमाने ॥७७॥

इतने ही मे नारद जी का द्वारिका आगमन हुआ। उनसे भी रुक्मिणी ने रूदनपूर्वक प्रद्युम्न के अपहरण की चर्चा की। ऋषि ने रुक्मिणी को सान्त्वना देते हुये शीघ्र ही आकाश मार्ग से विदेह क्षेत्र मे जाकर सीमन्धर तीर्थंकर से प्रद्युम्न हरण के बारे में जानने के लिये कहा। नारद ऋषि तत्काल वहा से उसी क्षेत्र में गये जहां सीमन्धर स्वामी का समवसरण लगा हुआ था। नारद ऋषि वन्दना करके समवसरण में बैठ गये। वहां सीमधर स्वामी ने प्रद्युम्न के पूर्वभव, उनके अपहरण का कारण एव वर्तमान में उसका निवास स्थान आदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी। नारद जी ने पुनः द्वारिका में जाकर निम्न बातें कही—

हो रूपिणिस्यो मुनि बात पयासी, हो सोलह बरष गयां घरि आसी
रीती सरवर जलि भरै जी, हो सूका बन फूलै असमानो।
दूध खिरै तुम्ह अंचला जी, हो तो जाणी साची सहनाणो ॥१०३॥

उधर कालसंवर के यहां प्रद्युम्न दिन प्रति बढने लगा। एक बार कालसंवर ने अपने पांच सौ पुत्रों को अपने शत्रु राजा सिंघ भूपति को पराजित करने के लिये भेजा लेकिन वे सफल नहीं हो सके। अन्त में प्रद्युम्न उनसे आज्ञा मांग कर सिंघरथ को पराजित कराने के लिये गया और शीघ्र ही उसे बांध कर कालसंवर के पास ले आया। इसके पश्चात् वह १६ गुफाओं में गया जहां से उसे कितनी ही सिद्धियां प्राप्त हुई। घर पर जाकर जब वह कंचनमाला से मिला तो वह उसके रूप को देख कर मोहित हो गयी और उससे वासना पूर्ति की बात करने लगी। अपनी तीन विधाएं भी उसी को दे डाली। प्रद्युम्न ने कंचनमाला से विद्या तो लेली लेकिन वह उसे माता एवं गुराणि कह कर वहां से चल दिया।

नमस्कार करि बीनवै जी वो, ईक माता अरु भई पुराणी ।
विद्या दान दीयो घणौ जी, हो पुत्र जोगि सो काज बखाणी ।।११७,।

कंचनमाल। ने तत्काल पांचसौ पुत्रो को बुला कर प्रद्युम्न को मारने की सलाह दी तथा कालसंवर के सामने अपना विरूप बनाकर प्रद्युम्न के द्वारा अपने शीलभंग के बारे में कहा। इस पर कालसवर अत्यधिक क्रोधित होकर प्रद्युम्न को पकडना चाहा लेकिन प्रद्युम्न के सामने सेना नही टिक सकी तथा अपनी विद्याबल से कालसवर को बांध लिया। इतने ही मे वहां नारद ऋषि आ गये और उन्होंने कालसवर से वास्तविक बात बतलाकर परस्पर के मनमुटाव को शान्त किया—

हो संवरि बाण जाई नवि संधिउ, नागपासि स्यौ तंकरण बंधिउ ।
कामदेव रिसि जीतियो जी, हो तौलग नारद मुनिवर आयो ।।१२४।।

नारद ने प्रद्युम्न से द्वारिका चलने को कहा। प्रद्युम्न ने द्वारिका जाने के पूर्व सर्व प्रथम कंचनमाला से क्षमा मांगी और कालसवर से आज्ञा लेकर बिमान द्वारा नारद के साथ द्वारिका के लिए प्रस्थान किया।

द्वारिका मे प्रवेश करने के पूर्व प्रद्युम्न ने दुर्योधन से उसकी लड़की उदधिमाला को छीन ली तथा माया का घोडा बना कर भानुकुमार के द्वारा घुडसवारी करने पर उसे खूब छकाया तथा पटक दिया प्रद्युम्न इस समय वृद्ध ब्राम्हण के वेश मे थे।

हो फेर्‌या जी घोडा चाबुका दीया, आडा उभौ राखिया जी ।।१४२।।

प्रद्युम्न सत्यभामा के घर गया जहां भानुकुमार का विवाह था। वहा उसने वृद्ध ब्राम्हण का रूप बनाया—

विप्र रूप बूढौ भयोजी, हो छिटिक्या होठ निकस्या दंतो ।
मुंडि हाथ डगमग करै जी, हो बैठो मंडप माहि हसंतों ।

प्रद्युम्न ने कहा कि ब्राम्हण को जो यदि भर पेट जिमाता है तो वह वांछित फल प्राप्त करता है। सत्यभामा ने यह सुनकर उसको बैठने को आसन दिया और थाल मे भोजन परोस दिया। प्रद्युम्न सारा का सारा भोजन खा गया और पानी भी खूब पी गया। फिर उसने मुंह मे हाथ डाल कर उल्टी कर दी जिससे सारा महल दुर्गन्ध से भर गया। इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने ब्रम्हचारी का रूप धारण कर लिया। और अपनी माता रूक्मिणी के घर चला गया। माता से दुर्बलता एवं चिन्ता के समाचार पूछने पर रूक्मिणी ने पुत्र के वियोग के कारण होने वाली दशा की बात कही। प्रद्युम्न अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हो गया और माता के चरण छुए।

हो नमस्कार करि चरणां लागो, हो भीखम पुत्री को दुख भागो ।
मधुरवाल आनंद कालो, हो बूझै बात हरिष करि मातो ।
सहु संवर का घर तणी जी, हो मयण मूल की कही बतातो ।।१५१।।

प्रद्युम्न ने अपने शौर्य, पराक्रम एवं विद्याबल को अपने पिता स्वयं श्रीकृष्ण जी को भी बतलाने की एक युक्ति रची । उसने रुक्मिणी का हरण कर लिया और श्रीकृष्ण, बलराम आदि सभी को युद्ध के लिए ललकारा—

है कहिज्योजी जी तुम्ह बलिभद्र भुझारो, हो नाना घालि होई असवारो
रुपिणि मैं हूं ले चल्यो जी, हो पोरिष छै तो आई छुडा जे ।।१६६।।

प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त पांचों पाण्डवों को भी युद्ध के लिये ललकारा । श्रीकृष्ण अपनी समस्त सेना के साथ युद्ध भूमि में आ डटे । प्रद्युम्न ने भी मायामयी सेना तैयार की । कवि ने युद्ध का जो वर्णन किया है वह संक्षिप्त होते हुए भी महत्वपूर्ण है—

हो असवारां मारै असवारो, हो रथ सेथी रथ जुडै भुझारो ।
हस्तीस्यौ हस्ती भिडैजी, हो वरणै कहो तो होई विस्तारो ।।

श्रीकृष्ण की जब सेना नष्ट होने लगी तो उन्होंने गदा उठाली और प्रद्युम्न पर आक्रमण करने के लिए दौड़े । इतने में रुक्मिणी ने नारद से वास्तविक बात प्रकट करने के लिए कहा । जब श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न को अपने पुत्र के रूप मे पाया तो उनका दिल भर आया । युद्ध बन्द कर दिया गया । प्रद्युम्न को समारोह के साथ द्वारिका मे ले जाया गया । प्रद्युम्न का उदधिमाला से विवाह हो गया और वे आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगे ।

कुछ समय पश्चात् भगवान नेमिनाथ का उधर समवसरण आया । सभी उनकी वन्दना को गये । समवसरण मे जब श्रीकृष्ण जी के राज्य की अवधि पूछने पर नेमिनाथ ने बारह वर्ष के पश्चात् द्वारिका दहन की बात कही । प्रद्युम्न ने संसार की असारता को जान कर वैराग्य धारण कर लिया और घोर तपस्या करके कर्मों के बन्धन को काट कर मोक्ष पद प्राप्त किया ।

कवि ने अन्त मे अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो लोई, हो अनंतकीर्ति जाणै सहु कोई ।
तासु तणो सिषि जाणिज्योजी, हो ब्रह्म राइमलि कीयो बखाण ।।१९३

मूल्यांकन

प्रद्युम्न रास शुद्ध राजस्थानी भाषा की कृति है । इसमें तत्कालीन बोल-चाल के शब्दो का एव लोक शैली का सुन्दरता से प्रयोग किया गया है । प्रत्येक छन्द के

प्रारम्भ में 'हो' शब्द का प्रयोग किया गया है जो सम्भवत: अपने पाठकों के ध्यान को एकाग्र रखने के लिये अथवा वर्ण्य विषय पर जोर देने के लिये है। दिखावरण (३) परणी (६) बोल्या (१०) चाल्यौ (१३) मास्यो (१५) आइयौ (४०) चाल्यौ (४१) जैसी क्रिया पदों का प्रयोग हियडै (१६) भूवा (२४) किस्न (२५) ब्याहु (३७) हरिस्यौ (५१) जैसे शुद्ध राजस्थानी शब्दों का प्रयोग करके कवि ने राजस्थानी भाषा के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित किया है।

प्रद्युम्नरास का अपना ही छंद है। सारे काव्य में एक ही रास छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक छन्द में ६ पद है जिनमें २० से १८, १७, १७ तथा १६, १६ मात्राएं हैं। कवि ने इसे कड़वा छन्द लिखा हैं।

कवि ने पुराणों में वर्णित कथा के आधार पर ही रास काव्य की रचना की है। अपनी ओर से न तो कथा में कोई परिवर्तन किया है और न किसी नये कथानक को स्थान दिया है। हां कथा का विस्तार एवं संक्षिप्तीकरण अपने काव्य के छन्दों की सीमित सख्यां के अनुसार किया है। नेमिनाथ के समवसरण में केवल द्वारिका दहन की चर्चा ही होती है उसमे जैन सिद्धांतों का प्रतिपादन जो जैन कवियों की अपनी शैली रही है कवि ने उसे इस काव्य में स्थान नहीं दिया है।

सामाजिक तत्वो की दृष्टि से रास काव्य में कोई विशेष वर्णन तो नहीं आया किन्तु प्रद्युम्न के विवाह के समय लग्न लिखना, चौरी मण्डप बनाना, बधावा गीत गाना, वर कन्या के तेल चढाना, ब्राम्हणों द्वारा वेद मन्त्र का पाठ कराना आदि कुछ वर्णन तात्कालीन समाज की ओर सकेत है।

रास सुखांत काव्य है। प्रद्युम्न राज्य सम्पदा का सुख भोगने के पश्चात् गृह त्याग कर देते हैं और अन्त में घोर तपस्या के पश्चात् निर्वाण प्राप्त करते हैं।

कवि ने इसे गढ़ हरसोर में संवत् १६२८ (सन् १५७१) में पूर्ण किया था। उस दिन भादवा शुक्ला द्वितीया बुधवार था। हरसोर में उस समय श्रावकों की अच्छी बस्ती थी। वहां भव्य जिन मन्दिर थे तथा श्रावक गण देव शास्त्र एवं गुरु का सम्मान करते थे[1]।

---

१ हो सोलहसौ अट्ठवीस बीचारो, हो भादवा सुदि दुतिया बुधवारो।
गढ हरसौर महा भलो जी, हो तिथै भलो जिणेसुर थानो।
श्रीवंत लोग बसै भला जी, हो देव शास्त्र गुरु राखै मानो ॥१६४॥

पूरे रास में १९५ पद्य हैं जिसका कवि ने रास के अन्त में उल्लेख किया है[2] ।

५. सुदर्शन रास

प्रस्तुत कृति ब्रह्म रायमल्ल की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें अपनी सच्चरित्रता में प्रसिद्ध सेठ सुदर्शन का जीवन वृत निबद्ध है। यह एक रास काव्य है और इसकी भी वर्णन शैली वही है जो कवि ने अन्य काव्यों में अपनायी है। सर्व प्रथम रास काव्य चौबीस तीर्थंकरों की वंदना से प्रारम्भ किया गया है जो ५५ पद्यों में समाप्त होता है।

रास की कथा जम्बूद्वीप से प्रारम्भ होती है। भरतक्षेत्र में अंग देश है उसकी राजधानी चंपा नगरी है। उसके राजा धाडीवाहन तथा रानी का नाम अभया था। नगर सेठ थे श्रेष्ठि वृषभदास जो पूजा पाठ एवं वन्दना में अपार विश्वास रखते थे। सेठानी जिनमती भी धार्मिक प्रवृत्ति वाली थी। एक रात्रि के पिछले पहर मे सेठानी ने स्वप्न देखा और मुनि द्वारा स्वप्न फल बतलाये जाने पर दोनों पति पत्नि अत्यधिक प्रसन्न हुए कि उन्हे शीघ्र ही सुपुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। सेठ ने पुत्र जन्म पर खूब दान दिया, उत्सव किये एवं पूजा पाठ का आयोजन किया। उन्होंने पुत्र का नाम सुदर्शन रखा। बालक बडा हुआ। पढने लगा और जब वह युवा हो गया तो माता-पिता ने एक सुन्दर कन्या से उसका विवाह कर दिया। सुदर्शन के माता-पिता ने उसे गृहस्थी का समस्त भार सौंप कर जिन दीक्षा धारण करली। कुछ समय पश्चात् सेठ सुदर्शन के भी पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

एक दिन सेठ सुदर्शन कपिला ब्राम्हणी के घर के नीचे होकर निकले। कपिला सुदर्शन के रूप एव सौन्दर्य को देख कर उस पर आसक्त हो गयी। उसे चाहने लगी। एक दिन कपिला ब्राम्हणी के पति को कही बाहर जाना पड़ा। कपिला ने अपने पेट के दर्द का बहाना लिया और दुख: से विह्वल होकर चिल्लाने लगी तथा मन्दिर के ऊपर जाकर ढक कर सो गयी। सेठ सुदर्शन ऊपर गये और ब्राम्हणी की बीमारी के बारे में जानकारी चाही। जब वह अपने मित्र के साथ ऊपर गया तो ब्राह्मणी ने उसका हाथ पकड़ लिया और काम ज्वर का नाम लेने लगी। सेठ सुदर्शन ब्राह्मणी का चरित्र देखकर अचम्भित हो गया और अपनी स्त्री मनोरमा के अतिरिक्त सभी स्त्रियों को माता, बहिन एवं पुत्री के समान मानने की बात कहने लगा। सेठ ने ब्राम्हणी को बहुत समझाया तथा शील के महत्व को सामने रखा। अन्त मे वह ब्राह्मणी के चंगुल से मुक्त होकर घर पहुंचा।

---

२ हो कडवा एकसौ अधिक पंचाणू, हो रास रहस परवक्स बखाणौ।

कुछ दिनों पश्चात् बसन्त ऋतु आयी। चारों ओर पुष्प महकने लगे। राजा, रानी, सेठ सुदर्शन एवं उसकी पत्नी एवं पुत्र तथा कपिल ब्राह्मणी सभी वन विहार के लिये चले। जब रानी ने सेठ सुदर्शन को देखा तो वह उसकी अपूर्व सुन्दरता से प्रभावित हो गयी और उसके बारे में जानकारी चाही। रानी के पास ही कपिला ब्राह्मणी थी। पहिले तो उसने सेठ को नपुंसक बतलाया और रानी को कहा कि यदि वह सेठ को अपने जाल में फांस सके तब उसके चातुर्य को समझे।

रानी ने घर आकर अपनी मन की बात पंडित जी से कही। लेकिन पंडितजी ने रानी की बात को मानने के बजाय उसे शील महात्म्य पर खूब उपदेश दिया। लेकिन रानी ने कहा कि उसने कपिला ब्राम्हणी को वचन दे दिया है कि वह सुदर्शन को अपने वश में कर लेगी नही तो कटारी खाकर मर जावेगी। वचन का निर्वाह करना प्राचीन परम्परा रही है। अन्त में अनेक उपाय सोचे गये। अष्टान्हिका मे सेठ सुदर्शन श्मशान मे आकर ध्यान लगाता था। यह बात जब रानी की दासी को मालुम हुआ तो उसने महल के रक्षकों को भुलावे में डालने के लिये मानवाकृति के आटे के पुतले को प्रतिदिन लाने ले जाने लगी। और अन्त में आठवें दिन स्वयं ध्यानस्थ सेठ को रानी के महल में लाकर पलंग पर डाल दिया।

अहो सेठि सुदर्शन रह्यो धरि ध्यान, मनु कियो वज्र का थंभ समान।
आयोजी आप समीधियो, अहो मन वचन कायाजी लियो सन्यास।
मो उपसर्ग ये बरौ, अहो हाथि भोजन करो वन मै जी वास ॥१२२॥

रानी ने सेठ के साथ संभोग करने की कितनी ही चालें चली। विविध हाव भाव बतलाये। लेकिन वह सेठ को वश में नहीं कर सकी। अन्त में निराश होकर सेठ को बाहर निकाल दिया और स्वयं कपडे फाड कर अपने आप खरोच कर चिल्लाने लगी—

अही रच्यो जी प्रपंच सह फाडौजी चीर, कायुयौ तोडि बिलूरि सरीर।
बंधु बाहर करै पापणी, अहो सेठि पापी मुझ तोडियो अंग।
राति उपसर्ग किया घणा, अहो राउ स्युं कही जिम करै सिर भंग।

नगर में रानी की बात आंधी के समान फैल गयी। चारों ओर हाहाकार होने लगा तथा किसी ने भी सेठ सुदर्शन के चरित्र पर शका प्रकट नहीं की।

अहो श्रावक किया जी पालै हो सार, दान पूजा करै पर उपकार
नग्र नर नारि नै सील दे अहो, पंडित जाणौ जी जैन पुराण।
कर्म कुकर्म सो किम करै, अहो सील न छोडे हो ताहि पराण।

राजा ने जब रानी की बात सुनी तो उसके क्रोध का पार नहीं रहा और

उसने तत्काल सेठ को सूली लगाने का आदेश दिया। सेठाणी हाहाकार विलाप करती हुई सेठ के पास पहुंची तो उसने पूर्व जन्म के किये हुये पापों का फल बतला कर उसे सान्त्वना देना चाहा। सेठ को शूली पर चढ़ाने के लिये ले जाया गया और ज्योंही उसे शूली पर चढ़ाया वह शूली सिंहासन बन गयी। यह देख कर सेवक वहां से भागे और जाकर राजा से निवेदन किया। राजा ने उस पर विश्वास नहीं किया और तत्काल सेना लेकर वहां पहुंचा। देवताओं ने राजा को मार भगाया। राजा नंगे पांव सेठ के पास गया और विनयपूर्वक अपने अपराध के लिये क्षमा मांगने लगा। अन्त में सेठ ने देवताओं से राजा को क्यों मारते हो ऐसा कहा। देवों ने सेठ के चरित्र की बहुत प्रशंसा की और उसका खूब सम्मान करके स्वर्ग लोक चले गये।

रानी ने जब सब वृतान्त सुना तो उसने आत्मघात कर लिया तथा पंडिता पाडलीपुर चली गयी और वहां वैश्या के पास रहने लगी। सेठ सुदर्शन घर आकर सुख से रहने लगा तथा अपना जीवन धर्म कार्यमें व्यतीत करने लगा। एक दिन वहां मुनिराज आये तथा जब सेठ ने शूली वाली घटना की बात जाननी चाही तो मुनिराज ने विस्तार पूर्वक पूर्व भव की बातों का वर्णन किया। अन्त में सेठ ने मुनि दीक्षा ली और अनेक उपसर्गों को सहने के पश्चात् कैवल्य प्राप्त करके अन्त में निर्वाण प्राप्त किया।

इस प्रकार २०१ पद्यों में निर्मित सुदर्शन रास कवि की कथा प्रधान रचना है इसमें कथा का बाहुल्य है। सभी पद्य एक ही छन्द में लिखे हुये हैं तथा उनमें कोई नवीनता नहीं है। कवि ने अपना परिचय देते हुये अपने आपको मूलसंघ के मुनि अनन्तकीर्ति का शिष्य लिखा है[1]।

रास का रचना काल संवत् १६२९ वैशाख शुक्ला सप्तमी है। उस समय अकबर का शासन था जो सभी छह दर्शनों का सम्मान करता था[2]। रचना स्थान धौलहर नगर लिखा है जो सम्भवतः धौलपुर का नाम हो। धौलपुर स्वर्ग के समान था वहां सभी ३६ जातियां थी जो प्रतिदिन जिन पूजा करती थी।

---

१ अहो श्री मूलसंघ मुनि प्रगटो जी लोइ, अनंतकीर्ति जाणो सहु कोई
तास तणो सिषि जाणज्यो, अहो राइमल्ल ब्रह्म मनि भयो उछाह।
बुद्धि करि हीण जाणै नहीं, अहो बणायो रास सुदर्सन साह ॥१९८॥

२ अहो सोलहसै गुणतीसै वैसाखि, सातै जी राति उजालै जो पाखि।
साहि अकबर राजिया, अहो भोगवै राज अति इन्द्र समान।
चोर लबाड राखै नहीं, अहो छह दर्शण को राखै जी मान ॥१९९॥

३ अहो धौलहर नग्र बन वेहुरा थान, देवपुर सोभै जी सर्ग समान।
पौणि छतीस लीला करै, अहो करै पूजा नित जपै अरहंत ॥२००॥

६ श्रीपाल रास

जैन धर्म में श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी का जीवन अत्यधिक लोकप्रिय है। सिद्ध चक्र की पूजा के महात्म्य को जन जीवन तक पहुंचाने का पूरा श्रेय मैना सुन्दरी को है जिसने इस सिद्धचक्र व्रत एवं पूजा के महात्म्य से कुष्ट रोग से पीड़ित अपने पति श्रीपाल एवं उसके ७०० साथियो का कुष्टरोग दूर कर दिया था। इसलिये जैनाचार्यों एवं जैन विद्वानों ने इन दोनों के जीवन को लेकर विविध काव्य लिखे हैं। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी एवं हिन्दी में चरित, रास, चौपई, बेलि संज्ञक रचनाएं निबद्ध की गयी और उनके माध्यम से श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी का जीवन आकर्षण का केन्द्र बन गया।

रचना काल

प्रस्तुत रास कविवर ब्रह्म रायमल्ल की काव्य रचना है जिसमें उन्होंने २९८ पद्यों मे श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी के जीवन का विषद वर्णन किया है। यह रास कवि के काव्य जीवन की परिपक्व अवस्था का काव्य है जिसे उन्होंने सवत् १६३० अषाढ सुदी १३ शनिवार को राजस्थान के प्रसिद्ध गढ़ रणथम्भौर में समाप्त किया था। अष्टान्हिका पर्व मे विमोचित यह रास काव्य श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी को समर्पित काव्य है। रणथम्भौर उस समय धन जन सम्पन्न दुर्ग था। बादशाह अकबर का उस पर शासन था। दुर्ग मे चारो ओर छोटे-छोटे सरोवर, बाग एव बगीचे थे। सरोवर जल से अप्लावित थे तथा उद्यान वृक्ष और लताओं से आच्छादित थे। दुर्ग में जैन धर्मावलम्बियो की अच्छी सख्या थी। वे सभी धन सम्पत्ति से भरपूर थे। सभी श्रावक चार प्रकार के दान-आहारदान, औषधिदान, ज्ञानदान एव अभयदान के देने वाले थे। यही नही वे प्रतिदिन व्रत, उपवास, प्रोषध एव सामायिक करते थे। ब्रह्म रायमल्ल को भी ऐसे ही दुर्ग मे श्रावकों के मध्य कुछ समय के लिये रहना पड़ा और उन्होने श्रावकों के आग्रह से वहीं पर श्रीपाल रास की रचना की।

---

१. हो सोलहसै तीसो सुभवर्ष, हो मास आषाढ भण्यो करि हर्ष।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र सुभ सार।
कर्ण जोग दीसै भला, हो सोभन वार शनिश्चरवार ॥२९५॥
रास भणौं सरिपाल को।

हो रणथभ्रमर सौभै कवि लास, भरीया नीर ताल चहुं पास।
बाग विहरि बाडी घणी, हो धन कण सम्पत्ति तणों निधान
साहि अकबर राज हो। सौभै घणा जिणेसुर थान ॥२९६॥

कवि ने काव्य के अन्त में २९६ छन्दों का उल्लेख किया है जबकि रास में २९८ छन्द हैं। सम्भवतः कवि ने अन्तिम दो छन्दों को रास काव्य की छन्द संख्या में नहीं लिया है।

हो हूं से अधिका छिनवै छंद, कवियण भण्यों तासु मतिमंद।

काव्य के अन्त में कवि ने अपनी काव्य निर्माण के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करते हुये विद्वानों से श्रीपाल रास को पढ कर हंसी नहीं उडाने की प्रार्थना की है।

पद अक्षर की सुधि नहीं, हो जैसी मति दीनौ आकास।
पंडित कोई मति हंसो, तैसी मति कीनौ परकास ।।२९८।।
रास भणी श्रीपाल को।

कथा भाग

श्रीपालरास चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति से प्रारम्भ होता है। उज्जैयिनी नगरी के राजा पहुपपाल के दो पुत्रियां थी। बड़ी सुरसुन्दरी एवं छोटी मैनासुन्दरी थी। राजा ने सुरसुन्दरी को सोमशर्मा की चटशाला में पढने को भेजा। वहा उसने तर्कशास्त्र, पुराण, व्याकरण आदि ग्रन्थ पढ़े। छोटी लड़की यमधर नामक मुनि के पास पढ़ने लगी। जिससे मैनासुन्दरी ने भेद विज्ञान का मर्म जाना। पुत्रियों के वयस्क होने पर राजा ने सुरसुन्दरी से अपनी इच्छानुसार राजा का नाम बतलाने को कहा जिससे उसके साथ उसका विवाह किया जा सके। सुरसुन्दरी ने नागछत्रपुर के राजा का नाम लिया और पहुपपाल ने सुरसुन्दरी का तत्काल उससे विवाह कर दिया। दहेज मे राजा ने हाथी, घोड़े, वस्त्र, आभूषण, दासी दास आदि बहुत से दिये।

अस्व हस्ती बहुडाइजो, हो वस्त्र पटम्बर बहु आभर्ण।
दासी दास दिया घणा, हो मणि माणिक जड़या सोवर्ण ।।१६।।

एक दिन मैनासुन्दरी जब प्रातः पूजा से निवृत्त होकर पिता के पास आयी तो राजा ने उससे भी अपनी इच्छित वर का नाम बताने को कहा। मैना सुन्दरी प्रारम्भ से ही धार्मिक विचारो की थी इसलिये उसने उत्तर दिया कि जैसा भाग्य में लिखा होगा वही पति मिलेगा।

हो श्रावक लोग वसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत।
दान चारि सुभ सकतिस्यौ, हो श्रावक व्रत पाले मनलाइ।
पोसा सामाइक सदा, हो मत मिथ्यात न लगता जाइ ।।२९७।।

माता पिता कन्या का जिसके साथ विवाह कर देते हैं, लड़की उसी को अपना पति मान लेती है तथा देह और छाया के समान अभिन्न होकर रहने लगती है।

कुल कन्या सहि मैं वरै, करै स्नेह जिस देह क छांह ।।२०।।

राजा पाहुपाल को अपनी लड़की की यह बात अच्छी नहीं लगी उस समय तो उसने कुछ नहीं कहा लेकिन एक दिन जब वह वन क्रीडा को गया तो उसे वहां एक कोढी राजकुमार मिला जिसके साथ मे ७०० कोढी और थे। कवि ने कोढ़ियों का जो वर्णन किया है वह निम्न प्रकार है—

हो वहरी क्यौंकी कोढ कुजाति, ववरी कंडू ते बहु भांति।
सोहल पथरी बोबरी, हो बडौ बाउ जहि बैसे नाक।
कोढ मसूरिउ जाणि जे, हो बैठे गलै जिम काक ।।रास।।२५।।
हो कोढ उबंबर सेत सरीर, दाद कोढ अति दुःख गहीर।
खुसन्यो बाल रहे नही हो, चांदी कोढ उपजै साल।
गलत कोढ अंगुलि चुवै, हो निकलै हाड उपडै खाल।

राजा ने उसी के साथ मैना सुन्दरी का विवाह कर दिया। कवि ने विवाह विधि का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

हो लगन महूरत बेगि लिखाई वेदी मंडप सोभा लाइ।
वस्त्र पटंबर ताणियां, हो वर कन्या ने तेल चहोडि।
सोल सिंगार जु साजिया, हो बैठा वेदी अंचल जोडि ।।3४।।
हो बांभण भणै वेद झणकार, कामिणी गावै गीत सुचार।
भाट भणै बिउदावली, हो वर कन्या देखे नृप रूप ।।

मैना सुन्दरी ने बिना कुछ विरोध किये कोढी श्रीपाल को अपना पति स्वीकार कर लिया और उसी के साथ वन मे रहने को चल दी। राजा ने श्रीपाल को दहेज मे बहुत धन सम्पत्ति दासी दास के साथ रहने के लिये वन में भवन भी दिया। मैना सुन्दरी श्रीपाल के साथ रहने लगी। वह प्रतिदिन भगवान जिनेन्द्र की पूजा करती। एक दिन सयोग से उसी वन मे एक निर्ग्रन्थ साधु आये। मैनासुन्दरी एव श्रीपाल ने उनकी खूब सेवा सुश्रूषा की। मुनि ने श्रावक धर्म का वर्णन किया और जीवन मे उसे उतारने पर जोर दिया। अन्त में मैनासुन्दरी ने श्रीपाल की कोढ मुक्ति के बारे मे पूछा। इस पर मुनिश्री ने अष्टान्हिका में आठ दिन व्रत करने एव भगवान की पूजा करने को कहा—

हो मुनिवर बोलैं सुणौ कुमारि, सिद्धचक्र बरतौ संसारि ।
सिद्धचक्र व्रत तुम्ह करो, हो आठ दिवस सुधौं मन लाइ ।
आठ द्रव्य ले निर्मला, हो कौढि कलेस व्याधि सहु जाइ ।। ४६ ।।

सिद्धचक्र व्रत के महात्म्य से श्रीपाल एवं उनके साथियों का कोढ रोग दूर हो गया और उसके शरीर की लावण्यता चारों ओर चमकने लगी । श्रीपाल ने निम्न व्रत अंगीकार किये—

हो सिद्धचक्र पूजा करि सार, द्वारा पेखण दान अहार ।
पछै आप भोजन करै, हो पर कामिनी देखै निज मात ।
सत्य वचन बोलै सदा, हो तरस जीव को करै न घात ।।६०।।
हो द्रव्य परायो लेइ न जाण, परिग्रह तणो करे परमाण ।
करे अणुव्रत भावना हो, गुणव्रत तीन्यों पालै सार ।

कोढ दूर होने पर पहिले श्रीपाल की माता उधर आ गयी । इसके पश्चात् एक दिन मैनासुन्दरी के पिता ने जब श्रीपाल के अतिशय सुन्दर शरीर युक्त देखा तो उसने भी कर्म के प्रभाव को स्वीकार किया । श्रीपाल का उसने बहुत सत्कार किया और अपना आधा राज्य भी देने के लिए प्रस्ताव किया लेकिन श्रीपाल ने उसे स्वीकार नही किया । वे दोनों वहीं रहने लगे । श्रीपाल को श्वसुर के घर रहना उचित नहो लगा तो वह इसी चिंता मे चिन्तित रहने लगा । अन्त में वह मैनासुन्दरी से १२ वर्ष की आज्ञा लेकर रत्नदीप जाने का निश्चय किया । श्रीपाल के साथ मैना ने जाने की इच्छा प्रगट की तो उसने सीता का उदाहरण दिया जिसके कारण राम को अत्यधिक कष्ट उठाने पड़े थे—

फल लाग्या जे राम के हो, साथि तिया में सीया फिरै ।

श्रीपाल अपनी मा के चरण छू कर विदेश यात्रा के लिये प्रस्थान किया । अनेक ग्राम, नगर वन एवं नदियों को पार करने के पश्चात् वह भृगुकच्छ तट पर पहुंचा । उधर समुद्र तट पर धवल सेठ पांच सौ व्यापारियों के साथ रत्नद्वीप जाने की तैय्यारी मे था लेकिन उसके जहाज चल ही नहीं रहे थे । जब किसी निमित्त ज्ञानी मुनि से जहाज न चलने का कारण पूछा तो बतलाया गया कि जब तक बत्तीस लक्षणों से युक्त कोई युवक जहाज में नहीं बैठेगा तब तक जहाज नहीं चलेगा । सेठ ने अपने आदमियो को चारों ओर दौड़ाया । मार्ग में इन्हें श्रीपाल मिल गया । धवल सेठ श्रीपाल को देख कर अतीव प्रसन्न हुआ और उसका खूब आदर सत्कार किया । श्रीपाल को लेकर धवल सेठ का जहाजी बेड़ा रवाना हुआ । जब वे आधी दूर ही पहुंचे थे कि बीच मे उन्हें समुद्री चोर मिल गये और धवल सेठ को बन्दी बना कर

जहाजों में भरे हुए सामान को लूट लिया । श्रीपाल से जब सबने मिल कर प्रार्थना की तो उसने धनुष-बाण लेकर लुटेरों का सामना किया और उन पर विजय प्राप्त की । श्रीपाल की वीरता से धवल सेठ एवं उसके साथी अत्यधिक प्रभावित हुये और सेठ ने उसे अपना धर्मपुत्र बना लिया ।

दोहड़ा – कोटपाल बणिवर कहमे, ताइ ब्रु.............नर ।
ए ता मित्र जुतौ करो, जै होइ सबं संघार ।। ९६ ।।

श्रीपाल का जहाजी बेड़ा रत्नद्वीप पर आ पहुंचा । सर्व प्रथम वह वहां के जिनमन्दिर के दर्शनार्थ गया । वहां सहस्त्रकूट चैत्यालय था । चन्द्रमणिकान्त की जहां प्रतिमाएं थी । स्वर्ण के स्तम्भ थे । वेदी में पांच वर्ण की मणियां जड़ी हुई थी ।

हो सहसकूट सोभा बहु भांति, बंध्यो पीठ चंद्रमणि कांति ।
कनक थंभ चहुंदिसि बण्या, हो पंच वर्ण मणि वेदी जड़िउ ।
सिला सिंघासन सोभितौ हो जासि सिखाका आपण घड़िउ ।।

उस सहस्त्रकूट चैत्यालय के वज्र के कपाट थे लेकिन श्रीपाल के हाथ लगते ही वे खुल गये । श्रीपाल ने बड़ी भक्ति भाव से जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये । अष्ट द्रव्य से पूजा की और अपने आपको दर्शन करके धन्य समझा ।

भाव भगति जिण बिया हो करि स्नान पहरे सुभ चीर ।
जिण चरण पूजा करि हो झारो हाथ लइ भरि नीर ।।१०२।।
हो जल चंदन अक्षत शुभ माल नेवज दीप धूप भरि थाल ।
नालिकेर फल बहु लिया हो पुहपांजलि रचि जोड़्या हाथ ।
जिणवर गुण भास्या घणा हो जै जै स्वामी त्रिभुवन नाथ ।

रत्नदीप के विद्याधर राजा के पास मन्दिर के कपाट खुलने के समाचार पहुचे तो वह तत्काल वहां आया और श्रीपाल को अपना परिचय देकर अपनी सर्वगुणसम्पन्न कन्या रत्नमंजूषा से विवाह करने की प्रार्थना की । विद्याधर ने किसी अवधिज्ञानी मुनि द्वारा वज्र के कपाट खुलने वाले के साथ अपनी पुत्री के विवाह की भविष्यवाणी की बात सुनी थी । उसने अपनी पुत्री को 'गुणलावण्य पुण्य की खानि' कहा । तत्काल विवाह मंडप तैयार किया गया और सात फेरों के पश्चात् वह श्रीपाल की धर्मपत्नी हो गयी । साथ में उसे अपार दहेज भी प्राप्त हुआ ।

दे विद्याधर डाइजो हस्ती, घोड़ा कनक अपार ।।११०।।

श्रीपाल अपनी नवपत्नी के साथ अपने बेड़े पर आया। धवल सेठ और उनके सभी साथियों ने ऐसी सुन्दर वधु प्राप्त करने पर उसे बधाई दी। श्रीपाल ने अपने साथियों को बड़ा भोज दिया।

> हो निरहुर मध्य भयो जैकार, सीरीपाल बोलो ज्योनार।
> तथा कुमति संजोगीया, हो कनक रतन दीना बहु दान।
> हाथ जोडि विनती करी, हो धवल सेठि मैं बोलो मान ॥११३॥

एक दिन रत्नमंजूषा ने श्रीपाल से पूरा परिचय जानना चाहा। श्रीपाल ने संक्षिप्त रूप से अपना परिचय दिया और विदेश यात्रा पर आने का निम्न कारण बताया

> हो हमस्यो कहै कथा गोपाल, राज चम्पा हु सीरीपाल।
> भास पिता की कोन सहो, केरा नहीं मैं अपजसी लोग।
> कामणि सेवक छाडियो हो, पूर्व कर्म परसि संजोग ॥११८॥

रत्नद्वीप से अनेक वस्तुओं को साथ लेकर धवल सेठ ने वहां से अपने देश को प्रस्थान किया। साथ में उसके ५०० जहाजों का बेड़ा था। श्रीपाल एवं रत्नमजूषा भी साथ थे। धवल सेठ रत्नमंजूषा का रूप लावण्य देख कर आपे में नही रह सका। वह दिन प्रतिदिन उसके साथ सहवास की इच्छा करने लगा। श्रीपाल एवं रत्नमजूषा के हास परिहास को देखकर वह बेहाल हो जाता और उसको प्राप्त करने का उपाय सोचता रहता।

> हो रैण मंजूषा सेवै कंत, धवल सेठि चालि कोसै दंत।
> नींद भूख तिरषा गई, हो मंत्री जोग्य कही सहु बात
> सुंदरि स्यो मेली करो हो, कै हौं मरौं करो अपघात ॥१२२॥

उसके मन्त्री ने सेठ को बहुत समझाया। कीचक एवं रावण के उदाहरण दिये। लोक में निन्दा होने की बात कही तथा श्रीपाल को अतीव पुण्य होने की बात बतलायी। लेकिन सेठ के मन पर कोई असर नहीं हुआ। अन्त में सेठ ने एक दांव फेंका और उसे एक लाख टका इनाम देने की बात कही—

> हाथ जोड़ विनती करै हो लाख टका पहुंचै स्यो रोक।
> सुंदरि हम मेलो करो, हो जाय हमारा मन को सोक ॥१२७॥

लाख टके की बात सुन कर मन्त्री को लोभ आ गया और वह श्रीपाल के वध की चाल सोचने लगा। उसने जहाज के चालक (धीमर) से मिल कर एक षडयन्त्र रचा जिसके फलस्वरूप जहाज के धीमर (मल्लाह) चोर-चोर चिल्लाने लगे।

श्रीपाल यह सुन कर जहाज के ऊपर चढ़ कर चारों ओर देखने लगा। धोखे से उस धीमर ने रस्सी काट दी जिससे श्रीपाल समुद्र में गिर गया। चारों ओर दुख छा गया। रैणामंजूषा विलाप करने लगी। उसने अपने सभी आभूषण छोड़ दिये तथा दिन रात आंसू बहाने लगी।

> ....हो रैण मंजूसा करे पुकार, सिर कूटै हीयो हणे
> हो कहणो कोडी भट भरतार ॥१३०॥

कामान्ध धवलसेठ ने अपनी एक दूती को रत्नमंजूषा के पास भेज कर उसे फुसलाना चाहा। दूती ने सेठ के वैभव की बात कही तथा मनुष्य जन्म की सार्थकता "खाजे पीजे विलसीजे हो, अवर जनम की कही न जाइ" इन शब्दों में बतलायी। रत्नमंजूषा के शरीर में उस पतिता की बात सुन पसीना आ गया और उसकी निम्न शब्दो में भर्त्सना करके उसे अपने यहां से निकाल दिया—

> हो सुणी सुंदरी कूटणि बात, हो उपनो दुख पसीनो गात।
> कोप करिवि सा बीनवौ हो नरक थे बेगि जाहि अब रांड
> पाप वचन तै भासिया हो इसा बोल थे होसी भांड ॥१३४॥

इसके पश्चात् वह कामान्ध सेठ स्वय उसके पास चला गया और कहने लगा—

> हाथ जोडि बीनती करै, हो हम उपरि करि वया पसाउ
> काम अग्नि तनु बालीयो हो राख्यै बोल हमारो भाउ ॥१३५॥

रत्नमंजूषा ने सेठ को अनेकों युक्तियो से पतिव्रत धर्म के बारे में कहा तथा दुश्चरित्र होने पर इस जन्म में ही नहीं दूसरे जन्म में भी जो नरक यातनाएं भोगनी पडती है उसके सम्बन्ध मे कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किये। लेकिन धवल सेठ के एक भी बात समझ में नही आयी। उसने रत्नमंजूषा का हाथ पकड़ लिया। इतने मे ही एक दैवी घटना घटी और रत्नमंजूषा के शील की रक्षार्थ जिनशासनदेव, ज्वाला मालिनी देवी, वायु कुमार और चक्रेश्वरी देवी वहां प्रगट होकर धवल सेठ की बुरी तरह दुर्गति की।

> हो ज्वाला मालिणी देवी आइ, दीनी मोहणि अग्नि लगाइ
> रोहिणी मौषो टंकियो हो विष्टा मुख में दीनी ठेलि।
> लात घमूका अति हणै, हो सांकल लोष गला मे मेलि ॥१४१॥

हो बालकुमार जब तब जाइ, दीनी ग्रविकी धवल चलाइ ।
जल कोलोल बहु उछलै हो चक्केसुरि ग्रति कीयौ कोप ।
ग्रोहण केरे जब क्यों हो, ग्रंधकार करियो ग्राटोप ।।१४२।।

हो संख ताते कूकके तेलि, मूल कालिका दीनो ठेलि ।
खेचर भेचर कुछ लहै हो ग्रश्रिजक आयो तहि ठाउ ।
मार मार मुखि उच्चरै हो, धवल सेठ मुखि कुहेकलाइ ।।१४३।।

धवल सेठ चारों ग्रोर विपत्ति को देखकर तथा ग्रसहाय वेदना झेल कर रत्नमंजूषा के चरणों में गिर पड़ा ग्रौर उससे क्षमा मांगने लगा ग्रौर ग्रपने किये पर पश्चाताप करने लगा। रत्नमंजूषा को उस पर दया ग्रा गयी ग्रौर चक्रेश्वरी ग्रादि देवियों से उसे छोड़ देने की प्रार्थना की।

उधर श्रीपाल ने समुद्र में गिरने के पश्चात् णमोकार मंत्र का स्मरण किया। कवि ने णमोकार मन्त्र की प्रभावना का भी वर्णन किया है। ग्रनायास ही एक लकड़ी का बड़ा टुकड़ा उसके हाथ ग्रा गया। श्रीपाल उस पर बैठ गया ग्रौर समुद्र के किनारे जा लगा। किनारे पर ही उस द्वीप के राजा के दो सेवक श्रीपाल की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उस द्वीप का नाम था 'दलवरणपटरण' तथा शासक का नाम धनपाल था। गुणमाला उसकी पुत्री थी। राजा ने जब एक बार मुनि से उसके विवाह की चर्चा की तो मुनि ने भविष्यवाणीं की थी कि श्रीपाल इस समुद्र को तैर कर ग्रावेगा ग्रौर वही गुणमाला का पति होगा। सेवकों ने जाकर तत्काल राजा से निवेदन किया। धनपाल चिर ग्रभिलाषित कुमार को पाकर ग्रत्यधिक हर्षित हुग्रा ग्रौर किनारे पर ग्राकर श्रीपाल से भेंट की। श्रीपाल के स्वागत में बाजा बजने लगे तथा चारण विरुदावाली गाने लगे।

हो भयो हरष राजा धनपाल, गयौ सामुहौ जहां सिरीपाल ।
गयउ छाडिउ तुरतिस्यौ, हो भेरी नफेरी नाद निसाण ।
साहण सेना साखती हो चारण बोलैं बिरुद बखाण ।। १६२ ।।

धनपाल ने श्रीपाल को कंठ लगाया। कुशल क्षेम पूछी तथा उसे हाथी पर बिठला कर 'दलपटरण' नगर में प्रवेश किया। तत्काल विवाह मंडप रचा गया ग्रौर उसमें श्रीपाल ग्रौर गुणमाला का विवाह संपन्न हुग्रा। दहेज में हाथी सोना तथा कितने ही गांव दिये —

हो भांवरि सात फिरिउ बहु याषि, कयो विवाह ग्रगनि दे साखि ।
राजा दीनो डाइजौ हो कन्या हस्ति कनक के काण ।
देस ग्राम दीना घणा, हो विनती करि कीनो बहुमान ।

श्रीपाल और गुणमाला सुख से वहीं रहने लगे। इतने में ही धवल सेठ का जहाज भी संयोग से उसी द्वीप में आ गया। राजा ने सेठ का बहुत आदर सत्कार किया तथा उसे राज्य सभा में आमन्त्रित करके उचित सम्मान किया। सेठ ने श्रीपाल को भी वहीं देखा। कुपालन्य श्रीपाल के बारे में जानकर सेठ उससे डर गया। और एक बार फिर उसे राजद्वार से निकालने की युक्ति सोची। वह एक डूम को बुला कर राज्य सभा में श्रीपाल को अपना सम्बन्धी बतलाने को कहा। डूम और डूमनी सपरिवार राज्य सभा में आकर विविध खेल दिखाने लगे और श्रीपाल को भी अपने ही परिवार का सिद्ध करने में सफल हो गये।

> डूमा कलंक आखियो हो राजा सुभट नै कंठि लगाइ ।। १७८ ।।
> हो एक डूमडी उठी रोई, मेरो सगो भतीजो होइ।
> एक डूमडी बोलई हो यह मेरो पुत्री भरतार।
> बहुत दिवस में आइयो हो कामि तणि फिर आयो गवार।
> आलि फेलि मोहा कियो हो, करी लड़ाइ भोजन जोग।
> समुद्र माझ लहुडउ पडिउ, हो लाधो बाबे करम के जोग ।। १८० ।।

राजा धनपाल ने श्रीपाल को डूम का पुत्र मान कर उसे तत्काल सूली लगाने का आदेश दिया। श्रीपाल ने फिर अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति देख कर शांत भाव से उसे सहने का निश्चय किया। उसे बुरे हाल में सूली पर ले जाया गया। रोती पीटती गुणमाला भी वहीं आ पहुंची और श्रीपाल से वास्तविक बात जाननी चाही। श्रीपाल ने धवल सेठ के जहाज में बैठी हुई अपनी पत्नी रत्नमंजूषा से उसके बारे में पता लगाने को कहा। गुणमाला दौड़ती हुई उसके पास गई और श्रीपाल का जीवन वृतात जान कर रत्नमजूषा को साथ लेकर राजा के पास आयी। रत्नमजूषा ने श्रीपाल के बारे में राजा से पूरा वृतांत कहा और उसके साहसिक कार्यों की पूरी जानकारी दी। तत्काल राजा ने आकर श्रीपाल से क्षमा मागी और फिर ससम्मान उसे नगर मे घुमा कर राज्य दरबार में लाया गया। धवल सेठ को जाल रचने के अपराध मे तत्काल बन्धन मे डाल दिया और बहुत बुरा हाल किया।

> हो राजा किंकर पठाया चाला, श्रीपणे बंधि धवल सेठ संखाणा
> बंधि सेठि ले आइया हो मारत बाड न सेका करै।
> मत दियो बहु नासिका हो श्रोंधों मुख पग ऊंचा करै ।।१८१।।

लेकिन पुनः श्रीपाल ने सेठ को अपना धर्म पिता बतला कर उसे छुड़ा दिया। वह अपने साथियों से जाकर मिला। उसका अत्यधिक सम्मान किया गया। उन्हे सामूहिक भोजन कराया और पूरी तरह से उनका आतिथ्य किया। श्रीपाल के अत्यधिक

का ध्यान आया। और वह तत्काल अपनी आठ हजार रानियों तथा आठ हजार सेना घोड़े, हाथी रथ आदि के साथ वह उज्जयिनी पहुंचा।

उधर मैनासुन्दरी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने एक एक दिन गिन कर बारह वर्ष व्यतीत किये थे। और जब श्रीपाल की अवधि समाप्त होने पर भी आता हुआ नहीं देखा तो उसने अपनी सास से सब संकल्प विकल्प छोड़ कर प्रातः आर्यिका दीक्षा लेने की बात कही। सास ने दस दिन तक और प्रतीक्षा करने के लिये कहा। दस दिन समाप्त होने के पूर्व ही एक दिन अकस्मात् श्रीपाल वहां पहुंच गया। सबसे पहिले उसने माता के चरण छुए और फिर मैनासुन्दरी ने श्रीपाल की वन्दना की। बारह वर्षों की घटनाओ की जानकारी श्रीपाल ने अपनी माता एवं पत्नी को दी। तत्काल वह माता और मैना को अपने सैन्यदल में ले गया और बारह वर्ष में जिन जिन वस्तुओं की उपलब्धि हुई थी उन्हें दिखायी।

श्रीपाल ने अपना एक दूत उज्जयिनी के राजा के पास उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिये भेजा तथा "कंधि कुहाडी कंबल ओढ कर" भेंट करने के लिए कहा। पहिले तो राजा ने दूत को भला बुरा कहा लेकिन दूत ने जब समझाया तो राजा ने बात मानली और हाथी पर बैठ वह श्रीपाल से मिलने आया। दोनों जब परस्पर मिले तो चारो ओर अतीव आनन्द छा गया। नगर में विभिन्न उत्सव मनाये गये तथा श्रीपाल का राजा एव नागरिकों की ओर से विविध भेंट देकर सम्मान किया गया। श्रीपाल ने उज्जयिनी मे कुछ समय व्यतीत किया।

अन्त उसने अपने देश लौटने का निश्चय किया। अपने पूर्ण सैन्यबल के साथ वह चम्पा के लिये रवाना हुआ और नगर के समीप आकर डेरा डाल दिया। श्रीपाल ने अपना एक दूत वीर दमन राजा के पास भेजा और पुरानी बातों की याद दिलाते हुये अधीनता स्वीकार करने के लिये आदेश दिया। वीरदमन ने दूत की की बात स्वीकार नही की और युद्ध के लिए दूत को ललकारा। दोनों की सेनाओ ने युद्ध के लिये प्रयाण किया।

हो भाटि मालियो रणसंग्राम, आयो कोडी भड कै ठाम।
बात पाछिली सहु कही,
.... हो सिधूडा बाजिया निसाण।
सूर किरणि सूझै नहीं, हो उडी खेह लागी असमान ॥२५७॥
हो घोड़ा भूमि खणं सुरताल, हो कारणिक उलटिउ मेघ अकाल
रथ हस्ती बहु साखती हो बहुं पख की सेना चली।
सुभग संजोग संभालिया हो अणी दुहुं राजा की मिली।

लिये यही निश्चय किया गया कि दोनों राजाओं में ही परस्पर में युद्ध हो जावे और उसमें जो विजयी हो वही राजा बने। श्रीपाल एवं वीरदमन में परस्पर युद्ध हुआ। श्रीपाल ने सहज में ही उसे पराजित कर दिया।

श्रीपाल ने जीतने पर भी अपने वृद्ध काका से राज्य करने का अनुरोध किया। वीरदमन ने श्रीपाल के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और संयम धारण करने का निश्चय किया। श्रीपाल ने लम्बे समय तक देश का शासन किया और प्रजा को सब प्रकार से सुखी रखा। एक बार नगर के बाहर श्रुतसागर मुनि का आगमन हुआ। श्रीपाल ने भक्तिपूर्वक वन्दना की और अपने जीवन में आने वाली विविध घटनाओं के कारणों के बारे में मुनिराज से जानना चाहा। श्रुतसागर ने विस्तार पूर्वक श्रीपाल को उसके पूर्व भव मे किये हुये अच्छे बुरे कार्यों के बारे में बतलाया।

श्रीपाल फिर सुख से राज्य करने लगा। प्रतिदिन देवदर्शन, पूजन, सामायिक एवं स्वाध्याय उसके दैनिक जीवन के अंग बन गये। एक दिन जब वह वन क्रीड़ा के लिये गया तो मार्ग में कीचड़ मे फसे हाथी को देख कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली। उसके साथ मैनासुन्दरी सहित अन्य स्त्रियों ने भी आर्यिका दीक्षा स्वीकार कर ली। अन्त मे श्रीपाल ने कर्म बन्धन को काट कर मोक्ष प्राप्त किया तथा मैनासुन्दरी सहित अन्य रानियों को अपने-अपने तप के अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति हुई। कवि ने इस प्रकार २९६ छन्दों मे श्रीपाल एव मैनासुन्दरी के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उसने अन्त के ५ छन्दो मे अपना परिचय दिया है जो निम्न प्रकार है —

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो जाणि, कीरति अनंत सील की खाणि।
तासु तणौ सिष्य जाणिज्यो, हो ब्रह्म रायमल्ल दिढ करि चित्त।
भाउ भेद जाणै नहीं हो तहि विद्धो सिरीपाल चरित्त ॥२९४॥

हो सोलहसै तीसौ सुभ वर्ष, हो मास असाढ भण्यौ करि हर्ष।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र सुभ सार।
करण जोग दीसे भला, हो सोभन वार शनिश्चरवार ॥२९५॥

हो रणथभमर सोभै कविलास, भरिया नीर ताल चहुं पास।
बाग विहरि वाडी घणो हो, धन कण संपति तणों निधान।
साहि अकबर राज हो, सोभै घणा जिणेसुर थान ॥२९६॥

हो श्रावक लोक बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत ।
दान चारि सुभ सकति स्यौ हो श्रावक व्रत पालै मन लाइ ।
पोसा सामाइक सदा हो, मत मिथ्यात न लगतो जाइ ।।१६७।।

हो ढूंसे अभिका छिनवै छंद, कवियरण भण्यौ तासु मति मंद ।
पद अक्षर की सुधि नहीं, हो जैसी मति दीनौ अोकास ।
पंडित कोई मति हसौ, तैसी मति कीनौ परगास ।।२६८।।

रास भरणौ श्रीपाल को ।।

इति श्रीपाल रास समाप्ता ।

श्रीपाल रास राजस्थानी भाषा का काव्य है इसमें राजस्थानी शब्दों का पूरा प्रयोग हुआ है । कवि ने 'श्रीपाल' शब्द का भी 'सीरीपाल' शब्द के रूप में प्रयोग करके उसे राजस्थानी भाषा का रूप दिया है । लहुडी (१३) डाइजो (१६) जिरणवर पूजरण (१७), ज्यौरणार (११३), जवाइ (११८), रांड (१३४), भांवरि (१६६) जैसे शब्दों को रास काव्य मे भरमार है । यही नही जुगतिस्यौं, चल्यौ, मिल्यौ, सुण्या, बाण्या, नैरणा, रेरणमंजूसा, जिरणकौ, भरणै जैसे ठेठ राजस्थानी शब्द कवि को अत्यधिक प्रिय रहे हैं । सवत् १६३० मे यह काव्य ररणथम्भौर मे लिखा गया था ।

अकबर के शासन मे होने के कारण उस समय वहा फारसी, अरबी जैसी भाषाओ का जोर अवश्य होगा । लेकिन इस काव्य मे उनके एक भी शब्द का प्रयोग नहीं होना कवि की अपनी भाषा मे काव्य लिखने की कट्टरता जान पडती है । इतना अवश्य है कि उसने काव्य को तत्कालीन बोलचाल की भाषा मे लिखा है । कविवर का ढूंढाड प्रदेश से अधिक सम्बन्ध रहने के कारण वह यहां की सीदी सादी भाषा का प्रेमी था । इसलिये रास को दुरूह शब्दों के प्रयोग से यथासम्भव दूर रखा गया है ।

श्रीपाल के जीवन में बराबर उतार चढाव आते हैं । कभी वह कुष्ट रोग से ग्रसित होकर अत्यधिक दुर्गन्ध युक्त देह को प्राप्न करता है तो कभी उसका रूप लावण्य ऐसा निखर जाता है कि उसकी कही उपमा नहीं मिलती । रत्नद्वीप में जाने पर उसे पूरा राजकीय सम्मान प्राप्त होता है रूप लावण्य युक्त रत्नमजूषा जैसी सुन्दर वधु प्राप्त होती है किन्तु यही वधु उसको समुद्र में गिराने का कारण बनती है । समुद्र को वह पार करने मे सफल होता है और पुनः दूसरे द्वीप में पहुंच जाता है जहां उसका राजसी स्वागत ही नही होता किन्तु गुरणमाला जैसी राजकन्या

को वधू के रूप में प्राप्त होती हैं । यहां भी विपत्ति उसका साथ नहीं छोड़ती और धवल सेठ के एक षड्यन्त्र में उसे डूम पुत्र सिद्ध होने पर सूली की सजा मिलती है लेकिन दैव योग से उस विपत्ति से भी वह बच जाता है और फिर उसे राज्य सम्पदा प्राप्त होती है । इसके पश्चात् उसकी सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य मे दिन प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है । अन्त मे वह स्वदेश लौटता है और चम्पा का राज्य करने में सफल होता है ।

श्रीपाल का जीवन विशेषताओ से भरा पड़ा है । वह "बार्व जिसो तीसो लुणौ" मे पूर्ण विश्वास रखता है । सिद्धचक्र पूजा से उसको कुष्ट रोग से मुक्ति मिलती है । कवि ने उसका "गयो कोढ जिम अहि कंचुली" उपमा से वर्णन किया है । प्रतिदिन देवदर्शन करना, पूजा करना, आहार दान के लिये द्वार पर खड़े होना, सत्य भाषण करना, त्रस जीवो का घात नही करना, आदि उसके जीवन के अंग थे । वह अत्यन्त विनयी था तथा क्षमाशील था । धवल सेठ द्वारा निरन्तर उसके साथ धोखा करने पर भी उसने राजा के बंधन से मुक्त करा दिया । वीरदमन को पराजित करने पर भी उसे राज्य कार्य सम्हालने के लिये निवेदन करना उसके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है ।

काव्य का नायक श्रीपाल है । मैनासुन्दरी यद्यपि प्रधान नायिका है लेकिन विदेश गमन से लेकर वापिस स्वदेश लौटने तक वह काव्य मे उपेक्षित रहती है और नायिका का स्थान ले लेती है रत्नमंजूषा एवं गुणमाला । काव्य में कोई भी प्रतिनायक नही है । यद्यपि कुछ समय के लिये धवल सेठ का व्यक्तित्व प्रतिनायक के रूप मे उभरता है लेकिन कुछ समय पश्चात् उसका नामल्लेख भी नही आता और रास के प्रारम्भिक एवं अन्तिम भाग में ओझल रहता है ।

ब्रह्म रायमल्ल ने काव्य में सामाजिक तत्वो को भी वर्णन किया है । रास मे चार बार विवाह के प्रसग आते हैं और वह उनका प्राय. एकसा ही वर्णन करता हैं विवाह के अवसर पर गीत गाये जाते थे । लगन लिखाते थे । मडप एव वेदी की रचना होती थी । आम के पत्तो की माला बाधी जाती थी । लगन के लिये ब्राह्मण को बुलाया जाता था । विवाह अग्नि और ब्राह्मण की साक्षी से होता था । दहेज देने की प्रथा थी । दहेज मे स्वर्ण, वस्त्र, हाथी घोड़े, दासी-दास और यहा तक गाव भी दिये जाते थे । शुभ अवसरो पर जीमनवार होती थी । स्वयं श्रीपाल ने दो बार अपनी साथियो को जीमण कराया था ।

श्रीपाल रास मे एक दोहा छन्द को छोड़ कर शेष सब पद्य रास छन्द में लिखे हुये हैं । यह सगीत प्रधान काव्य है जिसमे प्रत्येक छन्द के अन्त मे 'रास भणों

श्रीपाल को' यह अन्तरा आता है । तथा छन्द की प्रत्येक पंक्ति में 'हो' शब्द का प्रयोग हुआ है जो भी छन्द का सस्वर पाठ करने में काम आता है।

भविष्यदत्त चौपई

भविष्यदत्त का जीवन जैन कवियों के लिये अत्यधिक प्रिय रहा है। प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एव हिन्दी सभी में भविष्यदत्त के जीवन पर अनेक रचनाएं मिलती है। हिन्दी में उपलब्ध होने वाली कृतियों में ब्रह्म जिनदास, विद्याभूषण एवं ब्रह्म रायमल्ल की कृतियाँ उल्लेखनीय है। ब्रह्म रायमल्ल की यह कृति सवत् १६३३ की रचना है जिसे उसने सांगानेर नगर में महाराजा भगवन्तदास के शासन में सम्पूर्ण की थी। कवि ने अपनी कृति को कही पर रास, कही पर कथा और कहीं चौपई नाम से सम्बोधित किया है।

भविष्यदत्त चौपई कवि की महत्वपूर्ण कृति है। कथा का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है। भरत क्षेत्र में कुरुजागल देश और उसी में हस्तिनापुर नगर था। तीर्थंकरों के कल्याणक होने के कारण वहां सभी समृद्ध थे। चारों ओर शान्ति एवं आनन्द व्याप्त था। उसी नगर में धनवइ सेठ रहता था। उसका विवाह उसी नगर के दूसरे सेठ धनश्री की पुत्री कमलश्री के साथ हुआ। एक दिन उसी नगर में एक मुनि का आगमन हुआ। धनवई सेठ ने मुनिश्री से सन्तान के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि उसके सुयोग्य पुत्र होगा जो अन्त में मुनि दीक्षा धारण करेगा। कुछ समय पश्चात् कमलश्री ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म पर विविध उत्सव किये गये तथा स्वयं नगर के राजा ने आकर सेठ को बधाई दी। सेठ ने भी दिल खोल कर द्रव्य खर्च किया। बालक का नाम भविष्यदत्त रखा गया। सात वर्ष का होने पर उसे पढ़ने बिठा दिया गया—

बालक बरस सात को भयो, पंडित आगै पढणौ दियो।
कीया महोछा जिणवरि थानि, सजन जन बहु दीन्हा दान।

कुछ समय पश्चात् सेठ धनवइ को अकस्मात् कमलश्री से घृणा हो गयी और उसने तत्काल अपने घर से चले जाने को कह दिया। कमलश्री ने बहुत प्रार्थना की लेकिन सेठ ने एक भी नहीं सुनी और अन्त में वह अपने पिता के पास गयी। कमलश्री के अचानक घर आने पर उसके माता-पिता को उसके चरित्र पर सन्देह लगा इतने में धनवइ के मन्त्री ने आकर सबका भ्रम दूर कर दिया। कमलश्री अपने पिता के घर सुखचैन से रहने लगी। धनवइ का दूसरा विवाह कमलश्री की छोटी बहिन रूपा से हो गया। विवाह बहुत ही उत्साह और आनन्द के साथ हुआ।

दोनों पति-पत्नि सुखपूर्वक रहने लगे। सरूपा के कुछ वर्षों पश्चात् पुत्र हुआ जिसका नाम बन्धुदत्त रखा गया। वह बड़ा हुआ और रत्नद्वीप में व्यापार के लिये जाने तैयार हो गया। पिता की आज्ञा पाकर उसने ५०० अन्य साथियों को भी ले लिया। जब भविष्यदत्त ने अपने भाई को व्यापार के लिये जाने की बात सुनी तो उसने भी भी उसके साथ जाने की इच्छा प्रकट की और अपनी माता से आज्ञा लेकर भाई के साथ हो गया। लेकिन सरूपा ने बन्धुदत्त को कहा कि वह उसका बड़ा भाई है इसलिये संपत्ति का मालिक भी वही होगा। अतः अच्छा यही है कि मार्ग में भविष्यदत्त का काम ही तमाम कर दिया जावे।

बन्धुदत्त अपने साथियों के साथ व्यापार के लिए चला। साथ में किराणा एवं अन्य सामग्री ली। वे समुद्र तट पर पहुंचे और शुभ मुहरत देख कर जहाज से रत्नद्वीप के लिये प्रस्थान किया। वे धीरे-धीरे आगे बढने लगे। जब अनुकूल हवा होती तब ही वे आगे बढते। बहुत दिनों के पश्चात् जब उन्होंने मदन द्वीप को देखा तो अत्यधिक हर्षित होकर वहां उतर पडे और वहां की शोभा निहारने लगे। जब भविष्यदत्त फूल चुनने के लिये चला गया तो बन्धुदत्त के मन में पाप उपजा और अपने भाई को वहीं छोड कर आगे चल दिया।

> भवसदत्त फल लेवा गयो, बंधुदत्त पानी देखियो।
> बात विचारी माता तरणी, मन में कुमति उपजी घरणी।।२०।।

भविष्यदत्त बहुत रोया चिल्लाया लेकिन वहां उसकी कौन सुनने वाला था। अन्त में हाथ मुंह धोकर एक शिला पर पंच परमेष्ठी का ध्यान करने लगा। रात्रि को वही शिलातल पर सो गया। प्रातः होने पर वह एक उजाड वन में होकर नगर मे पहुंच गया और जिन मन्दिर देख कर वह उसी मे चला गया और भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा करने लगा। उसने अत्यधिक भक्ति से जिनेन्द्र की पूजा की। पूजा करने के पश्चात् वह थक कर सो गया।

इसी बीच पूर्व विदेह क्षेत्र में यशोधर मुनि से अच्युत स्वर्ग का इन्द्र अपने पूर्व जन्म के मित्र धनमित्र के बारे में पूछता है वह किस गति में है। मुनिराज इन्द्र को पूरा वृतान्त सुनाते हैं और तथा कहते हैं कि इस समय वह तिलक द्वीप के नगर में चन्द्रप्रभु मन्दिर मे है। मुनि के वचनों को सुन कर देवेन्द्र उस मन्दिर में गया और उसे सोता हुआ देखकर मन्दिर की दीवाल पर उसने लिखा कि हे मित्र उत्तर दिशा में पांचवें घर में एक सुन्दर कुमारी है वह उसकी प्रतीक्षा में है। वह उससे विवाह करले। उस इन्द्र ने मणिभद्र को यह भी कह दिया कि वह भविष्यदत्त का समय समय पर ध्यान रखे। जब वह निद्रा से उठा और सामने लिखे हुए अक्षर

पढ़े तो वह उसी के अनुसार पांचवे मकान में चला गया। जब उसने अत्यधिक रूपवती कन्या को देखा तो वह विस्मय करने लगा—

> को याह सुर्ग अपछरा कोइ, नाग कुमारि परतषि होइ।
> बन देवी तिष्टं इह थानि,भवसदत मनि भयो गुमान ।।५५।।

कन्या द्वारा भविष्यदत्त का बहुत सम्मान किया गया और विविध प्रकार के व्यंजन भोजन के लिए तैयार किये गये और अन्त में उस नगरी के उजड़ने का कारण भी उसने बतलाया और कहा कि इस नगर का राजा यशोधन था। भवदत्त उसके पिता थे जो नगर सेठ थे। माता का नाम मदनवेगा था। उसकी बड़ी पुत्री का नाम नागश्री एवं छोटी का नाम था भविष्यानुरूपा, जो मैं हु। उसने कहा कि एक व्यंतर ने सारे नगर को उजाड़ा। पता नही उसने उसे कैसे छोड दिया। भविष्यदत्त ने अपना वृतान्त भी भविष्यानुरूपा से निम्न प्रकार कहा—

> भरत षेत्र कुर जांगल देस, हथिणापुर भूपाल नरेस।
> धनपति सेठि बसौ तहि ठाम, तासु तीया कमलश्री नाम।
> भविसदत हौं तहि को बाल, सुख में जातन जाणै काल।
> दूजी मात सरूपणि पुत्र, पंडित नाम दियो बंधुदत्त।
> मोहण पूरि दीप ने चल्यौ, हो पणि सानि तासु को मिल्यौ
> सो पापी मति हीणो भयो, मदन दीप मुझ छाडि वि गयो
> कर्म जोग पट्टण पाबियो, इहि विधि तुम थानक आइयो ।।११।।

एक दूसरे का परिचय होने के पश्चात् जब भविष्यानुरूपा ने भविष्यदत्त से उसे स्त्री के रूप मे अंगीगार करने के लिये कहा तो भविष्यदत्त ने बिना किसी के दी हुई वस्तु को लेने में असमर्थता प्रगट की तथा कहा कि यदि वह व्यंतर देव उसे सौप देगा तो उसको स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही होगी। कुछ समय पश्चात् वहा व्यतर देव आया और एक मनुष्य को देख कर अत्यधिक क्रोधित हो गया। लेकिन भविष्यदत्त ने उसे लड़ने के लिए ललकारा। अन्त मे जब उसे मालूम पड़ा कि वह उसी का पूर्व भव का मित्र है तो वह उसका घनिष्ठ मित्र बन गया। व्यन्तर देव ने भविष्यानुरूपा का विवाह उसके साथ कर दिया और भविष्यदत्त को मदनद्वीप का राज्य सौप कर वहा से चला गया। भविष्यदत्त एव भविष्यानुरूपा वहां पर सुख से रहने लगे।

उधर भविष्यदत्त के वियोग में उसकी माता कमलश्री चिन्तित रहने लगी। एक दिन वह आर्यिका के पास गयी और अपने पुत्र के बारे मे जानना चाहा।

आर्यिका ने उसे श्रुत पंचमी व्रत पालन का उपदेश दिया। उसने कहा कि आषाढ सुदी पंचमी को प्रथम बार इस व्रत को ग्रहण करके कार्तिक, फागुन या आषाढ की पहली शुक्ल पंचमी को व्रत का प्रारम्भ् करके उस दिन उपवास करना चाहिये तथा षष्ठी के दिन एक बार अहार करना चाहिये तथा जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिये। इन दिनों में अत्यधिक संयम पूर्वक जीवन बिताना चाहिये। यह व्रत पांच वर्ष एवं पांच महिने तक होता है। उसके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। यदि उद्यापन करने की स्थिति नहीं हो तो दुगने समय तक इस व्रत का पालन करना चाहिये। कमलश्री ने श्रुत पंचमी के व्रत को अंगीकार कर लिया और उसका उद्यापन भी कर दिया इसके पश्चात् भी जब उसका पुत्र नही आया तो वह आर्यिका उसे मुनि श्री के पास ले गयी जो मन्दिर में बिराजे हुए थे। वे मुनि अवधिज्ञानी थे। इसलिये कमल श्री के पूछने पर मुनि महाराज ने कहा कि उसका पुत्र अभी जीवित है। वह द्वीपान्तर में सुख से रह रहा है। यहा आने पर वह आधे राज्य का स्वामी होगा। कमलश्री फिर भविष्यदत्त के आने के दिन गिनने लगी।

एक दिन भविष्यरूपा ने भविष्यदत्त से अपनी ससुराल के बारे में फिर पूछा। तत्काल भविष्यदत्त को अपने माता के दुखों का स्मरण आ गया। वह पछताने लगा और शीघ्र ही हस्तिनापुर जाने की तैयारी करने लगा। वे बहुत से मोती. माणिक आदि लेकर उसी गुफा में होकर समुद्र तट पर आ गये और हस्तीनापुर आने वाले जहाज की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ दिनो पश्चात् वहां बन्धुदत्त का जहाज भी आ गया बन्धुदत्त का बहुत बुरा हाल था। उसके पास न खाने को था और न पहिनने को। सर्व प्रथम यह भविष्यदत्त को पहिचान भी नही सका। लेकिन फिर दोनों भाई गले मिले। बन्धुदत्त ने अपने बड़े भाई से क्षमा मांगी। भविष्यदत्त ने सबका यथोचित सम्मान किया और ज्योंही वह जहाज पर बैठ कर चलने को हुआ भविष्यानुरूपा को नागशय्या एवं नागमुद्रिका की याद आ गयी। भविष्यदत्त जब नागमुद्रिका लेने को गया, बन्धुदत्त ने जहाज चलवा दिया। भविष्यदत्त फिर अकेला रह गया। भविष्यदत्त खूब रोया चिल्लाया और अन्त मे मूर्छित होकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद उसे होश आया तो वह उठ कर फिर तिलकद्वीप में चला गया। वहां भी वह अपने सूने मकान को देख कर रोने लगा। अन्त में चन्द्रप्रभु जिनालय जाकर भगवान की पूजा करने लगा।

इधर बन्धुदत्त का मन वासना में भर गया और वह भविष्यानुरूपा से मनोकामना पूरी करने के लिये कहने लगा। किन्तु वह अपने शील पर दृढ रह कर उसे परमार्थ का उपदेश देने लगी। जहाज अन्त में तट पर आ गया। और व हस्तिनापुर पहुंच गये। बन्धुदत्त के पहुंचने पर माता पिता हर्षित हुये। लेकिन

जब कमलश्री ने भविष्यदत्त के बारे में पूछा तो किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर आर्यिका के पास गयी और उसने उससे 'भविष्यदत्त एक माह में आ जावेगा' यह बात कही।

बन्धुदत्त ने आकर भविष्यदत्त की अपार सम्पत्ति को अपनी बतला दी। और सबको मान सम्मान कर अपना बना लिया। भविष्यानुरूपा के लिये कह दिया कि यह अपने तिलक द्वीप के राजा द्वारा भेंट में दी गई है। वह अभी कुंआरी है। राजा को सब तरह से झूंठ बोल कर अपना बना लिया और अपने विवाह की तैयारी करने लगा। उधर भविष्यदत्त चन्द्रप्रभु भगवान की भक्ति अर्चना करने लगा। वहां एक देव विमान पर आया और भविष्यदत्त से सब वृतान्त जानने के पश्चात् उसको विमान पर बिठला कर हस्तिनापुर ले आया। भविष्यदत्त अपनी माता कमलश्री के पास गया और उसकी बन्दना की। वह सब परिजनों से मिला और पिता को साथ लेकर राजा से भेंट की तथा भेंट में बहुत सा सामान दिया। भविष्यदत्त ने राजा से सब वृत्तांत कहा। बन्धुदत्त द्वारा किये गये दुर्व्यवहार की चर्चा की। भविष्यानुरूपा ने बन्धुदत्त द्वारा अपनी पत्नी बताये जाने का विरोध किया। राजसभा मे राजा से एव सभासदो से सब बीती बातो को बताया। राजा ने वास्तविक बात को समझ कर बन्धुदत्त को मारना चाहा लेकिन भविष्यदत्त ने राजा को ऐसा करने से रोका। बन्धुदत्त हस्तिनापुर से निकाल दिया गया।

बन्धुदत्त पोदनपुर पहुचा और वहां राजा से कहा कि भविष्यदत्त के पास सिंघल देश की पद्मिनी है। वह अतीव लावण्यवती है। वह राजा के भोगने योग्य है वणिक पुत्र के नही। पोदनपुर का राजा विशाल सेना लेकर हस्तिनापुर आया और अपना दूत भेज कर राजा से पद्मिनी को देने के लिये कहा तथा आज्ञा के उल्लंघन पर नगर को नष्ट कर दिया जावेगा तथा राज्य पर अधिकार कर लिया जावेगा ऐसा कहा।

> हो पठयो पोदनपुर धणी, तही की सेना न गिणी।
> नृपति बहुत भरै तसु डंड, भुजै राज निसंक अखंड।
> तुमनै लुहु दीन्हो उपदेश, सुखस्यो भुजौ चाहो देस।
> भवसदन्त कै जो पद्मिणी, सो तुम भोकलि ज्यो तंखणी।

भविष्यदत्त स्वयं ने शत्रु राजा का चैलेन्ज स्वीकार किया तथा सेना लेकर लडने के लिये आगे बढा। दोनो सेनाओ मे घमासान युद्ध हुआ और अन्त मे भविष्यदत्त ने पोदनपुर के राजा को बाध लिया और हस्तिनापुर ले आया।

भविष्यदत्त की वीरता से राजा प्रभावित हो गया और अपनी कन्या का भी उससे विवाह कर दिया ।

जैन धर्म निहचौ करै, चालै मारग न्याय ।
तसु सेवा सुरपति करै प्रति सुर्ष जाइ ।।

भविष्यदत्त को राज्य सुख भोगते हुये कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये । कुछ समय पश्चात् माता के कहने से भविष्यदत्त ने पचमी व्रत ले लिया । भविष्यानुरूपा को दोहला हुआ और उसने तिलकद्वीप जाकर चैन्द्रप्रभु चत्यालय के दर्शनार्थ जाने की इच्छा व्यक्त की । उसी समय मनोवेग नाम का विद्याधर वहां आ गया और वह भविष्यदत्त को विमान मे बैठाकर तिलकद्वीप पहुंचा दिया । उन्होंने चारण मुनि के दर्शन कर श्रावक धर्म को भलीभांति सुना तथा चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की भक्तिपूर्वक पूजा की । मुनिश्री ने स्वर्ग नरक का भी वर्णन किया । भविष्यानुरूपा के चार पुत्र सुप्रभ, स्वर्णप्रभ, सोमप्रभ, रूपप्रभ तथा दो पुत्री उत्पन्न हुई ।

बहुत समय पश्चात् हस्तिनापुर में विमलबुद्धि नामक मुनि का आगमन हुआ। भविष्यदत्त ने सपरिवार उनकी वन्दना की । मुनि ने विस्तारपूर्वक तत्वों का विवेचन किया । अन्त मे भविष्यदत्त ससार से विरक्त होकर सपरिवार मुनि से संयम व्रत धारण कर लिया तथा अपने पुत्र को राजगद्दी सौंप कर मुनि दीक्षा धारण करली और पहिले स्वर्ग में तथा फिर चौथे भव मे निर्वाण प्राप्त किया ।

भविष्यदत्त चौपई कवि की बड़ी रचनाओं में से है । यद्यपि काव्य में प्रमुख रूप मे कथा का ही निर्वाह हुआ है लेकिन कवि ने बीच बीच में घटनाओ का विस्तृत वर्णन करके उन्हें काव्यात्मक रूप देने का प्रयास किया है । काव्य की भाषा एकदम सरल और बोलचाल की है । उसे हम राजस्थानी के अधिक निकट पाते हैं ।

कवि ने भविष्यदत्त चौपई का निर्माण ढूंढाड प्रदेश के प्राचीन नगर सागानेर में किया था । रचना समाप्ति की निश्चित तिथि संवत् १६३३ कार्तिक सुदी चतुर्दशी थी । सांगानेर आमेर के शासक राजा भगवंतदास के अधीन था तथा वे अपने परिवार के साथ सुखचैन से राज्य करते थे ।[1]

---

१ देस ढूंढाहड सोभा घणी, पूजै तहा अली मन तणी ।
निर्मल तलै नदी बहुफिरि, सुवस बसै बहु सांगानेरि ।।१४।।
चहुं दिसि बण्या भला बाजार, भरे पटोला मोती हार ।
भवन उतंग जिणेसुर तणा, सोभै चंदवा तोरण घणा ।

भविष्यदत्त चौपई राजस्थानी भाषा की रचना है। इस कृति में वस्तुबंध, चौपई एव दोहा छन्द प्रमुख हैं।

कवि ने भविष्यदत्त की वृहद् कथा को न संक्षिप्त रूप में लिखी है और न विस्तार से। लेकिन इतना अवश्य है कि कुछ स्थानों को छोड़ कर वह उसमें काव्य चमत्कार उत्पन्न नहीं कर सका और सामान्य रूप से अपने पात्रों का निरूपण करता गया।

८ परमहंस चौपई

प्रस्तुत कृति ब्रह्म रायमल्ल की अन्तिम कृति है। यह एक रूपक काव्य है जिसमे परमहंस आत्मा नायक है। रचना के प्रारम्भ में २५ पद्यों में जीव के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् काव्य प्रारम्भ होता है।

परमहंस की चेतना स्त्री है तथा उसके चार पुत्र है जिसके नाम है सुख, सत्ता बोध और चेतन। एक बार माया परमहस के पास गयी और उसकी स्त्री बनने के लिये निवेदन किया। माया ने मीठी-मीठी बात करके परमहंस को राजी कर लिया और वह उसकी पटरानी बन गयी।

परमहंस तब कियो विचार, माया कुं कर अंगीकार।
पटराणी राणी कर भाव, परमहंस कै मन अतीचाव।

माया ने घर में प्रवेश करते ही पांचों इन्द्रियों पर अपना अधिकार कर लिया। वे अपने पति परमहस के बातों की अवहेलना करने लगी। पापी मन ने अपने पिता को बांध कर बन्दी-गृह में डाल दिया।

मन पापी जु पाप चितयो, पिता बांधि तब बंदि महि दयो।

इसके पश्चात् मन राजा राज्य करने लगे। राजकुमार मन ने दो नारियों के साथ विवाह कर लिया। उनके नाम थे प्रवृत्ति एवं निवृत्ति। दोनों ने बन्दी

राजा राज करै भगवतदास, राजकंवर सेवै बहु तास।
परजा लोग सुखी सुखवास, दुखी दलीद्री पुरवै आस।।

सोलाहसै तेतीसै सार, कातिक सुदि चौदसि सनिवार।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि सुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै रोग।

खाने में पड़े हुए परमहंस के दुख देखे। लेकिन वे उसे छुटकारा नहीं दिला सकी। मन की एक स्त्री प्रवृति ने मोह पुत्र को जन्म दिया जो जगत में चारों ओर निडर होकर फिरने लगा।

सो मोह समलो संसार, धन कुटुम्ब माड्यो पसार।
गति चार में फिराय सोई, जाल माल न निकसै कोई ॥७०॥

मन की दूसरी स्त्री निवृत्ति थी। उसने 'विवेक' नाम के पुत्र को जन्म दिया। विवेक अपनी नीति के अनुसार काम करने लगा।

सब जीवन कुं दे उपदेश, जिह थे नास रोग क्लेस।
कह विवेक सु बात विचार, सुलह इंछा सुख संसार।

मन राजा अपने पिता परमहंस को छोड कर माया के साथ रहने लगा। एक दिन माया ने मन से कह कर विवेक को भी बन्दी गृह में डाल दिया क्योंकि उससे भी माया को डर लगने लग गया था। निवृत्ति ने अपने श्वसुर परमहंस को सारी स्थिति समझायी और विवेक को छुड़ाने के लिये जोर देने लगी। परमहंस ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

परमहंस जंपे सुन बहु, एह परपंच माया का सहु।
निसचै परम छु चेतना, तिह कै पास जाहु तंखीना ॥६२॥

निवृत्ति रानी चेतना के पास गई और उससे विवेक पुत्र छोड़ने की प्रार्थना करने लगी। प्रवृत्ति रानी ने इसका विरोध किया और मन राजा से निम्न प्रकार निवेदन करने लगी।

मोह पुत्र थारो वर वीर, मात पिता को सेवक धीर।
स्वामी देई मोह दे राज, सीरो सब तुम्हारो काज।

मन भी प्रवृत्ति रानी के बहकावे मे आ गया और उसने मोह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। मोह ने अपनी नगरी बसाई और निम्न साथियों के साथ राज्य करने लगा —

पुरी अज्ञान कोट चहुं पास, त्रिसना खाई सोभ तास।
च्यारू गति दरवाजा बण्या, दीसै तहां विषै मन बसा ॥७२॥

मिथ्या दरसन मंत्री तास, सेवक आठ करम को वास।
क्रोध मान दंभ परपंच, लोभ सहत तिहां निवसै पंच ॥७३॥

पंच प्रमाद मंत्र तसु सखा, तिहंसुं मोह कर रंग घना ।
रात दिवस ते सेवा करै मोह तनी बहु रक्या करै ।।७४।।

सातों विसन सुभ गती राज, आन नहीं काज प्रकाज ।
निगुरण संधि सभा प्रसमान, सोभ दुरगति सिंघासन थांन ।।७५।।

चवर ढलै रित विभ्ररत चौसाल, छिद्र परोहित पठंउ कुस्याल ।
कूड कपट नग्र कोटवाल, पाखंडी पोल्या रखवाल ।।७६।।

नगर में सभी व्यसनों की चौकड़ी जमने लगी । सभी तरह के अनैतिक कार्य होने लगे । दूसरी ओर कुमति ने चेतना राजा से निवृत्ति के पुत्र विवेक को छोड़ने का आग्रह किया । लेकिन वहां उसकी दाल नहीं चली । तब वह मन के पास गयी और निम्न प्रकार परिचय दिया ।

बोली कुमती जोडीया हाथ, बीनती सुनो हमारी नाथ ।
सुरग तणी हु देवांगना, तेरा सुजस सुन्या हम घणां ।।८७।।

मेरा मन बहु उपनो भाव, भली बात देखन को चाव ।।
छोड़ देव आई तुम थांन, तुम देखत सुख पाके जान ।।८८।।

मन राजा को कुमति की बातें बहुत रुचि कर लगी और उसे अपनी पटरानी बना ली । कुमति ने सर्व प्रथम मन से विवेक को छोड़ने का आग्रह किया । मन ने तत्काल उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और विवेक को बन्धन मुक्त कर दिया ।

कांमी पुरुष ज कोई होई, कांमनी कह्यो न मेटै कोई ।
तिह को छांवो धावै घनो, ईह सुभ काह कांमी नर तनो ।।९५।।

विवेक बंधन से मुक्त होकर चेतना माता के पास गया और उसके पांव छुए । विवेक को देख कर चारों ओर हर्ष छा गया । एक दिन चेतना ने निवृत्ति से कहा कि मोह पापी है दुष्ट स्वभाव का है तथा उसका स्वभाव ही दूसरे को पीडा देना है इसलिये मोह के देश को ही छोड कर चला जाना चाहिये । निवृत्ति और विवेक तत्काल वहा से चल दिये । जब वे आधी दूर ही गये तो उन्हे हिंसा देश दिखायी दिया जिसमें सभी तरह के खोटे बुरे कार्य होते थे । कवि ने उसका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

दीसै तह स्त्र व्योहार, उपरां उपरी मारै मार ।
हांसि निद्रा जिहां प्रती ही होइ, मारै कोई कराहै लोई ।।१०१।।

वधां रहत परजा परमान, बाद बटाऊ न लहु काम ।
कर विरुद्ध मारे लघु जीव, हिंसा देख बढ़े जो लोच ॥१०२॥

बोले जहां झूंठ असमान, तिहु पु ब्याणे कुल सुनि ज्ञान ।
पथिक झूंठ एक बोले बात, तिह दे ठोकर मार लात ॥१०३॥

उसमें सभी तरह की बुराइयां थी । हिंसा झूंठ चोरी करने वालों की प्रशंसा होती थी । या तो वहां कसाई थे या फिर अत्यधिक विपन्न । नगर को देख कर दोनों को अत्यधिक वेदना हुई ।

निवृत्ति एवं विवेक फिर बढ़े । इसके पश्चात् वे 'मिथ्यात' नामक देश में पहुंचे । वहां सब उल्टी मान्यता वाले लोग थे । अन्ध विश्वास और मिथ्या मान्यताओं में वे फंसे हुए थे ।

रागसहत सो मानै देव, तारन समरथ तरन सुएव ।
कामनी संग सदा ही रह, तिह नै सुद्ध देवता कह ॥११२॥

....

पीपल देव पूज बहु भाई, तिहनै पापी काटन जाई ।
लेई काठ ते बालन जोग, महा मूढ़ मिथ्याती लोग ॥१२१॥

गंगा तीरथ कह सहु कोई, तिहकै सनांन मुकति पद होई ।
तिह में अशुचि सोच ते करै, मूढ़ लोग देव विस्तरै ॥१२२॥

पूज दरख अंवला तनो, सुख संपत स्वामि दे घनो ।
महादेव कह अंबला जाय, तिह मैं पापी कुडिर लाय ॥१२३॥

कवि ने उस समय में व्याप्त लोक मूढ़ताओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है । जिन देवी देवताओं के आगे बलिदान होता था, उसकी भी कवि ने गहरी निन्दा की है तथा जोगियों की भस्मी में विश्वास करने वालो की कवि मजाक उड़ायी हैं । वे मद्य एवं मांस का भोजन करने वाले गुंसाई जनों को भी मिथ्यात्वी कहते हैं—

निवृत्ति और विवेक 'मिथ्यात' नगर की दयनीय स्थिति देख कर अत्यधिक दुखी हुये और वे दोनों आगे बढ़े । वे जिन शासन के देश पहुंचे और उसकी सुन्दरता से प्रसन्न होकर उसमें प्रवेश किया । जिन शासन नगर के निवासियों के सम्बन्ध में निम्न प्रकार वर्णन किया है ।

तिहां भलो दीसै संजोग, धानी श्रावग धीर सहु लोग ।
मुनीवर बहु पालै आचार, पाप पुण्य को कर विचार ॥१३२॥

दया वृत तिहा कर नीवास, आत्म चिंता मन की वास ।
संजम फूल ते लगते घना, तिह का सुख मुंजे भव्यईना ।।१३२।।

सुभ भाव कोईल बोलंत, जिन वाणी तिहाँ दाख फलंत ।
सरस वचन बोलैं गुन जान, तिपज नागवेल को पान ।।१३३।।

पान फूल तीहां बहु महकाई, मुनी ध्यान मधु करत अघाई ।
उद्यान सरोवर अधिक गहीर, तिह को थाग लह मुनि धीर ।।१३४।।

जिन शासन नगर के राजा का नाम विमल बुध था। एक दिन जब वह वन क्रीड़ा के लिये गया तो उसने निवृत्ति एवं विवेक दोनों को देख लिया। दोनों को उसने बड़ा सम्मान दिया और फिर उन्हें अपने घर ले गया। वह दोनों का भोजन आदि से सम्मान किया। इसके पश्चात् राजा ने निवृत्ति से उसके पुत्र विवेक की बडी भारी प्रशसा की और कहा कि सुमति के साथ विवेक का विवाह हो जाना चाहिये। निवृत्ति ने विवेक के विवाह का निम्न शब्दो में उत्तर दिया—

भन निवृत्य सुनो हो राव, जे छै इसो तुम्हारो भाव ।
इक सोनो इक हीरा जड्यो, कहो विचार न कौन वापरो ।।१४४।।

दोनो के विवाह की तैय्यारी होने लगी—

चौरी मंडप रच्यो विसाल, सोभै तोरन मौत्यां माल ।
छाये वस्त्र पटंबर सार चंदन थंभ सुगंध सुचार ।।१४६।।

गावैं त्रिया करैं बहु कोड, वर कन्या को बांध्यो मोड ।।
लगन महुरत बहुत उछाह, विवेक सुमति को भयो विवाह ।।१४७।।

निवृत्ति सुमति वधू को पाकर अत्यधिक प्रसन्न हुई। खूब दान दिया। एक दिन उसने विमलबुध से जाने की आज्ञा चाही। विमलबुध ने कहा कि वे प्रवचन नगर मे जावे और वहां सुख चैन से जीवन व्यतीत करे।

तुम प्रवचन नग्र म चलो, होसी सही तुम्हारो भलो ।
वंदो जाय चरन अरहंत, तिहठै सुख सु वसो अनंत ।।१५१।।

तिहां विवेक बडाई लह, भलो पुरुष सहु कोई कह ।
कीरत बहुत होत तुम तनी, सुख संपती तीहां मिलती घनी ।।१५२।।

विमलबुध की बात मान कर निवृत्ति विवेक एवं सुमति तीनों प्रवचन नगर के लिये रवाना हो गये और कितने ही दिन चलने के पश्चात् वे तीनों वहां पहुचे।

प्रवचन नगर बहुत विशाल था। दया धर्म वहां निवास करते थे। सब जीवों को अपने समान समझा जाता था। अनाचार को स्वप्न में भी नहीं जानते थे। तथा सर्वदा व्रत शील संयम की पालना होती थी। प्रवचन नगर को वर्णन कवि के शब्दों में देखिये—

> तिहां अरिहंत देव को वास, इंद्र एक सो सेव तास।
> आज्ञा साढा बारा कोड, सुर नर खेचर नम कर जोड ॥१५६॥
>
> भारगनाव लोक संचरै, करम बंध कोई नवी करै॥
> उपरां उपरी बेरन कास, जिम सिधालो सिधावास ॥१५७॥

उस नगर में कोट थे, सरोवर थे, जिनमें कमल खिले हुये थे। चारों ओर दरवाजे थे तथा तोरण द्वार थे। वहीं समोसरन था। तीर्थंकर के दर्शन से ही पुण्य बंध होता था। तीनों नगर के अन्दर गये और उन्होंने चारों ओर कलश लगे हुये देखे। जिन मन्दिर के दर्शन किये। उनके आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। वहीं जिनेन्द्र का समोसरन था। चारों ओर अपार शान्ति थी। ईर्ष्या, कषाय एवं द्वेष का कहीं नाम भी नहीं था। निवृत्ति विवेक एवं सुमति के साथ समवसरन में गये तथा तीन प्रदिक्षणा देकर वहां बैठ गये। जिनेन्द्र की आशीर्वादात्मक दिव्यध्वनि निम्न प्रकार खिरी—

> रहो ईहां तुम निर्भय थान, भुंजो बहु सुख सर्वा निधान।
> मन में चिंता मति कोई करो, ईहा थानक को दुष्टन हरो ॥२२५॥

इस प्रकार विवेक ने 'पाप नगर' का वृतान्त सुनाया। जहां मोह राजा राज्य कर रहा है वहां का बुरा हाल है—

> मिथ्याती बहु करै कुकर्म, जानै नहीं जिनेश्वर धर्म,।
> बहुत जाति पाखंडी फिरै, मूढ लोक तसु सेवा करे ॥२३०॥
>
> झूठ बोलतां संकन करै, धन कै काज सगा परहरै।
> ऐ तो महा दुष्ट आचार, तो सहु मोह राव परिवार ॥२३३॥

विवेक ने अपने आने का पूरा वृतांत कहा—

> वीमल बोध की सांभलो बात, तुम थानक आवा जिन तात।
> कीजो पाछलो सहु परगास, दीठो जिनवर पुगी आस॥

इधर मोह को पुत्र लाभ हुआ जो चौरासी लाख जीवों का शत्रु था। वह जिनेन्द्र की बात नहीं मानता था। उसने बहुत से तपस्वियों के तप का खंडन कर

दिया यहां तक कि ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र को भी नहीं छोड़ा। वह देश मिथ्यात देश है जहां जैन धर्म नहीं है किन्तु वहां एकान्त मत का प्रचार है।[1]

दूसरी ओर सम्यक्त्व नगर में देव शास्त्र गुरु मे पूरी भक्ति थी तथा वहां सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पालना होती थी। तीर्थंकर ने विवेक की बहुत प्रशंसा की और उसे पुण्य नगरी का राज्य दे दिया। पुण्य नगरी में प्रतिदिन भगवान की पूजा होती थी, चारों प्रकार के दान दिये जाते थे तथा शीलव्रत की पालना होती थी। विवेक सदलबल पुण्य नगर में निवास करने चले।

तिर्थंकर भाख्यौ गुणसार, कीन्हौं विदा विवेक कुमार।
दरसन ग्यान चरन तप सार, चहुं विधि सेन्या चली अपार ॥२७०॥

उपसम गज गढ़ चल्यो कुमार, तास छत्र सिर सो भवपार।
तास निसांन बाज बहु भांति, सम दम सजम साथ चढोत ॥२७१॥

पुण्य नगर को विवेक ने देखा। तीन गुप्तिया जिस नगर का कोट थी, पाच समितिया ही मन्दिर थी तथा नियम रूपी कलश जिसके शिखरों पर सुशोभित था। द्वार पर आनन्द का तोरण था तथा कीर्ति ही जिसकी ध्वजा थी जो चारो ओर उछल रही थी। चार सघ ही भावना के समान थे।

पुण्य नगरी में विवेक सुख से राज्य करने लगा। चारों ओर सुख शांति थी जो मुक्ति चोर एव अन्तराय थे वे सब विवेक से दूर रह गये। मुक्ति का सबके लिये द्वार खुल गया—

विवेक राजा निकंट करै, जिनकी आग्या मन में धरै।
सहत कुटंब विवेक भोवाल, सुख में जातन जान काल ॥२८३॥

इसके पश्चात् दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। कवि ने इस अध्याय को निम्न प्रकार आरम्भ किया है —

दोहा

ब्रह्म राइमल बंदिया कह्यो सास्त्र गुरु सार।
बो र कथा आगे भई, तिह को सुणो विचार ॥२८४॥

---

१ राज कर राजा मिथ्यात, जान नहीं जैनी की बात।
मत एकांत तास उबरै, बोध महाभड प्रति हो करै ॥२५४॥

दूसरी ओर पाप नगरी में एक दिन मोह राजा ने अपने मंत्री को अपने पास बुलाया और कहा कि निवृत्ति और विवेक के सकुशल आवने से हृदय में गहरी चोट है। विवेक हमारा बैरी है इसलिये ऐसा कोई बात करो जिससे विवेक कुमार की मृत्यु हो जावे। मोह के चार दूत चारों दिशाओं मे विवेक की तलाश में निकल पड़े लेकिन उनको जरा भी सफलता नहीं मिली। एक दिन मार्ग में एक सरल स्वभावी यात्री मिल गया। उससे पूछने पर विवेक की पुण्य नगर की जानकारी मिल गयी। दूत ने सर्व प्रथम एक मायावी दिगम्बर साधु का भेष बनाया पिच्छी कमण्डल हाथ में लेकर नगर में चल पड़ा। भोजन के लिए वह नगर में फिरने लगा, और इस बहाने नगर का भेद भी लेने लगा। लेकिन नगर के ज्ञानी कोटवाल को जब सन्देह हुआ तो उसने निम्न प्रश्न उपस्थित किये गये—

ग्यान सुभट चाकं बुझिया, भेष दिगम्बर कांहि ये लीया।
माया तुहे चोर व्योहार, दीसै नहीं शुद्ध आचार ॥३६३॥

इन प्रश्नों को सुन कर वह डर गया और तत्काल भाग गया—

वचन सुनत तब ही खल-भल्या, तत खिन नग्र मांझ थे चल्या।
भागा दुष्ट इम पाखंड, हत्या कुड कपट परचंड ॥३६४॥

लेकिन डभी जो वही पुण्य नगर में रह गया था कुछ दिनों बाद पाप नगर में आ गया। वहां आकर उन्होंने मोह से पुण्य नगर के पूरे समाचार सुनाये—

दोहा

श्रावक मुनि बहु चितवै, महामंत्र नवकार।
बिंब प्रतिष्ठा जिन भवन, खरचै द्रव्य अपार ॥३३५॥

उधर पाप नगर का जिस प्रकार डंभ ने वर्णन किया वह निम्न प्रकार है—

भनै डंभ सुनि मोह जी, देस तुम्हारे बात।
द्रव्य पराये लूट जे, कर बिसास सुघात ॥३४३॥

बेटी बेच र द्रव्य ले, सब छत्तीसों पोन।
लोभ सरब वरजा कर, चित न राखै आन ॥३४३॥

कूड कपट चालै घणों, घर न करै संताप।
अशुध किराणां बिणज जे, जिह थैं उपजै पाप ॥३४४॥

विवेक ने जिनेन्द्र के पास जाकर संयम स्त्री से विवाह करने का विचार

किया। विवेक की रानी सुमति थी। उसके सबसे बड़े कुमार का नाम वैराग्य था। संयम दूसरा कुमार था। विचार तीसरा कुमार था। सम्यक्त्व सेनापति था जो सभा की चतुरता जानता था। 'उपसम' उसका सेवक था। बारह व्रत उसकी सेना थी। गुरु का उपदेश उसका छत्र था तथा सत्य ही उसका सिंहासन था। सप्त तत्व उसके राज्य के ऐश्वर्य थे। इन सबके साथ विवेक पुण्य नगर में राज्य करता था। राज्य करते हुये उसे बहुत समय हो गया और समय का पता भी नहीं चला। मोह ने यह सब सुना तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसका शरीर पसीनों से भीग गया।

मोह ने विशाल सेना के साथ विवेक पर आक्रमण कर दिया। सर्व प्रथम उसने अपने पुत्र 'मदनकुमार' को सेनापति बना कर युद्ध में भेजा। मदनकुमार के साथ बसंत भी अपने साथियों के साथ युद्ध भूमि में जा डटा। उसकी स्त्री बनमाला भी साथ थी। मदनकुमार के साथ में मान, माया और लोभ भी अपने पूरे दल के साथ उसकी सहायतार्थ चले। पांचों इन्द्रियों ने भी उसका साथ दिया। मदन कुमार के आगे-आगे पद्मिनी हस्तिनी चित्रनी और संखिनी—चारों स्त्रियां चल रही थी। जिनके हाथो में कुसुमबाण थे। इन चारों स्त्रियों की विशेषताएं निम्न प्रकार थी—

> निबसै छुरीका अति खरी, तीर बहती धार।
> कटारी कोमल बचन, करूं शत्रु को सिंघार ।।३८६।।
>
> हाव भाव तरगस भरे, नैन कटाषित बाल।
> अभ्यंतर छेदे तुरत, कामी लखै न जाल ।।३८७।।
>
> नेवर बांनी घाल पग, डारी न जो तास।
> रूप महाबलि सिंह तनो, करै शत्रु को नास ।।३८८।।

मदन कुमार ने सर्व प्रथम ब्रह्म देश की विजय की। यहां ब्रह्मा राज्य करते थे और ब्राह्मण उसके परिजन थे। मदनकुमार ने ब्रह्मा को ध्यान से डिगाने के लिए रम्भा को भेजा। दोनों में खूब लड़ाई किन्तु अन्त मे ब्रह्मा जी हार गये और गायत्री एव साबित्री ये दोनो स्त्रिया देकर वह आगे बढ़ा। आगे विष्णु नगर मिला जहा भगवान विष्णु राज्य करते थे। इन्होने बडे बडे धुरन्धर योद्धाओ को जीत लिया था। मदनकुमार ने विष्णु के पास कामिनियों की फौज भेजी जो वहा जाकर विभिन्न प्रकार के हाव भाव करने लगी। अन्त मे उनकी विजय हुई और सोलह हजार गोपियों को वहा छोड़ कर मदन कुमार आगे बढ़े।

मदनकुमार बैकुंठ नगर आये। वहां भगवान शिव का राज्य था। जिन्होंने तीसरे नेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया था। मदन कुमार ने सुन्दर स्त्रियों को भीलनी का रूप बना कर भेजा। यहां भी मदन कुमार की विजय हुई। वे शिव को गंगा और पार्वती देकर आगे बढ़े।

अब मदन कुमार ने विवेक पर चढ़ाई कर दी। सर्व प्रथम उसने सात व्यसनों को युद्ध में भेजा। इसके पश्चात् १२ अविरत लड़ने लगे। इनका सामना १२ प्रकार व्रतों ने किया। इनसे इन्द्रियों की सेना भाग गयी। सम्यग्ज्ञान के आगे मिथ्यात्व भाग गया तथा समता भाव ने राग द्वेष पर विजय प्राप्त की। मदनकुमार ने आर्त्त और रौद्र—ध्यान को विवेक के गढ़ में भेजा लेकिन विवेक के पास तीन गुप्तियों का अनन्त बल था। मदन ने अपने सभी साथियों को बुला लिया कितने ही दिनो तक युद्ध होता रहा लेकिन मदन की एक भी नहीं चली। अन्त में मदन ने विवेक से मोह को राजा मानने तथा सुख पूर्वक राज्य करने के लिये कहा। विवेक ने मदन को वापिस चले जाने की सलाह दी और कहा कि वह तो निर्ग्रन्थ स्वामी की सेवा करता है। फिर भी उसने आधा राज्य देना स्वीकार कर लिया—

पंचम गुनठामक हुम ठाम, असंजम संजम मति को नाम।
मानों वचन विवेक हो तणी, मदन कंवर सुख पायो घनो ॥४६३॥

छोडियो तिहां असंजम राव, लीयो डंड बहु भयो उछाह।
पुत्र धीया संजम परिवार, ए बहु मोह राज विस्तार ॥४६४॥

संसारी सुख मान घणो, ते सहु भाव असंजम तनो।
दान पुण्य तप सील विमान, और विवेक सुनो गुनमाल ॥४६५॥

जिनवर भवन करावी सार, जिनवर ब्यंब तनो आधार।
जात प्रतिष्ठा सिद्धांत बखान, गुन विवेक साभलो जान ॥४६६॥

दोहा

मोह भाव कर खरच जे, कीजे घर का काज।
सरव डंड ह मोह को, परिग्रह परियन साज ॥४६७॥

सप्त खेत्र धन विविसिजे, कीजे पर उपगार।
डंड कहते जिम तनो, जान विवेक कुमार ॥४६८॥

मदनकुमार की इस विजय से पाप नगर में प्रसन्नता छा गयी और घर घर में उत्सव होने लगे।

कवि ने इसके पश्चात् विवेक एवं मोह के स्वभाव का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त में विवेक ने वैराग्य धारण कर लिया और और संयम रूपी स्त्री के साथ रहने लगे। एक दिन फिर मोह मदन राजा का वहां दूत आया और कहने लगा कि या तो वह मोह का डंड स्वीकार करे या फिर पुष्प समर को छोड़ दे। यदि दोनों मे से एक भी कार्य स्वीकार नहीं है तो फिर देह त्यागने के लिए तैयार हो जावे। विवेक के मन्त्री ने मोह के दूत में खूब वाद-विवाद हुआ।

एक बार फिर मोह ने विवेक पर आक्रमण किया लेकिन उसने अपने सभी बुराइयो पर विजय प्राप्त की और अन्त में जब मोह ने विवेक पर आक्रमण किया तो चारित्र ने वैराग्य की तलवार से उसका डट कर सामना किया और उसे भगाने पर मजबूर किया। विवेक की तपस्या मे और भी अनेक उपद्रव किये गये लेकिन विवेक एक-एक गुणस्थान चढते गये और अन्त में १४ वें गुणस्थान मे पहुंच गये तथा सिद्ध पद प्राप्त किया। कवि ने अन्त मे विवेक के मार्ग पर चलने के लिये सबको निमन्त्रण दिया है—

> विवेक सहस धर्म जो करै, असी पदवी तिह न कुरै।
> जो या कथा सुनै दे कान, सो नर लहे सासतो थान ॥६३८॥
>
> परम हंस गुन मन में आन, सो वह लह सुख की खान।
> परमहंस अति निर्मल देव, मन वच काय नमते एव ॥६३९॥

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

> मूलसंघ जुग तारन हार, सरब गछ गरवो आचार।
> सकलकीर्ति मुनिवर गुनवंत, ता समाही गुन लही न अंत ॥६४०॥
>
> तिह अमृत भाव अति अंग, रतन कीरत मुनि गुर्ण अभंग।
> अनन्तकीर्ति तास सिष्य जान, बोलै मुख थे अमृत बान ॥६४१॥
>
> तास सिष्य जिन चरणा लीन, ब्रह्म राइमल बुधि को हीन।
> भाव भेद तिहां थोडौ लह्यौ, परमहंस की चौपई कह्यौ ॥६४२॥

परमहस चौपई का रचना काल संवत् १६३६ जेठ बुदी १३ शनिवार है।

> सोलासै छतीस बखान ज्येष्ठ सांवली तेरस जांन।
> सोभै बार सनीसरवार, ग्रह नक्षत्र योग शुभ सार ॥६४४॥

इस काव्य का रचना स्थान तक्षकगढ (टोडारायसिंह) है जो उस समय

धन-धान्य सहित था तथा जहां श्रावकों की अच्छी बस्ती थी। वहां पार्श्वनाथ का मन्दिर था जिसका निर्माण संवत् १५३५ में खंडेलवाल जातीय छाबड़ा गोत्र के संघही चाहड़ ने कराया था। कवि ने उसी मन्दिर में बैठ कर ग्रन्थ का निर्माण किया था। तक्षकगढ़ में अनेक बावडियां एवं बाग और कुवे थे। चारो ओर बाजार थे। जिसमें वस्त्र एवं मोतियों के हार बिकते थे। वहां के सभी जिन मन्दिर ऊंचे थे जिनके शिखरों पर ध्वजाएं फहराती थी। नगर में श्रावकों की घनी बस्ती थी जो सभी धनाढ्य थे। वे प्रतिदिन पूजा करते एवं अरिहंत भगवान का ध्यान करते थे। उनमें सबमें मित्रता थी तथा एक दूसरे में इर्ष्या भाव नहीं था।[1]

प्रतिपरिचय

प्रस्तुत प्रति दौसा (राजस्थान) के तेरापंथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में में उपलब्ध है। इसमें ३९ पत्र है तथा इसे संवत् १८४४ कार्तिक सुदि ९ शनिवार को सारोवा ग्राम मे पं० दयाचन्द ने लिखी थी। यह ब्रह्म सिवसागर के पठनार्थ लिखी गयी थी।[2]

---

१ देश भलो तिह नागर भाव, तक्षिकगढ अति वस्यौ बिशाल।
सोभै बाडी बाग सुचंग, कूप बावडी निर्मल अंग ॥६४६॥

चहु दिसि वन्या अधिक बाजार, भर्‌या पटंबर मोती हार।
जिन चैत्याला बहुत उत्तंग, चंदवा तोरण धुजा श्रुचंग ॥६४७॥

श्रावक लोक बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरिहंत।
उपरां उपरी वैर न कास, जिम ग्रह मंदिर सुरग निवास ॥६४८॥

राजा कर राजा जगनाथ, दान देत नवों खैचै हाथ।
पंदरासै पैंतीसा सार, पारस नाह मन्दिर विस्तार ॥६४९॥

खण्डेलवाल छाबड़ा गोत, चाहडै संगही बहु प्रथवेत।
दान पुण्य साला अतिसार, खरचै बहुत द्रव्य अपार ॥६५०॥

२ इति श्री परमहंस चौपई ब्रह्म राईमल कृत संपूर्ण। शुभं भवतु कल्यानमस्तु। पौथी ब्रह्म जी सीवसागरजीं पठनार्थं, लिखितं पंडित दयाचन्द सारोला मध्य संवत् १८४४ वर्षे कार्तिक स्यांम सिथी ९ सनीसरवारे मध्याह्न वेलायां ॥

१ निर्दोष सप्तमी व्रत कथा

ब्रह्म रायमल्ल की यह कथा प्रधान कृति है जिसमें उसने निर्दोष सप्तमी व्रत की कथा का वर्णन किया है। व्रतों के महात्म्य एवं उनके प्रचार का ही इस कथा को लिखने का एक मात्र उद्देश्य है।

वाराणसी नगर में सेठ लक्ष्मीदास एवं सेठानी लक्ष्मीमति रहते थे। वे प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा किया करते थे। इसी नगर मे एक और वणिक् था। जिसकी स्त्री का नाम नन्दिनी था। मुरारी उनका पुत्र था। कुछ समय मे मुरारी खांसी के रोग से पीड़ित होकर मर गया। पुत्र वियोग से वे दोनो दुखी रहने लगे। एक दिन सेठानी का नन्दिनी के घर आना हुआ। उसने नन्दिनी से उसके द्वारा प्रातः काल गाया जाने वाला गीत के सम्बन्ध मे जानकारी चाही तो उसने पुत्र वियोग की बात कही। लक्ष्मीमति ने नन्दिनी से कहा कि पुत्र वियोग से इतना दुख करना व्यर्थ है। उसने कहा कि क्या उसे निम्न कार्यों के करने से दुःख होता है —

> लिखमीमति बोली संखिनी, दुख नाम कीयो नंदनी
> कै दुख पुत्र पुत्र विवाह, कै घरि जामरण पुत्र उछाह।
> कै दुख घरि आया पाहुरणौ, कै दुख जिन पूजा वंदना।
> कै दुख संग किनौ व्यौहार, कै दुख भोजन मिष्ट अहार।
> कै दुख मुनिवर दीजै दान, कै दुख चोवा चंदन पान।
> कै दुख भलौ वस्त्र आभरण, कै दुख रत्नरूप सो बरण
> कै दुख कीजे जिरणवर जात, कै दुख कही धर्म की बात।
> कै दुख सदा हरिष आनन्द, कै दुख सुणीजे शास्त्र जिणंद।
> क दुख बरत उद्यापन होइ, अवर दुख न छी जाणौ कोई।

उक्त दुःख के कारणों को सुन कर नन्दिनी बड़ी क्रोधित हुई और उसने कहा कि एक दिन वह उसे दुःख को दिखावेगी।

नन्दिनी के एक दिन मन मे पाप उपजा और उसने एक काला सर्प घडे मे डाल कर तथा उसका मुख पीले कपड़े से ढ़क कर सेविका के हाथ सेठानी के यहा भेज दिया। और कहलां दिया कि यह दुःख की खान है उसे वह ले ले। सेठानी ने कलश को हंसी खुशी ले लिया और दासी को ससम्मान विदा कर दिया। सेठानी ने जब कलश को खोल देखा तो उसके पुण्य के प्रभाव से वह सर्प भी सुन्दर हार बन गया। वह उसे पहिन कर जिन पूजा को चल दी। मार्ग में उनकी भेंट रानी से

हुई। रानी उसमें गले के हार को देख कर कुछ गयी और ऐसा ही हार अपने लिये भी चाहने लगी। महलों में जाकर वह खटवा की पाटी लेकर सो गई।

राजा को जब रानी की बात मालूम हुई तो उसने तत्काल सेठ सेठानी को महल में बुलवाया तथा वहां आने पर सेठाणी का हार देने के लिये कहा। सेठ ने रानी के गले में से हार उतार कर राजा के सामने रख दिया। लेकिन वह राजा के छूने पर सर्प बन गया और सेठ के छूने पर वापिस हार हो गया। चारों ओर सेठ सेठानी के पुण्य की चर्चा होने लगी। कुछ समय पश्चात् वे मुनि के पास गये और निम्न प्रकार प्रश्न पूछा—

बोलै राव जोडिया हाथ, प्रश्न एक बुझै मुनिनाथ।
लिछमी मति गला को हार, हम छीवंत होय सर्प विकार।
चित्त हमारै संसौ घणो, कहो विरतंत हार छूह तणो।

मुनि ने कहा कि लक्ष्मीमति ने पूर्व जन्म मे अत्यधिक पुण्य किया था और निर्दोष सप्तमी व्रत का पालन किया था। भादवा सुदि सप्तमी के दिन उपवास रखने से अत्यधिक पुण्य प्राप्त होता है। सात वर्ष तक व्रत करने के बाद उनका उद्यापन करना चाहिये और यदि उद्यापन नही कर सके तो उतने ही वर्ष तक व्रत करना चाहिये।

पूरी कथा कृति ५६ पद्यों में पूर्ण होती है। अन्तिम छन्द में कवि ने अपने नाम का उल्लेख निम्न प्रकार किया है—

नर नारी जो नीव्रत करै, सौ संसारा थोडौ फिरै।
जिन पुराण मही इस सुण्या, जहि विधि ब्रह्म रायमल्ल भण्या।[1]

१०. पंच परम गुरु जयमाल

यह एक लघु रचना है जिसमें २१ पद्य हैं। यह स्तुतिपरक रचना है जिसमें पूजा, दान, दसलक्षण धर्म एव सोलहकारण व्रत आदि के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। रचना की भाषा राजस्थानी है। उसका आदि अन्त निम्न प्रकार है—

आदि भाग—पंच परम गुरु वंदिस्यां, सारद प्रणमी पायेजी।
आठ द्रवि पूजा रचो, सबगुरु तणी पसायोजी ॥पंच॥१॥
हो जिणवर पूजा नित करौ, सावग सुभ कुल पाये जी।
आरंभ पारंभ सोइ घर तणां, ते सोइ पाप विलाए जी ॥पंच॥२॥

अन्तिम भाव—हो श्रावक को कुल पाइये, लहिये द्रव्य अपारोजी ।
नां खरची नां तप कीयौ, जनम गुमायौ सारोजी ॥२०॥
हाथ जोडी बिनती करैं, परम निरंजन देवोजी ।
रायमल ब्रंभ जो भणैं, मांगौ तुम पद सेवजी ॥२१॥

इति पंचपरम गुरु की जैमाल समापत । मिति चैत सुदी ८ संवत् १८२९ ।

उक्त कृति दि. जैन मन्दिर पार्श्वनाथ जयपुर के शास्त्र भण्डार के ११ सख्या वाले गुटके मे संग्रहीत है ।

११. जिन लाडूगीत

यह एक रूपक गीत है जिसमे निर्वाण प्राप्ति के लिये लाडू को रूपक बना कर मानव को प्रेरणा दी गयी है । गीत मे आठ मूल गुणो को दुग्ध, छाछ को सम्यक्त्व, सप्त व्यसनों को धूलि, उपशम सम्यत्व के जल से धोकर लाडू बनाने की विधि बतलाई है । पानीगालन को घृत, दिन में भोजन करने को खाड, अपने शरीर को चुल्हा एव आत्मा को कडाही, ध्यान रूपी आइनै पर जलाना चाहिये । जीव और पुद्गल भिन्न है इसका चिन्तन करना चाहिये । इस प्रकार चारित्र रूपी लाडु बहुत सुन्दर तैय्यार होगा जिसको खाने से सुख मिलेगा ।

पंच परम गुरु बंदिस्यां जिण लाडू हो
सारद प्रणमुं पाय जिणेसर लाडू हो ॥१॥
गुण गावउं श्रावक तणा । जिणे । क्रिया त्रेपन सार ॥जिणे॥
आठ मूल गुण गो हूयां ॥जिणे॥
समकित छाल पछांरि ॥जिणे॥
सात व्यसन रज दूरि करि ॥जिणे॥
उपसम पाणी धोइ ॥जिणेसर लाडू हो ॥३॥
दुइ प्रकारि तप घर टला, जिणेसर लाडु हो ।
करुणा चीस सहारि जिणेसर लाडू हो ॥४॥
बार बरत सुभ छांणणा जिणेसर लाडु हो ॥५॥
सोडी प्रतिमा च्यार ॥जि॥पांणी गालण घृत करि ॥जि॥६॥
दिन भोजन करि खांड, ॥जि॥निज शरीर चुल्हड करे ॥जिण॥७॥
आतम करउ कडाहि ॥जि॥ ईंधन च्यारि कषाइ करउ ॥जि॥८॥
ध्यान आगनि परिजाल ॥जि॥ सुभ विवेक चाटू करउ ॥९॥
जीवर पुद्गल भिन्न ॥जि॥ दंसण गुण करि काढउ ॥१०॥
ग्यान गरांमि री लुंग ॥जि॥ चारित लाडू प्रति भलउ ॥११॥

खांति मुकति सुख मिठु ।।जि०।। साधू इरिण परि सोंखियो ।।१३।।
जिम पावउ निरवांण ।।जि०।। सांभरि नयरि सुहामणो ।।१४।।
भव्य महाजन लोग, जिण्या भणी भावकलणी ।।१५।।
पावउ सब सुख होइ, कह्य राइमल इम भणउ ।।१६।।
धर्म्म जिणेसर सरण जिणेसर लाडू हो ।।१७।।

उक्त रचना 'सांभर' मे रची गयी थी । सांभर मे कवि ने जेष्ठ जिनवर कथा को सवत् १६३० में निबद्ध की थी । इसलिये यह रचना भी उसी समय की मालूम देती है ।

१२. चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न

जैन पुराण साहित्य में स्वप्नो का अत्यधिक महत्व माना गया है । तीर्थंकर के गर्भ मे आने के पूर्व उनकी माता को सोलह स्वप्न आते हैं और इन स्वप्नों के अनुसार ही उसे तीर्थंकर पुत्र होने का भान होता है । भरत सम्राट के स्वप्नों का भी पुराणों मे खूब वर्णन मिलता है । प्रस्तुत कृति में सम्राट चन्द्रगुप्त को आने वाले सोलह स्वप्नो का वर्णन किया है । चन्द्रगुप्त हमारे देश के सम्राट थे तथा जैन धर्मानुयायी थे । सम्राट को जब स्वप्न आये तो उन्होंने अपने गुरु भद्रबाहु से उनका फल जानना चाहा । उस समय भद्रबाहु ने जो उनका संक्षिप्त फल बतलाया उसी का कविवर रायमल्ल ने प्रस्तुत कृति मे वर्णन किया है ।

१. टूटी हुई डाली	क्षत्रिय जाति को दीक्षा में विश्वास नहीं रहेगा ।
२, अस्त होता हुआ सूर्य	द्वादशांग श्रुत का ह्रास होगा तथा उसे जानने वाले कम रह जावेंगे ।
३. उगते हुए चन्द्रमा में अनेक छेद	जिन शासन अनेक भागों में बट जावेगा ।
४ बारह फरण वाला सर्प	बारह वर्ष का दुष्काल पड़ेगा साधु अपने आचार से विमुख होगे ।
५ देव विमान गिरता हुआ	भविष्य मे चारण ऋद्धिधारी मुनि नहीं होगे ।
६. कूडे में कमल उगता हुआ	संयम धर्म केवल वैश्य जाति में रहेगा । ब्राह्मण और क्षत्रिय भ्रष्ट हो जावेंगे ।

७. नाचते हुए भूत	नीच जाति के देवो में भाव होंगे तथा जैन धर्म का ह्रास होगा ।
८-९. सूखा हुआ सरोवर तथा दक्षिण दिशा की ओर जल	जहां-जहां तीर्थंकरों के कल्याणक हुए हैं वहां वहां इने गिने जैनधर्मावलम्बी रहेंगे । जैन धर्म दक्षिण मे रहेगा ।
१०. चमकते हुए कीट	भविष्य मे जैन धर्म कम हो जावेगा तथा अधिकाश लोग मिथ्या धर्मों का से वन करते रहेंगे ।
११. सोने के वर्तन मे दूध पीता हुआ कुत्ता ।	ऊंची जाति मे लक्ष्मी नहीं होगी लेकिन नीच जाति के लोग लक्ष्मी का उपभोग करेंगे ।
१२ हाथी पर बैठा हुआ बन्दर	नीच जाति के हाथ मे शासन होगा तथा क्षत्रिय उसकी सेवा करेंगे ।
१३. सीमा को लांघता हुआ समुद्र	राजा न्याय का मार्ग छोड देगा तथा प्रजा को लूटकर खायेगा ।
१४ रथों मे बैलों के स्थान पर घोडे	युवा दीक्षा लेंगे तथा वृद्ध माया में फंसे रहेंगे ।
१५. धूल से ढकी हुई रत्नो की राशि	पचम काल मे साधुओं मे परस्पर मे विरोध रहेगा ।
१६. जूझते हुए काले हाथी	पंचम काल मेंदिन प्रतिदिन कष्ट बढेगे तथा समय पर वृष्टि नही होगी ।

स्वप्नो का फल जान कर सम्राट चन्द्रगुप्त को जगत से वैराग्य हो गया और चैत्र सुदी ११ को अपने पुत्र को राज्य भार सौंप कर मुनि दीक्षा धारण कर ली ।

रचना काल—कृति में न रचनाकाल दिया हुआ है और न रचना का स्थान । केवल कवि ने अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

जिण पुराण माहि इम सुणी, ताहि विधि ब्रह्म रायमल भणी ।।२५।।

कृति में २५ पद्य हैं उनकी यह प्रारम्भिक रचना लगती है । राजस्थानी शैली की इसमें प्रमुखता है ।[1]

---

१. आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर, गुटका संख्या ४, पत्र संख्या ८४ से ८६ संवत् १७२४ लिखित प० लिखमीदास ।

१३. जम्बू स्वामी चौपई

ब्रह्म रायमल्ल का यह बिना संवत् वाला प्रबन्ध काव्य है। इसमें भगवान् महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली जम्बू स्वामी के जीवन का वर्णन किया गया है। जम्बू कुमार एक श्रेष्ठि के पुत्र थे जिन्होंने अपनी नव विवाहित आठ पत्नियों को छोड़ कर जिन दीक्षा धारण करली थी और अन्त मे घोर तपस्या के पश्चात् निर्वाण प्राप्त किया था। जम्बू स्वामी का जीवन जैन कवियों के लिये पर्याप्त आकर्षक रहा है इसलिये सभी भाषाओं में इनके जीवन पर आधारित काव्य मिलते हैं।

प्रस्तुत कृति की एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि जैन मन्दिर संघीजी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है[1]। लेखक ने जब सन् १९५८-५९ में इस मन्दिर के शास्त्रों की सूची बनायी थी तब उक्त रचना को देख कर उसका परिचय लिखा था। उस समय गुटके से विशेष नोटस् नहीं लिये जा सके लेकिन वर्तमान में वह गुटका अपने स्थान पर काफी खोज करने के पश्चात् भी उपलब्ध नही हो सका। इसी खोज मे ग्रंथ प्रकाशन का कार्य भी कुछ समय के लिये बन्द रखा गया लेकिन उसे ढूंढने मे सफलता नहीं मिल सकी। इसीलिये यहा कृति के नामोल्लेख के अतिरिक्त विस्तृत परिचय नहीं दिया जा सका। भविष्य में प्रस्तुत कृति या तो इसी भण्डार मे अथवा अन्यत्र किसी भण्डार मे उपलब्ध हो गयी तो उसका विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया जावेगा।

१४. चिन्तामणि जयमाल

यह स्तवन प्रधान कृति है जिसकी एक प्रति जयपुर के दि. जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार के गुटके में सग्रहीत है।[2] भरतपुर के पचायती जैन मन्दिर मे भी उसकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है।[3]

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रंथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या ७१०

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ सख्या

३ ,, पचम भाग ,, १०५७

१५ नेमिनिर्वाण

यह भी लघुकृति है जिसमें २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ का स्तवन मात्र है। उसकी एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है।

मूल्यांकन—इस प्रकार महाकवि ब्रह्म रायमल्ल ने हिन्दी जगत् को १५ कृतियां भेंट करके साहित्य सेवा का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। राजस्थान के ऐसे शास्त्र भण्डारों में जिन्हें हम नही देख सके हैं, हो सकता है और भी कृतियां मिल जावें। श्री महावीर क्षेत्र की ओर से प्रकाशित ग्रन्थ सूचियों मे ब्रह्म रायमल्ल के नाम से कुछ रचनायें और भी दी हुई हैं लेकिन कृतियों के गहन अध्ययन के पश्चात् वे ब्रह्म रायमल्ल की नही निकली। ऐसी कृतियों मे आदित्यवार कथा[1] एवं छियालीस ठाणा[2] चर्चा के नाम उल्लेखनीय हैं। महाकवि ने अपनी सभी कृतिया स्वान्त ! सुखाय लिखी थी क्योंकि अन्य जैन कवियो के समान कवि की कृतियो मे न तो किसी श्रेष्टि के आग्रह का उल्लेख है और न किसी भट्टारक के उपदेश का स्मरण किया है। ग्रंथ प्रशस्तियों में कवि ने अपने गुरु का, रचना समाप्ति काल वाले नगर का, नगर के तत्कालीन शासक का और वहां के जैन समाज, मन्दिर तथा व्यापार आदि की स्थिति का सामान्य उल्लेख किया हैं लेकिन वह अत्यधिक संक्षिप्त होने पर भी इतिहास की कड़ियों को जोड़ने वाला है तथा तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशा की ओर प्रकाश डालता हैं। साथ ही मे वह कवि के घुमक्कड़ जीवन का भी द्योतक है।

महाकवि की सभी रचनाए कुछ सामान्य अन्तर लिये हुये एकसी शैली मे लिखी गयी हैं। सात लघु रचनाओ के विषय मे तो हमे कुछ नहीं कहना क्योकि वे रचनाये प्राय· सामान्य स्तर की है और काव्य की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण भी नही है। शेष आठ रचनाए सभी बड़ी रचनायें हैं और वे कवि की काव्य प्रतिभा की परिचायक हैं। ये सभी रचनायें रास शैली मे लिखी गयी हैं चाहे उनके नाम के आगे रास लिखा हो अथवा चौपई एवं कथा लेकिन सभी रचनाओं मे कवि ने पाठको की स्वाध्याय शक्ति का अधिक ध्यान रखा है और अपनी काव्य प्रतिभा लगाने का काम। इन सभी काव्यो को देश एव समाज मे काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई क्योंकि राजस्थान के जैन ग्रथागारो मे ब्रह्म रायमल्ल के काव्यो को दो चार नही किन्तु पचासो प्रतियां मिलती है। सबसे अधिक पाडुलिपियां भविष्यदत्त चौपई,

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रंथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या ७१२
२. वही पृष्ठ संख्या ७६५

श्रीपालरास, एवं नेमिश्वररास की मिलती है। जिससे इनकी लोकप्रियता का पता चलता है। आठ बडी रचनाओं में 'जम्बू-स्वामी रास' की एक पांडुलिपि जयपुर के संघीजी के मन्दिर में संग्रहीत थी। लेखक ने संघीजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार की ग्रथ सूची बनाते समय उक्त रचना को नोट किया थी और उसका परिचय भी दिया था लेकिन पर्याप्त प्रयास करने पर भी वह पाण्डुलिपि प्राप्त नहीं हो सकी। परमहंस चौपई की सारे राजस्थान मे केवल दो भण्डारों में पांडुलिपि प्राप्त हो सकी हैं। वे मण्डार हैं दौसा (जयपुर) एव अजमेर का भट्टारकीय भण्डार। सभी लघु रचनायें गुटकों में अन्य पाठों के साथ सग्रहीत हैं।

भाषा की दृष्टि से

भाषा की दृष्टि से महाकवि ब्रह्म रायमल्ल को राजस्थानी भाषा का कवि कहा जायेगा। लेकिन यह राजस्थानी ढूंढाड प्रदेश की भाषा हैं मारवाड़ एवं मेवाड़ भाषा की नहीं। इसके अतिरिक्त यह राजस्थानी काव्यगत भाषा न होकर बोलचाल की भाषा है। शब्द एवं क्रियापद स्थिर न होकर बदलते रहते हैं। कवि ने रास संज्ञक, कथा संज्ञक एवं चौपई संज्ञक सभी कृतियों में इसी बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। भाषा इतनी मधुर, स्वाभाविक एवं सरल है कि थोड़ा भी पढ़ा लिखा व्यक्ति कवि के काव्यों का सहजता से रसास्वादन कर कर सकता है। पद्यों के निर्माण मे स्वाभाविकता है। उसका एक उदाहरण देखिये—

> हो जावौ बोल्या नारद स्वामी, हो तुम तौ जी छौ आकास्यां गामी।
> दीप अढाई संचरौ जी, हो पूरब पश्चिम केवल ज्ञानी।
> चोथो काल सदा रहेजी, हो तहकी हमस्यौं कहिज्यौ बातों ॥११०॥[1]

इसी तरह एक स्थान पर 'हो हमने जी सीख देण तू लागी' राजस्थानी भाषा पाठ का सुन्दर उदारण है[2]। कवि ने शब्दों एव क्रियापदों को राजस्थानी बोलचाल की भाषा मेपरिवर्तित करके उनका काव्यों में प्रयोग किया है। ऐसे क्रियापदों मे जाणिज्यौ (श्रीपाल रास/७१) आणिस्यौ (श्रीपाल रास/७३) ल्यायौ (प्रद्युम्न रास/९८) ल्याया (नेमीश्वर रास/२३) आइयो (श्रीपाल २०६) सुण्या (श्रीपाल/२१०) जैसे पचासों क्रियाये हैं। कवि ने इसी तरह राजस्थानी शब्दों का प्रयोग

---

१. प्रद्युम्नरास पद्य संख्या १०
२. वही पद्य संख्या १९

बहुलता से किया है जिनके कारण काव्यों में सरसता आ गयी है। कुछ शब्द निम्न प्रकार है—

हिन्दी शब्द	राजस्थानी शब्द
उज्जयिनी	उजेणी[3]
दहेज	डाइजो[4]
जिनालय	जिणालै[5]
श्रावक	सरावक[6]
स्नान	सनान[7]
पुष्प	पहुप[8]
पीछे	पछै[9]
स्त्री, पत्नी	तीया[10]
यौवन	जोबन[11]
जीमनवार	ज्यौणार[12]
जामाता	जंवाइ[13]
विधवा	रांड[14]

---

३ हो तिह मैं मालव देश विसाल, उजेणी नग्री भली ।।श्रीपाल।।६।।
४ हो दीयो डाइजो अधिकु सुचार ।।श्रीपाल रास।।४०
५ गइ जिणालै जगनाथ वही/४२
६ हो धर्म सरावक जती कौ सुणौ वही/४६
७ करे सनान लए भरि नीर ,, /५०
८ चंदन पहुप लगाए अग ,, /५३
९ पछै आप भोजन करै ,, /६०
१० हो तिया सहित राजा सिरीपाल श्रीपालरास/७०
११. साथि तिया सुभ जोबन बाल ,, ११२
१२ सिरीपाल दीनी ज्यौणार ,, ११३
१३ राज जवाइ इहु सिरिपाल ,, ११८
१४. हो देख्यौ रांड तणौ व्यवहारो ,, १३४

वणिक	वाण्या[15]
ज्योतिषि	जोतिगी[16]
सास	सासु[17]
प्रद्युम्न	परदवण[18]
पृथ्वी	पीरथी[19]
स्वर्ग	सुर्ग[20]
अप्सरा	अपछरा[21]
बहिन	बहण[22]
चुपके	छानै[23]
दुर्योधन	दरजोधन[24]
युद्ध	झुझ

करण कारक में 'से' के स्थान 'स्यौ' का प्रयोग किया गया है तथा हमस्यौ, कलत्रस्यौ कंतस्यौ, बहुस्यौ, गुरुस्यौ आदि का प्रयोग कवि को अधिक प्रिय रहा है। सख्या वाचक शब्दों में पहलौ[1], दूजा[2], तीजा[3], चौथा[4] जैसे शब्द प्रयोग मे आये हैं।

कवि ने अपने काव्यों मे कुछ ठेठ राजस्थानी शब्दों का प्रयोग किया है जिससे काव्य रचना में एवं शब्दों के चयन मे स्वाभाविकता आयी है। कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

१. सवासिणी[5]—राजस्थान में इस शब्द का दूल्हा दुल्हिन की विवाहित बहिन

---

१५. जो सुण्या बचन जे बाण्या कह्या	श्रीपालरास	१४६
१६. हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ	,,	१६४
१७. हो सुंदरि बात सासुस्यौ कही	,,	२२६
१८. रास भणौ परदवण कौ जी	प्रद्युम्न रास	१
१९. नारद पीरथी सहु फिरीजी	,,	
२०–२१. सुर्ग अपछरा सारिखी जी	,,	२१
२२. हो रूपि बहण जै होइ कंवारी	,,	३२
२३. हो दरजोधन घरि लेख पठायो	,,	६०
२४. विद्या झुझ कियो घणो जी	,,	१३२

के लिये प्रयोग किया जाता है। सवासिणी का विशेष सम्मान होता है तथा उसे दुल्हिन की विशेष सम्हाल करनी पड़ती है।

२ कुकरो[6]—यह शब्द कुत्ते के लिये प्रयुक्त होता है। गांवों में कुत्ते को आज भी कूकरा ही कहा जाता है।

३. छाने[7]—जो कार्य दूसरों के द्वारा बिना देखे किया जाता है उसे छाने-छाने काम करना कहा जाता है।

४. रांड[8]—विधवा स्त्री/राजस्थान में किसी महिला को रॉड कहना गाली देने के बराबर है।

५. ढोकना—नमस्कार करना[9]

६. लुगाई—स्त्री/महिला[10]

७. ज्यौणार—सामूहिक भोजन[11]

८. बीलाई—बिल्ली[12]

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों को हम निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं —

१. पौराणिक
२. ऐतिहासिक
३. आध्यात्मिक
४. सामाजिक
५. लघु काव्य

---

१ हो पहलौ जी राजा अंधीक वृष्टि — प्रद्युम्नरास ६
२ हो दूजा जी पणउ जिण की वाणी — ,, २
३ हो तीजा जी पणउ गुरु निरंगथो — ,, ३
४. चौथो काल सदा रहेजी........। — ,, १०
५. गावै हो गीत सवासिणी, नाचै जी अप्छरा करिवि सिंगार ।।नेमीश्वररास।।१४।।
६. कुकरौ कान ते झाडिया अहो गई जी बीलाई ।।नेमी।।६०
७. हो राणी भणै राउ डर मानै, हो विद्या तीनि लेहु थौ छाने ।।प्रद्युम्नरास।।११६
८ राजा मन में चिंतवै जी, हो देखौ रांड तणा व्यौहारो ।।१२३, प्रद्युम्नरास।।
९ चरण माता का ढोकिया जी
१०. हो तौलग भामा मारि पठाई, हो गावै गीत द्वारिका लुगाई ।।प्रद्युम्न।।१५
११ हो सति भामा घरि गयो कुमारो, भानुकुमार व्याह ज्यौणारो ।।प्रद्युम्न।।१४४
१२. अहो गई जी बिलाई मारग काटि ।। नेमीश्वर रास ।।६०।।

पौराणिक—कवि के पौराणिक काव्यों में श्रीपालरास, नेमीश्वररास, हनुमतकथा, प्रद्युम्नरास एवं सुदर्शनरास के नाम लिये जा सकते हैं। इन सभी काव्यों के नायक पौराणिक है और जिनकी कथा वस्तु का आधार महापुराण, पद्मपुराण और हरिवंशपुराण जैसे पुराण हैं लेकिन स्वय कवि ने अपने काव्यों में कथा का आधार नही बतलाया है। इसका प्रमुख कारण इन कथाओं को लोकप्रियता का होना है। कवि ने कही कथा का संक्षिप्तीकरण कर दिया है तो कहीं कथा को विस्तृत रूप देकर उसमें काव्यात्मक चमत्कार पैदा करना चाहा है। यद्यपि इन काव्यो मे कथा वर्णन कवि का मुख्य ध्येय रहा है लेकिन अपने काव्यो को लोकप्रिय बनाने के लिये उनमें भक्तिरस, शृंगाररस, एवं वीररस का पुट दिया है और उससे सभी काव्य आकर्षक बन गये हैं। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर हैं वे तो निर्वाण प्राप्त करते ही हैं किन्तु श्रीपाल, हनुमान, प्रद्युम्न एवं सुदर्शन सभी नायक जीवन के अन्त मे वैराग्य धारण कर तथा घोर तपस्या करके निर्वाण प्राप्त करते है। इन सभी के जीवन मे अनेक बाधाए आती हैं। श्रीपाल और प्रद्युम्न को तो जीवन मे अनेक विपत्तियो का सामना करना पड़ता है लेकिन उनकी जिनेन्द्रभक्ति मे प्रबल आस्था होने के कारण उन्हे सभी विपत्तियों से मुक्ति मिलती हैं। सुदर्शन की तो सूली पर चढ़ाने के लिये ले जाया जाता है लेकिन उसे भी अपने पूर्वोपार्जित कर्मों एव जिनेन्द्र भक्ति के कारण चमत्कारिक रीति से सूली के स्थान पर सिंहासन मिलता है। यद्यपि इनकी कथा का आधार पुराण है लेकिन काव्य मे सभी लौकिक एव सामाजिक तत्व विद्यमान है।

ऐतिहासिक—जम्बू स्वामी भगवान महावीर की परम्परा में होने वाले अन्तिम केवली है जिन्हें इस युग मे निर्वाण की प्राप्ति हुई थी। मगध प्रदेश की राजधानी राजगृह के एक श्रेष्ठी के यहां जम्बू कुमार का जन्म हुआ। बचपन में ही सधर्मा स्वामी के उपदेश से प्रभावित होकर विरक्त हो गये। अपने कुटुम्बियों के आग्रह पर उन्होने विवाह तो किया लेकिन विवाह के कुछ ही समय पश्चात् उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली और ४० वर्ष तक देश के विभिन्न भागो में विहार करने के पश्चात् चौरासी मथुरा से निर्वाण प्राप्त किया। कवि ने अपने इस रास काव्य मे तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यो का उल्लेख नही किया है।

आध्यात्मिक—परमहंस चौपई कवि का सबसे उत्कृष्ट रूपक काव्य है जिसके परमहस नायक हैं तथा चेतना नायिका है। अन्य पात्रों मे माया, मन, प्रवृत्ति एव निवृत्ति, विवेक एवं ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म हैं। कवि ने अत्यधिक व्यवस्थित रूप से अपने पात्रों को प्रस्तुत किया है। काव्य का प्रमुख उद्देश्य मानव को असत् को

हटा कर सत् की ओर ले जाना है। यही नहीं मिथ्यात्व के दोषों को बतलाना भी कवि का उद्देश्य रहा है। पाप नगरी एव पुण्य नगरी के भेद को कवि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत किया है।

सामाजिक

राजा महाराजाओ अथवा तीर्थंकरो को काव्य का नायक बना कर उनके गुणानुवाद के अतिरिक्त सामान्य मानव के जीवन को लेकर काव्य रचना करना जैन कवियों की विशेषता रही है। ये वर्ग विहीन काव्य रचना मे विश्वास रखते हैं तथा किसी भी जाति एवं वर्ग मे पैदा होने पर भी यह मानव जीवन के उच्चतम ध्येय को प्राप्त कर सकता हैं इसका दिग्दर्शन कराना जैन कवियों को अभीष्ट रहा है। वैसे तो प्रायः सभी काव्यो मे समाज के वातावरण, रीति-रिवाज एव परम्पराओं का वर्णन रहता है लेकिन कुछ काव्यो मे उक्त बातों का विस्तृत वर्णन मिलता है। भविष्यदत्त चौपई, जम्बूस्वामी चौपई जैसे काव्य इस शैली की प्रमुख कृतिया हैं। कवि ने इन काव्यों मे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का जो स्पष्ट वर्णन किया है उससे यह काव्य अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सके हैं। सामाजिक काव्यो के अतिरिक्त इनको हम जन सामान्य के काव्य भी वह मानते है। जैन कवि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा का रूप देखते हैं और प्रत्येक आत्मा से इसी परमात्मा पद को प्राप्त करने का आह्वान करते हैं।

विविध

ब्रह्म रायमल्ल ने प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त कुछ लघु कृतियां भी निबद्ध की थी। ऐसी रचनाओ का विषय एक ही तरह का न होकर विविध है। निर्दोष सप्तमी कथा में सप्तमी व्रत के महात्म्य का वर्णन है तो चिन्तामणी जयमाल स्तुति परक है। चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न घटना परक है तो पंच गुरु की जयमाल पूजा सज्ञक रचना है। कवि ने अपनी लघु रचनाओ को विविध आख्यानो से निबद्ध किया है इसलिए सभी ६ लघु कृतियो को हम इस श्रेणी की रचनाओं मे रख सकते हैं।

भक्ति परक अध्ययन

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल का युग भक्तिकाल का चरमोत्कर्ष युग माना जाता है। सूरदास, मीरा, तुलसीदास जैसे भक्त कवि ब्रह्म रायमल्ल के समकालीन कवि थे। सभी भक्त कवि उस युग मे अपनी लेखनी एवं वाणी से जन-जन को राम एवं कृष्ण भक्ति मे डूबो रहे थे तथा सगुण भक्ति धारा मे आप्लावित करके देश में एक नया वातावरण बना रहे थे। उन भक्त कवियो ने उस युग मे ऐसा सबल एवं

विस्तृत प्रवाह संचालित किया कि उसकी लपेट में न केवल वैष्णव एवं जैन ही आये किन्तु देश में रहने वाले मुसलमान एव अन्य जातियों के सदस्य भी उसी राग में अलाप लगाने लगे। जैन कवियों ने जिनेन्द्र भक्ति की ओर जिन भक्तों को आकृष्ट किया तथा वे अपनी कृतियो मे जिन भक्ति की सार्थकता को सिद्ध करने मे लगे रहे। ब्रह्म रायमल्ल के अतिरिक्त भट्टारक रतनकीर्ति. भट्टारक कुमुदचन्द्र जैसे संतो ने भी जिन भक्ति को धार्मिक क्रियाओ मे सर्वोच्च स्थान दिया। १७ वीं शताब्दी के पश्चात् जितने भी जैन कवि हुये सभी ने किसी न किसी रूप मे भगवान के गुणानुवाद करने पर बल दिया तथा भक्ति रस से ओत प्रोत पदों की रचना की।

ब्रह्म रायमल्ल पूरे भक्त कवि थे। जिनेन्द्र भगवान की पूजा, स्तवन एवं गुणानुवाद करने मे उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। जिन भक्ति को प्रदर्शित करने के एक मात्र साधन काव्य रचना मे उनका अटूट विश्वास था। उन्होंने अपने काव्यो को तीर्थंकरो की स्तुति एवं वन्दना से आरम्भ किया है। यही नहीं अपने आपको अपढ अयाण कह-कर जिन भक्ति के प्रसाद को ही काव्य रचना मे सहायक बतलाया है। ब्रह्म रायमल्ल कहते हैं कि न तो उन्होंने पुराण पढ़े हैं और न वे तर्क शास्त्र एव व्याकरण पढ सके है। बुद्धि भी अल्प है इसलिए वह उनके गुणों का वर्णन कैसे कर सकता है।[1]

कवि ने श्रीपालरास मे सिद्धचक्र पूजा के माहात्म्य का विशद वर्णन किया है। जिन पूजा को पुण्य की खान स्वीकार किया है।[2] सिद्ध चक्र की पूजा करने से कभी रोग नहीं होता है। पूजा से शोक स्वयमेव विलीन हो जाता है।[3] सिद्ध चक्र को आठ दिन तक भक्ति एव श्रद्धा पूर्वक जो पूजा करता है उसको श्रीपाल के समान ही उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

श्रीपाल जब बारह वर्ष की विदेश यात्रा पर जाने लगा तो मैना सुन्दरी ने उसे अरिहन्त भगवान का स्मरण करने का ही परामर्श दिया था,

---

१. स्वामी गुणह तुम्हारा तणौ विस्तार, स्वर नर फणि नवि पावैं हो पार।
   ते किम जाय मैं वर्णया, स्वामी हौं मुरिख अति अपढ अयाण।
   ना मै हो दीठा जी ग्रथ पुराण, तर्क व्याकर्ण मै ना भण्या।
   स्वामी थोड़ी जी बुधि किम करो बखाण।।

२. जिणवर पूज पुण्य की खानि ।।श्रीपालरास।।५५।।

३. सिद्ध चक्र पूजा करी, हो रोग साग नवि व्यापैं काल ।।५७।।

हो सुन्दरि सील देइ सुणि कंत, नाम राखि जे मनि अरहंत।
सत्य वचन अरहंत का, हो गुरु वंदिज्यो महा निरगंथ।
सिद्ध चक्र व्रत सेविज्यो हो संजम गीत चालिज्यो पंथ ॥रास॥७५॥

श्रीपालरास जिन पूजा एवं भक्ति के सुफल का एक सुन्दर काव्य है।[1] काव्य मे कवि ने सम्यक्त्व की महिमा का विस्तृत वर्णन किया है तथा सम्यक्त्व को ही वैभव एवं ऐश्वर्य मिलने में मूल कारण बतलाया है।[2]

सुदर्शन रास में मंगलाचरण के रूप जो चौबीस तीर्थंकरों को वन्दना की गई है वह भक्तिरस से ओतप्रोत है। सेठ सुदर्शन को सूली से सिंहासन मिलना सेठ द्वारा भगवान की पूजा भक्ति आदि का स्पष्ट फल है। इसी तरह भविष्यदत्त चौपई मे भी आरम्भ में सभी तीर्थंकरों का स्मरण किया है। मदनद्वीप मे भविष्यदत्त को जिन मन्दिर क्या मिला मानों चिन्तामणि रत्न ही मिल गया। भविष्यदत्त ने पहिले पूर्ण मनोयोग ने जिनेंद्र स्तवन किया और फिर अपने कष्टो को दूर करने की प्रार्थना की।

जै जै स्वामी जग आधार, भव संसार उतारै पार
तुम छौ सरणा साधार, मुझ संसार उतारै पार
भूला पथ दिखावण हार, तुम छौ मुकती तणा दातार ॥१६॥

जिनेन्द्र भगवान की जो अष्ट द्रव्य से पूजा करता है उसके जन्म जन्मान्तर के दु ख स्वयमेव दूर हो जाते है[3]। पुष्पो के साथ पूजा करने से श्रावक जन्म का वास्तविक फल प्राप्त होता है[4]। इसी प्रकार कवि ने सभी आठ द्रव्यो के बारे मे कहा है।

भविष्यदत्त जब मदन द्वीप मे अकेला रह जाता है तो जिनेन्द्र स्तवन करके ही दुखो को भूल जाता है[3]। भविष्यदत्त की स्त्री जब गर्भवती हो जाती है तो उसके

---

१. हो आठ दिवस करि पूजा रची, गयो कोढ जिम अहि कंचुली।
कामदेव काया भइ हो अग रक्ष राजा सिरीपाल।
सिद्ध चक्र पूजा करि हो, रोग सोग न व्यापै काल॥

२ हो समिकित सहित पुत्र तुम आथि. इह विभूति आई तुम साथि॥

३ जाठ द्रव्य पूज्यै जिण थाइ, जन्म जन्म को दुख पुलाइ ॥११/४७

४. जिणवर चरण पहुप पूजिया, श्रावक जन्म तणा फल लिया॥

तिलकपुर जाकर चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की पूजा करने की इच्छा (दोहला) होती है[1]। हनुमन्त कथा में भी प्रारम्भ में चौबीस तीर्थंकरों को स्तुति के साथ स्थान-स्थान पर जिन भक्ति की प्रशंसा की गयी है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा से शुभ कर्म का बन्ध एवं अशुभ कर्म का क्षय होता है[2]। राजा महेन्द्र नंदीश्वर द्वीप जाकर जिनेन्द्र भगवान से निर्वाण पथ का पथिक बनने की प्रार्थना करता है।

> भगति बंदना तेरी करै, मुकती कामणी निश्चै वरै।
> नित उठि करै तुम्हारी सेव ताकौ पूजै सुरपति देव॥५१॥
> जिणवर मो परि करौ सनेह, कुगति कुशास्त्र निवारउ एह।
> श्रोर न कछू मांगौ तुम्ह पास, देहु स्वामि बैकुंठह बास ५२/७४

लेकिन ब्रह्म रायमल्ल की जिन भक्ति किसी संसारिक स्वार्थ के लिये नहीं है। और न ही उसने अपनी भक्ति के बदले में कुछ मांगा है। जिनेन्द्र भक्ति तो पुण्योत्पादक है और पुण्य के सहारे सभी विपत्तियां स्वयमेव दूर हो जाती है। अभाव प्राप्ति में बदल जाता है।

शृंगार परक वर्णन

जैन काव्यो का प्रमुख उद्देश्य पाठकों को विरक्ति की ओर ले जाने का रहा है इसलिए हिन्दी जैन काव्यों में प्रेम का पर्यवसान वैराग्य में होता है यद्यपि काव्यों के नायक एवं नायिका कुछ समय के लिये गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, युद्धों में विजय प्राप्त करते हैं, विदेश यात्राएं करते हैं तथा राज्य सुख भोगते हैं लेकिन अन्त मे वे तीर्थंकर अथवा मुनि की शरण में जाते हैं, उनका उपदेश सुनते हैं और अन्त मे संसार से उदासीन बन कर वैराग्य धारण कर लेते हैं। इसलिये जैन काव्यो का प्रमुख लक्ष्य न तो प्रेम दर्शन को अभिव्यक्त करना है और न दाम्पत्य प्रेम की महत्ता को काव्य का मुख्य विषय बनाना है। इन काव्यों में प्रेम विवाद और कठिनाइयों का चित्रण अवश्य मिलता है लेकिन अन्त में प्रेम की क्षणभंगुरता दिखला कर वैराग्य की प्रतिष्ठा की जाती है।

---

१. सोग सवै छाडिउ तहि बार. जिनवर चरण कियो जुहार।
गुणग्राम भास्या बहु भाइ, जहि थे पाप कर्म क्षो जाइ॥ १८/३०

२. स्वामी मेरौ ऐसो भाउ, असौ तिलक पुर पट्टणि जाउ।
आठ भेद पूजा विस्तरौ, जिणवर भवणि महीछौ करौ॥ २८/४८

२. कीजै पूज चरण जिनराइ, बंधै धर्म अशुभ क्षो जाइ॥ ३४/७२

लेकिन हिन्दी जैन काव्यों में श्रृंगार परक तत्व अथवा वर्णन मिलता ही नहीं हो ऐसी बात हम नहीं कह सकते। जैन कवि प्रसंगवश अपने काव्यो मे श्रृंगार का भी वर्णन करते हैं और कभी कभी उल्लेखनीय चुटकी लेते हैं। उनके काव्य संयोग वियोग श्रृंगार दोनो से ही युक्त होते हैं ब्रह्म रायमल्ल के सभी काव्यो मे श्रृंगार भावना का विकास देखा जा सकता है। कवि ने अपने प्रथम काव्य श्रीपालरास से लेकर अन्तिम रूपक काव्य परमहंस चौपई तक किसी न किसी रूप मे श्रृंगाररस का वर्णन किया है और मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। इससे एक ओर काव्यो मे सजीवता आयी है तो दूसरी ओर मानव पक्ष को प्रस्तुत करने मे भी वे दूर नहीं रहे हे

श्रीपालरास मे धवल सेठ रैणमजूषा के रूप एव लावण्य को देख कर उसके साथ भोग भोगने की तीव्र लालसा से अपने मन्त्री से निम्न शब्दों मे विचार व्यक्त करता है —

> हो रैण मजूसा सैवे कंत, धवल सेठ अति पोसै इत।
> नींद भूख तिरखा गइ, हो मत्री जोग्य कही सहु बात।
> सुन्दरि स्यौ मेलौ करौ, हो कंहीं मरो करो अपघात ॥२२॥

धवल सेठ की दूती भी रैणमजूषा को निम्न शब्दो मे उसे समझाने लगती है—

> भोग भोगउ मन तणा, हो मनुष्य जन्म संसारा आइ।
> खाजे पीजे विलसीजे, हो अवर जन्म की कही न जाइ ॥३३॥

पवनजय जब अजना के सौन्दर्य के बारे मे सुनता है ती वह कामातुर हो जाता है और अन्न एव जल का त्याग कर बैठता है।[1] पवनजय का अजना के साथ विवाह तो हो जाता है लेकिन १२ वर्ष तक एक दूसरे से अलग रहते है। एक रात्रि को जब वह चकवा चकवी के विरहालाप को सुनता है तो उसे भी अजना का स्मरण हो आता है और वह भी बिरहाकुल हो जाता है और अजना से मिलने के लिये तडफने लगता है।[2] ब्रह्म रायमल्ल ने कामातुरो का उस काव्य मे बहुत ही

---

१ पवनजय सुणि सुंदरि रुप, सुर कन्या थे अधिक अनूप।
काम बाण वेधियो सरीर, तजै तबोल अन्न अरु नीर ॥२॥

२ पवनजय सुनि पखणि बात, काम बाण तसु बेध्यो गात।
चिंता उपनी बहुत शरीर, रहे न चित्त एक क्षण धीर ॥४६॥

सुन्दर वर्णन किया है। कामी पुरुषों को अच्छा बुरा नहीं देखता। बड़े बड़े सुभट भी कातर दशा को प्राप्त हो जाते हैं। वह कामज्वर में उसी तरह जलने लगता है जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। उसे अन्न-जल जहर के समान लगने हैं और अपनी प्रियतमा की कथा ही उसे अच्छी लगती है। वह कभी मूर्छित हो जाता है और कभी उसका शरीर शोक संतप्त हो जाता है। उसका मन एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। वह अपने अंगों को मरोड़ता रहता है। कभी वह जंभाई लेता हैं तो कभी उसे नृत्य एवं संगीत सुनने की इच्छा होती है।[1]

बारह मासा वर्णन

अन्य जैन कवियो के समान ब्रह्म रायमल्ल ने भी राजुल के शब्दों में बारह मासा का वर्णन किया है। कवि का यह वर्णन काफी स्वाभाविक एवं प्राकृतिक काम दशा के अनुकूल है। उसका बारह मासा श्रावण मास से आरम्भ होता है।

श्रावण मास—श्रावण मास में घनघोर वर्षा होती हैं। मेघों की तीव्र गर्जना होती रहती है। मोर भी नाचने लगता है। ऐसी स्थिति मे राजुल नेमिनाथ से कहती है

पवन कुमार भणो तं क्षणी, सुनि हो मन्त्री वचह हम भणी।
चकई एक हि रात वियोग, भरै विलाप अधिक दुख सोग ॥५०॥
कहो अंजना किम जीवसी, छांडे भये वर्ष द्वादसी।
अति अपराध भयो है मोहि, मुझ समान मूरिख नही कोई ॥५१॥

१ जब कामी नैं व्यापै काम, जुगति अजुगति न जाणैं ठाम।
चित उपजै बहुत सरीर, कातर होइ सुभट वरवीर ॥३॥
कामणि रूप सुणै जे नाम, कामी चित्त रहैं नवि ठाम।
काम बाण पीडै त क्षणा, सास उसास लेइ अति घणा ॥४॥
काम ज्वर व्यापै तसु एह, वैस्वानर जिम दाझै देह।
घडी एक चित्त थिर नहि देइ, मौडै अंग जभाडी लेइ ॥५॥
जब कामी की होइ अवाज, विष सम छांडै पाणी नाज।
जाकै शरीर काम को वास, कामणि कथा सुहावै तास ॥६॥
कामनि कारजि हि तणो अंग, गीत नृत्य भावै तिण अग।
काम बाण जौ हणै शरीर, मूर्छा आइ पडै बर वीर ॥७॥
व्यापै काम करै नर पाप, उपजै देह सोग संताप।
दुख भुंजै रोवै नर जाम, जबहि आइ ऊपजै काम ॥८॥

कि उसके शरीर मे श्वास कैसे रह सकती है इसीलिए वह भी उन्ही के पास रहेगी।[1]

भाद्रपद मास—भाद्रपद मास मे भी खूब वर्षा होती है। नदी नालों मे खूब पानी बहता है। रात्रियां डरावनी लगती है। श्रावकगण इस मास में व्रत एवं पूजा करते हैं। ऐसे महिने में है राजुल अकेली कैसे रह सकती है ?[2]

आसोज मास—आसोज मास मे पीछे बरसने वाला पानी बरसता है। इस मास मे पुरुष एव स्त्री के टूटे हुये स्नेह भी जुड़ जाते हैं। दशराहे पर पुरुष और स्त्री भक्ति भाव से दूध दही और घृत की धारा से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं। लेकिन हे स्वामिन् आप मुझे क्यो दु ख दे रहे हो।

कार्तिक मास—कार्तिक मास पुरुष और स्त्री दोनों को उदीप्त करने वाला है। चारो ओर स्वच्छ जल भरा रहता है जो स्वादिष्ट लगता है। इस मास मे स्त्रिया अपना शृ गार करती है। इसी मास मे देवता भी सोकर उठ जाते है। जिनेन्द्र भगवान पूजा भी की जाती है। हे स्वामिन् हमे छोड़ कर क्यो दुख दे रहे हो।

मंगसिर मास-मंगसिर मास मे अपने पति के साथ मे पत्नी को यात्रा करनी चाहिये। चारो प्रकार के दान देने चाहिये। रात्रिया बड़ी होती हैं और दिन छोटे होते हैं राजुल नेमिनाथ से कह रही हैं कि उसका दुख कोई नही जानता है।

---

१ अहो सावरगडौ वरसै सुपियार, गाजै हो मेघ अति घोर धार।
असलस लावै जी मोरडा, अहो मेरी जी काया मै रहै न सासु।
नेमि सेथि राजल भणै, स्वामी छाडु हो नही जी तुम्हारौ जी पास ।।८५

२ अहो भादवडौ वरसै असमान, जे ताहो व्रत ते ता तणौ जी थान।
पूजा हो श्रावक जन रचौ, नदी हो नाला भ'रि चालै जी नीर।
दीसै जी राति डरावणी, स्वामी तुम्ह बिना कैसौं हो रहे जी सरीर।

अहो कातिग पुरिस तीया उदमाद रिमली पान पाणी घणा स्वाद।
करौ हो सिगार ते कामिनी, अहो उट्ठो जी देव जति तरणा जोग।
पूजा तो कीजै जी जिरण तणी, स्वामी हमकु जी दुख तुम्ह तणो जी विजोग ।।८८

अहो मागिसिरा इक कीजै जी जात, तीरथ परिसि जै कत कै साथि।
चहुं विधि दान दीजौ सदा, अहो राति बडी दिन बोछाजी होइ।
नेमि सेथी राजल भरणै, स्वामि मेरौ हो दुख न जाणै जी कोइ ।।८९।।

पोष मास — पोष मास में तीर्थंकरों के कल्याणक होने के कारण नर नारी पूजा करते हैं। मोतियों से चौक पूरा जाता है। स्त्रियाँ अपना शृंगार करके भक्ति-भाव से जिनेन्द्र की भक्ति करती हैं। लेकिन मुझे तो विधाता ने दु:ख ही दिया है।[1]

माघ मास — माघ मास में खूब पाला पड़ता है। इस कारण वृक्ष और पौधे बर्फ से जल जाते है तथा नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामिन् आपने तो मेरी चिन्ता किये बिना ही साधु-दीक्षा धारण कर ली। हे स्वामिन्! अब मुझ पर भी दया करो।[2]

फाल्गुन मास— फाल्गुण मास में पिछली सर्दी पड़ती है। बिना नेमि के यह पापी जीव निकलता ही नहीं है, क्योंकि दोनों में इतना अधिक मोह हो गया है। तीनों लोकों का सारभूत अष्टाह्निका पर्व भी इसी मास में आता है, जब देवतागण नंदीश्वर द्वीप जाते हैं।

फागुणि पडै हों पछेता सीउ, नेमि बिणा नीकसी पापी या जीव।
मोह हमारा तुम्ह तज्यो, अहो अत अष्टान्हिका त्रिभुवन सार।
दीप नंदिश्वर सुर करो, स्वामि हमस्यो जी ऐसी करि हो कुमारी।९२।

चैत्र मास — जब चैत्र के महीने में बसन्त ऋतु आती है तो वृद्धा स्त्री भी युवती बन कर गीत गाने लगती है। बन में सभी पक्षी क्रीड़ा करते रहते हैं, क्योंकि उन्हें चारों ओर सब फूल खिले हुए दिखते हैं। कोयल मधुर शब्द सुनाती रहती है इस प्रकार चैत्र मास पूरा मस्ती का महीना है। ऐसे महीने मे राजुल बिना नेमि के कैसे रह सकेगी।[3]

---

1. अहो पोस मै पोस कल्याणक होई, पूजा जी नारि रचै सहु कोई।
पूरै जी चौक मोत्यां तणा, अहो करै जी सिंगार गावै नरनारि।
भावना भगति जिनवर तणी, अहो हमको जी दु:ख दीन्हो करतारि।९०।

२. अहो माघ मांस घणा पडै जी तुसार, वनसपती दाझि सबै हुई छार।
चित्त हमारो थिर किम रहै, अहो तुम्ह तो जी जोग दिन्हो बन आइ।
मेरी चिन्ता जी परहरी, स्वामि दया हो कीजै अब जादौ जी राई।९१।

३. अहो चैत आवे जब मास बसंत, बूढी हो तरणी जी गावे हो गीत।
बन में जी पंख क्रीडा करे, अहो दीसै जी सब फूली वणराइ।
करो हो सबद अति कोकिला, अहो तुम्ह बिना किम रहै जादौ जी राय।९३।

वैसाख मास — वैसाख मास आने पर पुरुष और स्त्री में विविध भाव उत्पन्न होते हैं। वन में पक्षीगण क्रीडा करते हैं तथा स्त्रियां षट्रस व्यंजन तैयार करती हैं, लेकिन हे स्वामी ! आप तो घर-घर जाकर भिक्षा मागते हो। यह कंजूसी आपने कबसे सीख ली ?[१]

जेठ मास — सबसे अधिक गर्मी जेठ में पडती है। हे स्वामी ! घर में शीतल भोजन है, स्वर्ण के थाल हैं तथा पत्नि भक्तिपूर्वक खिलाने को तैयार है। घर में अपार सम्पत्ति है लेकिन पता नही आप दीन वचन कहते हुए घर-घर क्यों फिरते हैं। आप जैसे व्यक्ति को कौन भला कहेगा ?[२]

आषाढ मास —आषाढ आते ही पशु-पक्षी सब पर बना कर रहने लगते हैं तथा परदेश में रहने वाले घर आ जाते हैं, लेकिन आपने तो अपनी जिद् पकड़ ली है। आप पर मन्त्र-तन्त्र का भी कोई असर नही होता। इसलिए मेरी प्रार्थना अपने चित्त मे धारण करो।[3]

ब्रह्म रायमल्ल ने राजुल की व्यथा को बहुत ही संयत भाषा मे छन्दोबद्ध किया है। विरह-वेदना के साथ-साथ राजुल के शब्दों में कवि ने जो अन्य धार्मिक क्रियाओं का तथा नेमिनाथ की मुनि क्रिया का उल्लेख किया है उससे राजुल के कथन मे स्वाभाविकता आ गई है। अन्त मे राजुल नेमिनाथ से यही प्रार्थना करती है कि इस जन्म मे जो कुछ भोग भोगना है उन्हें भोग ही लेना चाहिए क्योंकि अगला जन्म किसने देखा है। वास्तव में जब घर मे खाने को खूब अन्न है तो लघन करके भूखो

---

१. अहो मासि वैसाख आवे जब नाहु, पुरिष तीया उपजै बहु भाउ।
वन में हो पखि क्रीडा करैं, अहो छह रस भोजन सुंदरि नारि।
भीख मागत घरि-धरि फिरैं, स्वामी योहु स्याणप तुम्ह कौण विचार।६४।

२. अहो जेठि मांसा अति तपति को काल, सीतल भोजन सोवन थाल।
करौ हो भगति अति कामिनी, अहो घर मैं जी संपदा बहुविधि होइ।
दीन वचन घरि घरि फिरैं, स्वामि ता नरस्यो भलौ कहै न कोई।६५।

३. अहो मास आसाढ आवै जब जाई, पसूहो पंखि रहै सब घर छाई।
परदेसी घरा गम करैं, अहो तुम्ह नै जीदई लगाई वाय।
मत्र तंत्रानवि ऊतजी, स्वामि बात चित मै धरौ जादो जी राई।६६।

मरने से तो उल्टा पाप लगता है। इसके अतिरिक्त उस तरह मरने का भी क्या अर्थ है जिसको कोई लकड़ी देने वाला ही नहीं।[1]

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों मे शृङ्गार रस की ओर भी चुटकियां ली है। रुक्मिणी जब नाग पूजा के लिए उद्यान में गयी तो वहीं नाग बिंब के पीछे ही कृष्ण जी बैठे हुए थे। दोनों के नेत्र से नेत्र मिलते ही एक-दूसरे में प्रेम हो गया।[2]

संभोग शृङ्गार

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों में संभोग शृङ्गार का भी अच्छा वर्णन किया है—

प्रद्युम्न की सुन्दरता पर कंचनमाला मुग्ध हो जाती है और उसके साथ अपनी काम पिपासा शान्त करना चाहती है तथा उसे महल में बुला कर निर्लज्ज बन कर सब कुछ करने की प्रार्थना करती है—

हो भणी मयणस्यो घोडो लाजो हो,
करि कुमार मन वांछित काजो।
हम सरि कामणि को नहीं जी।

ध्यान धरते हुए सेठ सुदर्शन को अभया रानी के महल में ले जाया जाता है। वहां अभया रानी विनयपूर्वक सेठ से संभोग की जिस तरह इच्छा प्रकट करती है वह तो लज्जा की सीमा को ही पार करना है। अभया रानी पहले तो राग-रग करती है और फिर सुदर्शन से इच्छानुसार काम-क्रीड़ा करने के लिए कहती है।

अहो आइ जी अभया जी, बैठी हो पासि, रंग का वचन अति कहै औवा सासि।
सफल जनम स्वामी तुम कीयो, अहो अब हम उपरी कीजे हो भाउ।
सुख मन वांछित भोगऊ, स्वामी माणस जनम की लीजे हो लाहु।१२३।

---

१. अहो असा जी बाराह मास कुमार रिति रिति भोग कीजै अतिसार।
आवता जन्म को को गिणै, अहो घर मैं जी नाज लावानें जी होय।
पांपि लांघण करि मरी, स्वामि मुवा थे लाकडी देई न कोई।६७।
—नेमीश्वररास

२. हो सुणी बात हसि त खिणा उठिउ नेत्र नेत्रस्यो मिलि गया जी।४३।
—प्रद्युम्नरास

इसी प्रकार के और भी प्रसंग ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों में मिलते हैं। यद्यपि जैन हिन्दी काव्यों का प्रमुख उद्देश्य शृङ्गार रस का वर्णन करना नहीं रहा है और उन्होंने अपने काव्यों में उसे विशेष महत्त्व भी नहीं दिया है किन्तु प्रसंगवश संयत शब्दों में शृंगार रस का वर्णन यत्र-तत्र अवश्य मिलता है।

वीर रस वर्णन

हिन्दी जैन काव्य शान्त रस प्रधान है। उनके नायक एवं नायिका युद्ध से सदैव बचने का प्रयास करते हैं। यद्यपि श्रीपाल, नेमिनाथ, राजुल, हनुमान सभी क्षत्रिय कुमार हैं तथा नेमिनाथ के अतिरिक्त वे शासन भी करते हैं लेकिन वे युद्ध-प्रिय नहीं होते हुए भी युद्ध से घबरा कर भागते नहीं है और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध का सहारा भी लेते हैं। इन काव्यों मे ऐसे प्रसंग कितने ही स्थान पर आते हैं जहाँ कवि को युद्ध का वर्णन करना पड़ता है। भविष्यदत्त तो श्रेष्ठि पुत्र होने पर भी युद्ध में विजय प्राप्त करता है।

युद्ध के सबसे अधिक प्रसंग प्रद्युम्न के जीवन में आते हैं लेकिन प्रत्येक बार ही निर्णायक युद्ध होने के पूर्व ही शान्ति हो जाती है। लेकिन उससे प्रद्युम्न के युद्ध कौशल अथवा वीरता पर कोई आंच नहीं आती। वह अपने शत्रु को उसी प्रकार ललकारता है तथा युद्ध की तैयारी करता है। प्रद्युम्न तो अपने पिता श्रीकृष्ण जी से भी युद्ध भूमि में ही अपनी वीरता दिखाने के पश्चात् मिलता है। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण सहित बलराम और पाँचों पाण्डवों को जिन शब्दों में युद्ध के लिये ललकारता है वे वीर रस से ओत-प्रोत हैं—

हो अरजन कहै धनष धरा ए, हो तैहि वैराटि छुडाई गाए।
जै बल छे तो आई ज्यो जी, हो भीम मल्ल तुम्ह बड़ा झुझारो।
रूपिणि बाहर लागि ज्यो जी, हो कै रालि घौ गदा हथियारो।६१।
हो निकुल कुम्भ सोभै तुम्ह हाथे, हो कहि ज्यो बली पाडवां साथे।
अब बल देखो तुम्ह तणो जी, हो सहदेव ज्योतिग जाणै सारो।
कहि रूपिणि किम छुटी सो जी, हो इहि ज्योतिग को करहु विचारो।

प्रद्युम्न केवल शत्रु को लड़ाई के लिये ललकारता ही नहीं है किन्तु घनघोर युद्ध के लिये भी अपने आपको प्रस्तुत करता है—

बिद्या बल सहु संजोईया जी, हो पहिली चोट पयावां आई।
पाछै घोडा वालीया जी, हो रूंड मुंड अति भई लडाई।७३।

हो असवारां मारै असवारो, हो रथ सेथी रथ जुड़ै भुभारी।
हस्ती स्यो हस्ती भिडै जी, हो घणो कह्यो ता होई विस्तारी।७४।

—प्रद्युम्नरास

श्रीपाल को भी राज्य प्राप्ति के लिए अपने ही काका वीरदमन से युद्ध का सहारा लेना पड़ता है। दोनों ओर से युद्ध की तैयारी होती है उसी का एक वर्णन देखिए—

हो भाडि माँनियो रण संग्राम, आयो कोडी भड के काम।
वात पाछिली सहु कही, हो सिधूडा वाजिया निसाण।
सूर किरणि सूझै नहीं हो उडी खेय लागी असमान।५७।

हो घोडा भूमि खणै खुरताल, हो वाजिंकि उलटिउ मेघ अकाल।
रथ हस्ती बहु साजती, हो बहूं पक्ष की सेना चली।
सुभट संजोग संभालिया, हो अणी बुहूं राजा की मिली।५८।

भविष्यदत्त तो श्रेष्ठि पुत्र था। लेकिन उसकी स्त्री को ही समर्पित करने के लिए पोदनपुर के राजा के दूत ने जब जोर दिया तो युद्ध के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। भविष्यदत्त स्वय रणभूमि में उतरा और युद्ध में विजय प्राप्त की। इस युद्ध का एक वर्णन निम्न प्रकार है—

बात र बहुत भाजि दी पीठि, दंति तिणी ले छूटो मीठि।
एक सुभट रण आयो सरे, तूटो सिर ठाडो धड फिरै।९२।
एक सुभट कै इहै सुभाउ, भागा ओग न घालै घाउ।
उडै आंधी अधिक असमान, भइ रणो हा गिध मसाण।९३।

ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों के सभी नायक वीर हैं। लेकिन क्षमा, धर्म उनके जीवन मे उतरा हुआ होता है। श्रीपाल भी समुद्री चोरों को बिना दण्ड दिये ही छोड़ देता है जो उसके दया-भाव उदाहरण है—

हो छोड्या चोर विनौ बहु कीयो, दया भाउ करि भोजन दीयो।
मन वच काय क्षमा करी हो हाथ जोडि बोल्या सहु चोर।
तुम समान उत्तम नहीं, हो हम पापी लोभी घण घोर।९२।

प्रकृति वर्णन

जैन कवियों को प्रकृति वर्णन सदा अभीष्ट रहा है । महाकवि रल्ह ने अपने जिनदत्तचरित मे स्थान-स्थान पर वृक्ष, लता एवं पुष्पों का बहुत ही उत्तम वर्णन किया है । ब्रह्म रायमल्ल ने भी अपने काव्यों मे अवसर मिलते ही प्रकृति का जो चित्रण किया है उससे काव्य की महत्ता में तो वृद्धि हुई ही है साथ ही वह कवि के विशाल ज्ञान का भी परिचायक है । कवि ने जिन काव्यो मे प्रकृति चित्रण किया है उनमें भविष्यदत्त चौपई एवं हनुमत कथा ये दो प्रमुख काव्य हैं ।

विद्याधरो के देश आदितपुर के चारो ओर घना जगल था । विविध प्रकार के वृक्ष थे । नदी और सरोवर थे जिनमे कमल खिले हुए थे । कुवे और बावडियां थीं जो जल से ओत-प्रोत थी । कवि ने कितने ही वृक्षों के नाम गिनाये हैं जो उस नगर की शोभा बढाते थे ।

> बन की सोभा अधिक विस्तार, राइ रिणमहु बातो दूचार ।
> बील कबहु धौकै थकरीर, नीब कं बगुल बणि गहीर ।४।
>
> सालरि खैरवास काविडा, सीसौं सागवान हरडा ।
> कर्प्पर ग्रामण वेर सुचंग, नींबू, जांबू अर मातलिंग ।५।
>
> अमृतफल कटहल बहु केलि, मंडप चढो दाख की केली ।
> दार हरद आवला पतंग, खोच मोच नारिंग सुरंग ।६।
>
> धोल, सुपारी कमरख धणी, निंब जां आबां फण संचिचिणी ।
> मिरी बिदाम लौंग अखरोट बहुत जायफल फली समोट ।७।
> कुंजो मरवौ साटौ जाइ, बेलि सिहालो चंपौ राइ ।
>
> जुही पाडल बोलश्री कंद, चंबीलीक नयर सुचकंद ।८।
>
> सिरकद करणी कर बीर, चंदन अगर तह बाल गहीर ।
> केतकी केवडौ बड़ौ सुगध, भमर बास रमहि अति अध ।९।

अंजना को गर्भ रहने पर उसकी सास ने घर से निकाल दिया । पिता के घर गयी लेकिन वहाँ भी उसे सहारा नहीं मिला । अन्त मे उसने वन की राह ली । जो

अत्यधिक डरावना था। कवि ने उसका सुन्दर वर्णन किया है। कुछ पंक्तियां निम्न प्रकार हैं—

वन अति अधिक महा भैभीत, सावज सिंघ बसै परीत।
चीता रींछ स्याल सूकरी, ता वन मैं पहुंती सुन्दरी।१४। ६०॥

—हनुमन्त कथा

कवि ने लंका में सीता के चारों ओर जो सुरम्य उद्यान था उसका वर्णन भी विभिन्न वृक्षों एवं फल-फूलों के नाम देकर किया है—

नंदन वन देख्यो थ्योपाइ, फुलित फुलिति भई बनराइ।
कदली चोंच श्रांव नारिंग, दाख छुहारी मामतु लिंग।
कमरख कटहल कैथ अनार, लोंग बिदाम सुपारी चार।१५।

कुंजो मरवो जूही जाइ, केतको महुवो महकाइ।
पाडल बकुल बेलि सेवती, वन सोभा दीसे बहु भंती।१६।

वन मे केवल वनस्पति ही नहीं होती वहां वन जीव भी होते हैं। महाकवि ने भविष्यदत्त चौपई में इसी का एक वर्णन निम्न प्रकार किया है—

वन मै भीत अधिक असराल, सुवर संबर रोझनिमाल।
चीता सिंघ वहाडा घणा, बांदर रींछ महिष माकणा।१२४।

हस्ती जुथ फिरैं असराल, सारदूल अष्टापद बाल।
अजगर सर्प हरण संचरै, भवसवंत तिहि वन में फिरै।१२५।

भविष्यदत्त ने बन मे जाकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा एव वदना की। कवि ने उस पूजा के लिए जो अष्ट मगल द्रव्यों के नाम गिनाये हैं उनमे प्राकृतिक बर्णन मे बहुत साम्यता है।

इस प्रकार और भी ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों में प्राकृतिक वर्णन हुआ है। जिससे काव्यों में स्वाभाविकता एवं सुन्दरता आयी है।[1]

---

१. घणी कहो तो होइ विस्तार, जाति लाख दश वनस्पति सार।

राजनैतिक स्थिति

ब्रह्म रायमल्ल के जीवन का उत्कर्ष काल संवत् १६०१ से १६४० तक रहा। इस अवधि मे देश की राजनैतिक स्थिति में बराबर परिवर्तन होता रहा। इन ४० वर्षों में देहली के शासन पर एक के बाद दूसरे बादशाह होते गये। कुछ बादशाहो की तो स्वतः ही मृत्यु हो गयी और कुछ को युद्ध में पराजित होना पड़ा। प्रारम्भ के १२ वर्षों मे शेरशाह सूरि एव सलीमशाह सूरि का शासन तो फिर भी स्थिर रहा लेकिन उसके पश्चात् देश में अराजकता फैल गयी। सूरि वश का अन्त, हैमू का उदय एवं अस्त, हुमायु द्वारा दिल्ली पर पुनः विजय एवं कुछ ही समय पश्चात् उसकी मृत्यु जैसी घटनाएँ घटती गयीं और देश में अराजकता के अतिरिक्त स्थायी शासन स्थापित नही हो सका। संवत् १६१३ (सन् १५५६) में अकबर देहली के सिंहासन पर बैठा लेकिन उसने भी अपने आपको मुसीबतों से घिरा पाया। चारो ओर अशांति थी। छोटे-छोटे शासन स्थापित हो रहे थे और उनमे भी परस्पर युद्ध हुआ करते थे। बादशाह अकबर ने देश मे स्थिर एवं सशक्त शासन स्थापित करने में सफलता प्राप्त की और वह दीर्घ काल तक देश के बड़े भाग पर शासन करता रहा।

राजस्थान के मेवाड़ के अतिरिक्त सभी राजाओ से अकबर ने मधुर संबध स्थापित किये। सर्वप्रथम उसने आमेर के तत्कालीन राजा भारमल्ल से मित्रता स्थापित की और उसे पांच हजारी का मनसब का पद दिया। भारमल्ल के पश्चात् राजा भगवन्तदास (१५७४–१५८६) आमेर के शासक बने। उनका भी मुगल दरबार से घनिष्ट सबध रहा। ब्रह्म रायमल्ल ने राजा भगवन्त के शासन का अपने काव्य 'भविष्यदत्त चौपई' मे उल्लेख किया है। कवि उस समय सांगानेर मे थे जहां परस्पर मे पूर्ण सद्भाव एव व्यापारिक स्मृद्धि थी। वहा बहुत बड़ी जैन बस्ती थी। ढूँढार प्रदेश के अन्य नगरों मे भी शाति थी। जब कवि टोडारायसिंह, झुंझुनू, रणथम्भौर. सांभर एवं धोलपुर गये तो वहा भी कवि को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नही करना पडा। कवि ने झुंझनू के शासक के नाम का उल्लेख नही किया तथा सांभर के शासक का नाम भी नही लिखा जिससे मालूम पड़ता है कि वे दोनों ही नगर के सामान्य शासक थे।

स्वय कवि ने अपने काव्यों में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के बारे मे कोई विशेष उल्लेख तो नही किया जिससे यह तो कहा जा सकता है कि स्वय कवि को किसी विशेष अराजकता अथवा दमन का सामना नही करना पड़ा तथा वे जहां भी जाते रहे उन्हें शान्त एव धार्मिक वातावरण मिलता रहा।

कवि ने अपनी कृतियों में जिन-जिन शासकों का नामोल्लेख किया है वे हैं सम्राट अकबर, राजा भगवन्तदास एवं राजा जगन्नाथ।

सम्राट अकबर

देश के मध्यकालीन इतिहास में सम्राट अकबर का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। वह एक शक्तिशाली एवं दृढ़ विस्तारवादी शासक था। उसने उदार नीति अपना कर हिन्दुओं का हृदय जीतने का प्रयास किया। और उसे पूर्ण सफलता भी मिली। वह सभी धर्मों का आदर करता था इसलिये उसने हिन्दुओ पर लगने वाला तीर्थ-यात्री कर एवं जजिया कर समाप्त करने की घोषणा करके देश में लोकप्रियता प्राप्त की। वह समय-समय धार्मिक सन्तों की विचार गोष्ठियां आमन्त्रित करता था और उनके प्रवचन सुनता था। जैनाचार्य हीरविजयसूरि, विजयसेनसूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय भ० जिनचन्द्र एव तत्कालीन अन्य भट्टारकों ने अकबर को जैन धर्म के सिद्धान्तों की ओर आकर्षित किया। जैनाचार्यों के प्रभाव से उसने पिंजड़े में बन्द पक्षियों को मुक्त कर दिया एवं शिकार खेलने पर पाबन्दी लगादी तथा स्वयं ने मांस खाना भी बन्द कर दिया।[1] महाकवि बनारसीदास तो अकबर से इतने प्रभावित थे कि जब उन्होंने अकबर की मृत्यु के समाचार सुने तो वे एक दम बेहोश हो गये।[2] ब्रह्म रायमल्ल ने श्रीपाल रास में सवत् १६३० (सन् १५७३) के सम्राट अकबर के शासन का उल्लेख करके रणथम्भौर की सुख शान्ति का वर्णन किया है।[3] पाण्डे जिनदास ने भी अपने जम्बूस्वामी चरित मे अकबर के सुशासन का उल्लेख किया है।[4]

राजा भगवन्तदास

राजा भगवन्तदास आमेर के संवत् १६३१ से १६४६ तक शासक रहे। ये अकबर बादशाह के विश्वास एव कृपापात्र शासको मे से थे। राजा भगवन्तदास संवत् १६३९ से १६४६ तक पंजाब के गवर्नर रहे और लाहौर में ही उनकी मृत्यु हो गयी। इनके १५ वर्ष के शासनकाल में ढूंढाड प्रदेश में जैन साहित्य एव जैन संस्कृति को शासन की ओर से अत्यधिक प्रश्रय मिला। उस समय प्रदेश मे भट्टारकों का पूर्ण प्रभाव था। चम्पावती (चाटसू) मे संवत् १६३२ मे जब नरसेन कृत श्रीपालचरित की

---

१. अकबर महान, पृष्ठ सख्या २००
२. अर्ध कथानक
३. श्रीपाल रास—अन्तिम प्रशस्ति
४. प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ संख्या २१३

पाण्डुलिपि हुई थी तो चन्द्रकीर्ति उस समय भट्टारक थे ।[1] इस ग्रन्थ की पार्श्वनाथ के मन्दिर मे प्रतिलिपि हुई थी । लिपिकार ने प्रशस्ति में राजा भगवन्तदास एवं भट्टारक चन्द्रकीर्ति दोनों का उल्लेख किया है । इसके एक वर्ष पश्चात् ही मालपुरा ग्राम में जयमित्रहल के वर्द्धमान काव्य (अपभ्रंश) की प्रतिलिपि हुई थी । वहाँ श्रावकों की अच्छी बस्ती थी ।[2]

ब्रह्म रायमल्ल ने जब सागानेर मे प्रवास किया तो उस समय राजा भगवन्तदास ही वहाँ के शासक थे । सागानेर उस समय व्यापार की दृष्टि से पूर्ण समृद्ध नगर था । सभी तरह का व्यापार था तथा नगर मे सुख शान्ति व्याप्त थी । निर्धन एव दुखी समाज को शासन की ओर से सहायता मिलती थी ।[3] संवत् १६३५ में मालपुरा ग्राम में "द्रव्य सग्रह वृत्ति" ग्रन्थ की प्रतिलिपि की गयी थी । प्रतिलिपि करने वाले साह कर्मा गगवाल ने लिखा है कि उस समय यद्यपि भगवन्तदास राजा थे लेकिन मानसिंह ही उनकी ओर से राज्य का शासन चलाते थे ।[4]

राजा जगन्नाथ राव

राजा जगन्नाथ टोडारायसिंह एवं रणथम्भौर के शासक थे । ये आमेर के कछावा शासको मे से थे । बादशाह अकबर की इन पर पूर्ण कृपा थी । इन्होंने महाराणा प्रताप के विरुद्ध कितने ही युद्धो मे भाग लिया था ।

ब्रह्म रायमल्ल अपनी राजस्थान विहार के अन्तिम चरण में संवत् १६३६ में टोडारायसिंह पहुँचा था । यहीं पर महाकवि ने परमहंस चौपई की रचना की थी । प्रस्तुत चौपई उनकी अन्तिम रचना है । महाकवि ने टोडारायसिंह का जैसा वर्णन किया है उससे पता चलता है कि राजा जगन्नाथ वीर एवं प्रतापी शासक थे तथा दान देने में वे जरा भी कंजूसी नही करते थे ।[5] राजा जगन्नाथ के शासन काल में ही टोडारायसिंह नगर के आदिनाथ चैत्यालय मे पुष्पदन्त के आदिपुराण की प्रतिलिपि की गयी थी ।[6] जो भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति को भेंट देने के लिये लिखी गयी थी ।

---

१. प्रशस्ति सग्रह–पृष्ठ संख्या १७८
२. वही, पृष्ठ संख्या १७०
३. परजा लोग सुखी सुखी सुख, दुखी दलिद्री पुरवै आस ।
४. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ सख्या ३४
५. राज करै राजा जगन्नाथ, दान देत न खींचे हाथ ।
६. प्रशस्ति सग्रह–डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ ८९

राजा जगन्नाथ के नाम का उल्लेख करने वाली राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में आज भी पचासों ग्रन्थ सुरक्षित रखे हुये हैं।

सामाजिक स्थिति

सामाजिक दृष्टि से ब्रह्म रायमल्ल का समय अत्यधिक अस्थिर था देश में मुस्लिम शासन होने तथा धार्मिक विद्वेषता को लिये हुये होने के कारण सामाज की स्थिति भी सामान्य नहीं थी। समाज पर भट्टारको का प्रभाव व्याप्त था और धार्मिक एवं साहित्यिक क्षेत्र मे उन्हीं का निर्देश चलता था। देहली के भट्टारक पट्ट पर भट्टारक धर्मचन्द्र (१५८१-१६०३) भट्टारक ललित कीर्ति एवं भट्टारक चन्द्रकीर्ति विराजमान थे। महाकवि का सम्बन्ध यद्यपि भट्टारकों से अधिक रहा होगा लेकिन उन्होंने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही बनाये रखा।

ब्रह्म रायमल्ल के समय मे विवाह आदि अवसरों पर बड़ी-बड़ी जीमनवार होती थी। कवि ने ऐसी ही जीमनवारो का प्रद्युम्न रास, भविष्यदत्त चौपई एवं श्रीपाल रास मे वर्णन किया है। जब प्रद्युम्न सत्यभामा के घर गया तो वहां भानुकुमार के विवाह का जीमन हो रहा था।

हो सति भामा घरि गयो कुमारो, भानु कुमार ब्याहु ज्योणारो ॥ ४४ । ६३ ।

भविष्यदत्त जब बन्धुदत्त से वापिस आकर मिला तब भी मिलन की खुशी में भविष्यदत्त ने जहाज के सभी वणिक पुत्रों को सामूहिक भोजन दिया था।

बाण्या सहित करी ज्यौणार, पान सुपारी वस्त्र अपार ॥ ४४ । २६ ।

कवि ने उस समय के कुछ स्वादिष्ट व्यंजनों के नाम भी गिनाये हैं। ये सभी स्वादिष्ट भोजन कहलाते थे और उसके खाने के पश्चात् तृप्ति हो जाती थी।

घेवर पचधारी लापसी, जहि नै जीमत अति मन खुसी।
उजलं बहुत मिठाई भली, जहि ने जीमन अति निरमली ॥६३॥

खाय तोरइ विजन भांति, मेल्या बहुत राइता जाति।
मूंग मंगोरा खानि दालि, भात पकस्यो सुगधी सालि ॥६४॥

सुरहि घ्रित महा निरदोष, जिमत होइ बहुत संतोष।
सिखरणि दही घोल बहु खीर, अचवंत जिमो बरवीर ॥६५।१४॥

श्रीपाल भी जब रैणमंजूषा का विवाह करके अपने जहाज पर आया था तो उसने भी सभी को जिमाया था—

हे बिउहर मध्य भयो जैकार, सिरीपाल दीनी ज्यौणार ।।११३।१७।।

उस समय भी बरातें सज-धज के साथ चढ़ती थी। बराती लोग आंखों में कज्जल मुख में पान, केशर चंदन एवं कुंकम के तिलक लगाकर निकलते थे। बरात कभी-कभी एक-एक महिने तक रूकती थी।[1] दुल्हा सेहरा लगाते, गले में मोतियों की माला पहिनते।[2] कानों और हाथो में कुण्डल पहिनते। महाकवि ब्रह्म रायमल्ल ने श्रीपाल रास, प्रद्युम्नरास, हनुमन्त कथा, भविष्यदत्त चौपई एवं नेमीश्वररास सभी काव्यों मे एक से अधिक बार विवाह विधि का वर्णन किया है। सभी में प्राय: एक सा वर्णन हुआ है। उसके अनुसार ब्राह्मण फेरे कराया करते थे। अग्नि, ब्राह्मण एवं समाज की साक्षी में विवाह लग्न सम्पन्न होता था। श्रीपालरास में इसी तरह का वर्णन निम्न प्रकार है—

हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ, कन्या केरो लगन लिखाइ।
मण्डप वेदी सुभ रची, हो अंब पत्र की बंधी माल ।।
कनक कलस चहुं दिसी बण्या, हो छाए निर्मल वस्त्र विसाल ।।१६४।।

हो गावै गीत तिया करि कोड, वस्त्र पटंबर बंधे मोड।
फूलमल सोभा घणी हो, चोवा चंदन वास चहोडि ।।
वेदो विप्र बुलाइयो हो, वर कन्या बैठा करि जोडि ।।१६५।।

हो भावरि सात फिरिउ चहुं वाधि, भयो विवाहु अग्नि दे साखि।
राजा दीमों डाइजो हो कन्या हस्ति कनक के काज।
देस ग्राम दीना घणा हो, विनती करि दीनो बहुमान ।।१६६।।

—श्रीपाल रास

राजघराने के विवाह के अतिरिक्त सामान्य नागरिकों के यहाँ भी विवाह उसी तरह धूमधाम से सम्पन्न होते थे। दहेज देने की प्रथा उस समय भी खूब प्रचलित

---

१. हो मास एक तहा रही बरातो, भोजन भगति करी घणा जी ।।८३।।
२. अहो चढियो जी व्याहण सिव देवि हो बाल, सोभा जी सेहुरो मोत्यां जी माल।
काना जी कुंडल जगमगै, अहो मुकट बण्यौ हीरा जी लाल ।।नेमीश्वररास।।

थी। धनपति और कमलश्री के विवाह का वर्णन भी इसी प्रकार का है—

सेठ्ठि बात मन में चितवई, पुत्री धनपति जोगी व दई ।।
मण्डप वेदी रच्या विसाल, तोरण बंध्या मोती माल ।।२७।।

वहु पक्ष बहु मंगलचार, कामिनि गावे गीत सुचार ।
वर कन्या कीन्हो सिंगार, चोवा चंदन वस्त्र अपार ।।२८।।

बाजै तिया करै बहु कोड, वर कन्या के बांध्यो मोड ।
वेदी मंडप विप्र आइयो, वर कन्या हथलेवो दियो ।।

दुवै पक्ष नर बैठ्ठा वासि, भयो विवाह अग्नि दे साखि ।।
पुत्री वरमैं दिन्हौ मान, कंचन वस्त्र माल समान ।।२९।।

समाज में शिक्षा का प्रचार था। सात वर्ष के बालक को पढने भेज दिया जाता था। भविष्यदत्त चौपई में सात वर्ष के भविष्यदत्त को पढने भेजने के लिया लिखा है।[1] जैन समाज व्यापारिक समाज था। वह राज्य सेवा मे जाने की अपेक्षा व्यापार करना अधिक पसन्द करता था। २० वर्ष से भी कम आयु के नवयुवक व्यापारी देश एवं विदेश में व्यापार के लिये निकल जाते थे। वे समूहों में जाते। बंधुदत्त एवं धवल सेठ के काफिले में सैकड़ों व्यापारी नवयुवक थे।[2]

दहेज

विवाह में कन्या पक्ष की ओर से दहेज देने की प्रथा थी। दहेज को 'डाइजा' कहा जाता था। श्रीपाल, भविष्यदत्त, पवनंजय सभी को दहेज में अपार सम्पत्ति मिली थी। दहेज में हाथी, घोड़ा, स्वर्ण, वस्त्राभूषण, दास, दासी और कभी-कभी आधा राज्य भी दे दिया जाता था। लेकिन यह सब स्वतः ही दिया जाता था। वर पक्ष की ओर से कोई माँग नहीं होती थी। यह अवश्य है कि उस समय भी माता-पिता को अपनी लड़की के लिये अच्छे वर प्राप्त करने की चिन्ता रहती थी। अंजना

---

१. बालक सात वर्ष को भयो, पंडित आगं पढणी दियो। —भविष्यदत्त चौपई।

२. अस्व हस्ती बहु डाइजो हो, वस्त्र पटंबर बहु आभर्ण ।
दासी दास दीया घणा हो, मणि माणिक्य जड़्या सोवर्ण। श्रीपाल रास

के विवाह की उसके पिता को बहुत चिन्ता थी इसके लिये उसने अन्न जल और पान, भी छोड़ दिये थे।

चिन्ता अधिक भई सरीर, तज्या तंबोल अन्न अरु नीर।
राज कुंवार देखे सब तेहि, बात विचारन आवै कोइ ।।५४।७४।

कभी-कभी वर के चयन के लिये राजा लोग अपने मंत्रियों की सलाह लिया करते थे और उनमे से किसी एक वर के साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया करते थे। अंजना के लिये पवनंजय का चयन आदित्यपुर के राजा महेन्द्र द्वारा इसी प्रकार से किया गया था।[1]

भट्टाचारकों का प्रभुत्व

समाज पर भट्टारकों का पूर्ण प्रभाव था। उत्सव, विधान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह, व्रतोद्यापन आदि के सम्पन्न कराने मे उनका प्रमुख योगदान रहता। इन समारोहो मे या तो वे स्वयं ही सम्माननीय आध्यात्मिक सन्त के रूप मे सम्मिलित होते या फिर उन्ही के नाम से समारोह का आयोजन रहता था। भट्टारको के अतिरिक्त संघ की प्रमुख साधुओ मे मंडलाचार्य, ब्रह्मचारी आदि के नाम प्रमुख हैं। ने सभी ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने का काम भी करते थे। सवत् १६३० अषाढ़ सुदी २ सोमवार को ब्रह्म रायमल्ल को भट्टारक सकलकीर्ति विरचित यशोधर चरित्र की पाण्डुलिपि भेंट की गयी थी। भेटकर्त्ता थे ठाकुरसी एव उनकी धर्मपत्नी लखण।[2] राजस्थान मे भट्टारक चन्द्रकीर्ति संवत् १६२२ से १६६२ तक भट्टारक रहे। ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक चन्द्रकीर्ति समकालीन थे।

लेकिन व्रत उपवास एव प्रतिष्ठा विधान के अतिरिक्त समाज मे आध्यात्मिक साहित्य की भी माँग हाने लगी थी। राजस्थान मे ढूंढाड प्रदेश और उसमें भी

---

१. सत्यंजय मत्री इम कहै, उहि नै पुत्रो दीजै नही।
राजा बात सुनौ हम तणी, वर उत्तम मो जोग्य अंजनी।
आदितपुर सोभै सुभमाल, कहै राज प्रहलाद भोवाल।
रानी केतमती घर भली, इन्द्र सरीसा जोडी मिली।
पवनंजय तसु बडड कुमार, धर्म्मवत गुण समुद्र अपार।
कांति दिवाकर सोभै देह, सोलह बरना चन्द्रमुख ।।

२. प्रशस्ति संग्रह--सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ ५३

बैराठ एवं सांगानेर एवं टोडारायसिंह तथा उत्तर प्रदेश में आगरा इसके प्रमुख केन्द्र थे। समयसार एवं प्रवचन सार जैसे ग्रन्थों के स्वाध्याय की ओर लोगों की रुचि उत्पन्न हो रही थी। बैराठ में पं० राजमल्ल ने समयसार पर टीका लिखने के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल ने परमहंस चौपाई की रचना आध्यात्मिक भावना की प्रचार प्रसार की दृष्टि से की थी।

भट्टारकों के प्रोत्साहन के कारण राजस्थान में प्रतिवर्ष कहीं न कहीं बिम्ब प्रतिष्ठा समारोहों का आयोजन होता रहता था। संवत् १६०१ से १६४० तक राजस्थान में तीस से भी अधिक बिम्ब प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई। इन समारोहों के दो लाभ थे। एक तो समूची समाज के कार्यकर्त्ताओं, विद्वानों, साधु सन्तों एवं श्रावक-श्राविकाओं का परस्पर मिलना हो जाता था। एवं नव मन्दिरों का निर्माण कराया जाता था। यह इस बात का संकेत है कि आम जनता में ऐसे समारोहों के प्रति कितनी रुचि एवं श्रद्धा थी। समाज में प्रतिष्ठा कराने वालों का विशेष सम्मान होता था। इसके अतिरिक्त ग्रन्थों की प्रतिलिपि कराने की श्रावकों में अच्छी लगन थी। संवत् १६०१ से १६४० तक के लिखे हुये सैकड़ों ग्रन्थ राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में आज भी संग्रहीत हैं। ग्रन्थों की स्वाध्याय करने वालों, प्रतिलिपि कराने वालों अथवा स्वयं करने वालों की ग्रन्थों के अन्त में प्रशंसा की जाती थी।[1]

प्रमुख जैन जातियां

ब्रह्म रायमल्ल के समय में ढूंढाड प्रदेश में खण्डेलवाल एवं अग्रवाल जैन जातियों की प्रमुखता थी। सांगानेर, रणथम्भौर, सांभर, टोडारायसिंह, धौलपुर जैसे नगर इन्हीं जाति विशेष जैन समाज से परिपूर्ण थे। लेकिन देहली, रणथम्भौर, सांभर जैसे नगर खण्डेलवाल जैन समाज के लिये एवं देहली एवं झुंझुनु अग्रवाल जैन समाज के केन्द्र थे। स्वयं कवि ने न तो अपनी जाति के बारे में कुछ लिखा और न किसी जाति विशेष की प्रशंसा ही की। हनुमंत कथा में कवि ने श्रावकों के सम्बन्ध में जो वर्णन दिया है वह तत्कालीन समाज का द्योतक है—

श्रावक लोक बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरिहंत।
उपरा ऊपरी बसं न कास, जिम अमरेंद्र स्वर्ग सुखवास।

---

१. लिहइ लिहावइ, पढइ पढावइ।
जो मणि भावइ, सो णरू पावइ।
बहुणिय थणइय, सासय सेपय ॥

ठोड़-ठोड़ बहु कथा पुराण, ठाम-ठाम छै माही जाण ।
ठाम-ठाम दीजै बहु, दान देव शास्त्र गुर राखै माण ॥२१॥

धार्मिक तत्व

जैन काव्यो का प्रमुख उद्देश्य जीवन निर्माण का रहा है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है इसलिये निर्वाण प्राप्ति मे जो साधन है उनका भी वर्णन रहना इन काव्यों की एक विशेषता रही है। जब तक मानव धार्मिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से समुन्नत नहीं होगा तब तक वह दिशा विहीन होकर इधर उधर भटकता रहेगा। यही कारण है कि अधिकांश जैन विद्वानों ने अपनी अपनी कृतियों में फिर चाहे वह किसी भी भाषा में निबद्ध क्यों न हो, जैन सिद्धान्त का वर्णन किया है और नायक नायिका के जीवन में उन्हे पूर्ण रूप से उतारने का प्रयास किया है।

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यो मे संक्षिप्त अथवा विस्तार से जैन सिद्धान्तों का वर्णन किया है। श्रीपाल रास मे जैन सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन न करने पर भी श्रीपाल द्वारा मुनि दीक्षा लेने तथा घोर तपस्या करने का वर्णन मिलता है।[1] इसी तरह प्रद्युम्नरास मे भी भगवान नेमिनाथ द्वारा कैवल्य प्राप्ति का वर्णन करके द्वारिका दहन की भविष्यवाणी का उल्लेख किया गया है।[2] भविष्यदत्त कथा में चारो गतियों (देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्च)पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। काव्य मे इस वर्णन को धर्म कथा के नाम से उल्लेख किया गया है।[3] इसी काव्य में आगे चल कर श्रावक धर्म का वर्णन किया गया है। जिसमे सप्त तत्त्व, नवपदार्थ, षट्द्रव्य, पचास्तिकाय पर सम्यक् श्रद्धा होना, ग्यारह प्रतिमा, बारह व्रत, अणुव्रत, पंच समिति तीन गुप्ति, षट् आवश्यक, अठाईस मूलगुण आदि की विस्तृत चर्चा की गयी है। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् सिद्धान्तो के वर्णन करने का प्रमुख उद्देश्य नायक के जीवन में वैराग्य उत्पन्न करना है। भविष्यदत्त चौपई मे भविष्यदत्त निम्न प्रकार विचार करने लगा—

---

१. हो सिरिपाल मुनि तप करि घोर। तोडे कर्म्म घातिया चोर।

२. हो जिणवर बोलै केवलवाणी, हो बरस बारहै परलो जणी।
अग्नि दाझिलसी द्वारिका जी, हो दीपाइण वे लागै आगे।
नग्री लोग न ऊबरै जी, हो हलधर किस्न छूटि सो भाजै ॥८८॥

३. धर्म कथा स्वामी विस्तरी, मुनिवर की बहु कीरति करी ॥३१॥५८॥

भवसबरत राजा भवि भई, को उपजै सो विणसै सही ।
सहु कुटुम्ब सम्पदा सार, जैसो बीज तणो चमकार ।।२५।।

आई कर्म गलि घालै फंद, राख न सकही इन्द्र फणीन्द्र ।
जीव बहुत ही लोला करै, बंधे कर्म सु खोया फिरै ।।२६।।

बहु गति जीव फिरै एकलो, नीच-ऊंच कुल पावै भलो ।
सुख दु:ख बांटे नाही कोइ, लावै जिसा फल भुंजै सोइ ।।२७।।

मुनि श्री के उपदेश के प्रभाव से भविष्यदत्त ने अपने पुत्र को राज्य भार देकर स्वयं ने वैराग्य धारण कर लिया । भविष्यदत्त के साथ उसके परिवार के अनेक जनो ने भी संयम एवं व्रत धारण किये ।

हनुमन्त कथा में स्वयं हनुमाण रावण को बहुत ही शिक्षा प्रद एवं हितप्रद बाते सुनाते हैं और सीता को पुन: राम को देने का परामर्श देते हैं—

पर नारी सौ संग जो करै, अपजस होइ नरक संचरै ।
सीख हमारी करो परमाणि, पठवो सिया राम कै थान ।।५६।।११६।।

रावण को हनुमान की शिक्षा अच्छी नहीं लगती और अपनी शक्ति एवं वैभव की डींग हांकने लगता है । लेकिन हनुमान फिर रावण को समझाते हैं—

सगौ न कोई पुत्री मात, पुत्र कलत्त मित्र अरु तात ।
सगो न कोई किसको होइ, स्वारथ आप करै सहु कोय ।।६६।१००।।

भये अनन्त चक्र भूपाल, ते पणि भया काटल की पास ।
भूप अनन्त गया व जाई, आगै जाइ बताया थाइ ।।६७।।

इसी अवसर पर हनुमान बारह अनुप्रेक्षाओं के माध्यम से रावण को जगत् की शरीर एवं धन दौलत की असारता एवं विनाशी स्वभाव पर प्रकाश डालता है । इस तरह सभी जैन काव्य अपने नायक एवं नायिका के चरित्र को समुज्वल एवं निर्दोष बना कर संयम अथवा गृह त्याग के पश्चात् समाप्त होते हैं ।

इन काव्यों में कथा के साथ साथ भी कभी कभी गहन चर्चा की चुटकी ले ली जाती है जो जैन सिद्धान्तों पर आधारित होती है । प्रद्युम्न रास में नारद ऋषि पाप-पुण्य के रहस्य के बारे मे जो मीठी चुटकी लेते हैं वह दिखने में सरल लेकिन गम्भीर अर्थ लिये हुये है—

हो नारद जंपे सुणहु कुमारी, हो उपजै विणासै इति संसारी।
दुखि सुखि जीव सदा रहै जी, हो पाप पुण्य द्वै गैल न छाडै।
सहै परिसह तप करै जो, हो पहु चे मुकति कर्म सहु तोडै ।।८०।।

सम्यकत्त्व की महिमा सर्वोत्तम है। उसी के सहारे देव एवं इन्द्र के पद को प्राप्त किया जा सकता है। अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त की जा सकती है तथा सर्वार्थसिद्धि एवं निर्वाण भी प्राप्त किया जा सकता है इसलिये मानव के सम्यग्दर्शन होना महान् पुण्य का सूचक है।

हो समकित कै बल सुर धरणेंद, समकित केवल उपजै इन्द्र।
चक्कवर्ति बल भोगवै हो, समकित कै बल उपजै रिधि।
जीव सदा सुख भोगवै हो, समकित बल सरवारथ सिद्धि ।।२३४।।

—श्रीपाल रास

अलौकिक शक्ति वर्णन

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने प्राय: सभी प्रमुख काव्यों में अलौकिक शक्तियों का वर्णन किया है। इन शक्तियो को नायक स्वय अपने पुण्य से उपार्जित करता है। अथवा उसे पुण्यात्मा होने की वजह से दूसरों के द्वारा दे दी जाती है। क्या प्रद्युम्न और क्या भविष्यदत्त एवं श्रीपाल अथवा हनुमान सभी को अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हैं और वे इन्ही के सहारे अनेक विपत्तियों पर विजय प्राप्त करते हैं। श्रीपाल रास में अष्टान्हिका व्रताचरण से कुष्ठ रोग दूर होना, समुद्र को लांघ जाना, रैंण मंजूषा की देवियों द्वारा सतीत्व की रक्षा करना आदि सभी में अलौकिकता का आभास मिलता है। प्रद्युम्न को तो सोलह गुफाओं मे जाने पर अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है तथा कचनमाला से तीन विद्याएँ प्राप्त होती है और वह इन्हीं विद्याओ के बलबूते पर कालसंवर, सत्यभामा एवं स्वयं अपने पिता श्रीकृष्ण जी को अपना पौरुष दिखलाने में सफल होता है। युद्ध में विद्या बल से शत्रुसेना को मृत्यु की नींद में सुला देना तथा आपस में मित्रता होने पर उसे पुन: जीवित कर देना एक साधारण सी बात है। इसी प्रकार भविष्यदत्त को भी ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है और इन्ही के सहारे विमान का निर्माण करके नन्दीश्वर द्वीप की अपनी पत्नी के साथ बन्दना करने जाता है। सेठ सुदर्शन का सूली से बच जाना एवं सूली का सिंहासन बन जाना चमत्कारिक घटनाएँ है जिन्हें पढकर पाठक आश्चर्य में भर जाता है और स्वयं भी ऐसी अलौकिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है।

प्रद्युम्न को सोलह गुफाओं से जो अनेक विद्याएँ प्राप्त हुई थी ब्रह्म रायमल्ल ने उनका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

हो कामदेव के पुन्य प्रभाए, हो बितर देव मिल्या सहु आए।
करी मेरु का वंदना जी, हो दीन्हा जी विद्या तणा भंडारौ।
छत्र सिंहासण पालिका जी, हो सेथी असव खडग हथियारौ ।।१०।५८।।

हो रत्न सुवर्ण दीया बहुभाए, ही करै बीनती आगै आए।
हम सेवक तुम राजई जी, हौ सौलह गुफा भले आयो।
बितर देव संतोषिया जी, हो कंचण माला कै मनि भायो ।।११।।

छन्द

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों मे सीमित किन्तु लोकप्रिय छन्दों का ही प्रयोग किया है। ये छन्द हैं दोहा, चौपई, वस्तुबन्ध एवं कडवाहा। रास काव्यों मे तथा प्रमुखतः श्रीपाल रास, प्रद्युम्नरास, नेमीश्वररास में इन्हीं छन्द का प्रयोग हुआ है। नेमिश्वर रास में स्वयं ब्रह्म रायमल्ल ने कडवाहा छन्द के प्रयोग किये जाने का उल्लेख किया है—

भण्यौ जी रासौ सिवदेवी का बालको।
कडवाहा एक सौ अधिक पैंताल।
भावजी भेद जुवा-जुवा छंद नाम इहु सब शुभ वर्ण।
कर जोडै कवियण कहै भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ।।१४५।।

भविष्यदत्त चौपई मे चौपई छन्द का प्रयोग हुआ है। केवल नाम मात्र के लिये कुछ वस्तु बंध छन्द भी आया है। इसी तरह हनुमन्त कथा मे भी चौपई छन्द की ही प्रमुखता है। दूहा एव वस्तुबध छन्द का बहुत ही कम प्रयोग हो सका है। परमहंस चौपई में भी केवल चौपई छन्द मे पूरा काव्य निबद्ध किया गया है।

सुभाषित एवं लोकोक्तियां

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने समय में प्रचलित लोकोक्तियों एवं सुभाषितों का अच्छा प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से काव्यों मे सजीवता आयी है। यही नही तत्कालीन समाज एवं आचार व्यवहार का भी पता चलता है। यहाँ कुछ सुभाषितों एवं लोकोक्तियों को प्रस्तुत किया जा रहा है—

१—बावै जिसौ तिसौ लुणै — श्रीपाल रास

२—काग गलै किम सोभै हार — ,,

३—गयो कोढ जिम अहि कंचुली — ,,

४—मुवा साथि नवि मुवो कोइ — ,,

५—जीवत मांखी को गलै — ,,

६—आयो हो नाग न पूजै हो भाई
बाहरि बाबी जो पूजण जाई — प्रद्युम्नरास ।१८।।

७—छोल्लि को रालि करि करै पेट की आस ।। — नेमीश्वररास ।१२२।

८—पुण्य पाप तस जैसा बवै,
तहि का तैसा फल भोगवै ।। — भविष्यदत्त ।१३।२३।

९—सुभ अरु असुभ उपायो होइ,
तहि का तैसा फल नर भुंजै सोइ ।। — ,,

१०—जैसा कर्म उदै हो आइ, तैसो तहाँ बंधि ले जाइ । — ४०।२६

११—पाप पुण्य ते साथिहि फिरै — ४२।२६

१२—हो सो सही बुरा को बुरो

१३—पोते पुण्य होइ जब घणौ, होइ सफल कारिज इह तणो ।। हनुमत कथा

१४—दाख वेलि अर आंबै चढी, एक सिंघ अर पाखर पडी ।। ,, ६६।७५

१५—सुख दुख अर जामण मरण जिही थानकि लिख्यो होई ।
घडी महूरत एक खिण राखि न सक्कै कोइ ।। ,, १४।८७

१६—जा दिन आवै आपदा ता दिन मीत न कोइ ।
माता पिता कुटुंब सहु ते फिरि बैरी होइ ।। ,, २६।८६

१७—अैसो कर्म्म न कीजै कोइ, बंधै पाप अधिकौ दुख होइ ।
जिणवर धर्म जो निंद्या करै, संसार चतुर्गति तेई फिरै ।। ,, ५४'६३

१८—जप तप संयम पाठ सहु पूजा विधि त्यौहार ।
जीव दया विण सहु अफल, ज्यौ दुरजन उपगार ।। नेमीश्वररास ।।६७।।

१९—कामणी चरित ते गिण्या न जाइ ।।६८।। ,,

२०—जैनी की दीक्षा खांडा की धार ।।११६।। ,,

काव्यों के प्रमुख पात्र

जैन काव्यों के प्रमुख पात्रों में ६३ शलाका महापुरुषों के अतिरिक्त पुण्य पुरुषों एवं सामान्य पुरुष एवं स्त्री भी प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत होते हैं। नायक एवं नायिकाओं के साथ ही जो दूसरे पात्र आते हैं वे भी राजा महाराजा, विद्याधर एवं परिवार के दूसरे सदस्य भी बारी-बारी से आकर काव्य को आकर्षक बनाने में सहयोगी बनते हैं। ब्रह्म रायमल्ल ने अपनी कृतियों में पात्रों की संख्या में न तो वृद्धि की है और न बिना पात्रों के कथानक को लम्बा करने का प्रयास किया गया। इन सभी पात्रों का परिचय अत्यन्त आवश्यक है जिससे उनके व्यक्तित्व की महानता को भी पाठक समझ सकें और व्यर्थ की ऊहापोह से बच सकें। अब यहां कुछ प्रमुख पात्रों का परिचय दिया जा रहा है—

श्रीपाल रास

१. **श्रीपाल**—श्रीपाल चम्पापुर के राजा अरिदमन के पुत्र थे। ये कोटि-भट कहलाते थे। कुष्ठ रोग होने पर इन्होंने अपना राज्य अपने चाचा को सौंप कर सातसो अन्य कुष्ठ रोगियों के साथ जाना पड़ा। कुष्ठ अवस्था में ही इनका मैना सुन्दरी से विवाह होने पर सिद्ध चक्र विधान के गन्धोदक से इन्हें कुष्ठ रोग से मुक्ति मिली। विदेश में एक विद्याधर से जल तरंगिनी एवं शत्रु निवारिणी विद्या प्राप्त की। धवल सेठ के रुके हुये जहाजों को चलाया एवं उन्हें चोरों से छुड़ाया। रैण मजूषा नामक राज्य कन्या से विवाह होने पर इन्हें धोखे से समुद्र में गिरा दिया गया लेकिन लकड़ी के सहारे तैरते हुए एक द्वीप में जा पहुँचे। वहाँ उसने गुणमाला कन्या से विवाह किया। धवल सेठ के भाटों द्वारा इनकी जाति भाण्ड बताने पर इन्हें सूली की सजा दी गयी लेकिन रैण मंजूषा ने इनको छुड़वाया। बारह वर्ष विदेश मे घूमने के पश्चात् मैना सुन्दरी सहित अनेक वर्षों तक राज्य सुख प्राप्त किया तथा अन्त में दीक्षा प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त किया।

२. **मैना सुन्दरी** — मगध देश में उज्जैनी के राजा की राजकुमारी थी। पिता ने कर्म की बलवत्ता का बखान करने पर क्रोधित होकर कुष्ठी श्रीपाल से विवाह कर दिया। लेकिन सिद्धचक्र विधान करके उसके गन्धोदक द्वारा पति का कुष्ठ रोग दूर करने में सफलता प्राप्त की। कितने ही वर्षों तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् संसार से विरक्त होकर दीक्षा धारण कर सोलहवें स्वर्ग में देव हो गयी।

३. **रैण मंजूषा** — हंस द्वीप के राजा कनक केतु की पुत्री थी। सहस्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलने पर श्रीपाल से विवाह हो गया। धवल सेठ द्वारा शील भंग करने के प्रयास मे वह अपने चारित्र पर दृढ़ रही और देवियों द्वारा उपसर्ग दूर किया गया। सैकडो वर्षों तक राज्य सपदा भोगने पर अन्त मे दीक्षा लेकर स्वर्ग प्राप्त किया।

४. **धवल सेठ**—भृगुकच्छ पट्टन का बड़ा व्यापारी एव व्यापारिक जहाजी बेड़े का स्वामी। श्रीपाल की दूसरी स्त्री रंणमजूषा के शील भग करने के प्रयास करने पर देवियो द्वारा धवल सेठ को प्रताडित किया गया। लेकिन राजा धनपाल के दरबार मे श्रीपाल को अपने भाटो द्वारा भाण्ड पुत्र सिद्ध करने के प्रयत्न मे फिर नीचा देखना पड़ा। अन्त मे अपने घृणित पापो के कारण स्वमेव मृत्यु को प्राप्त हुआ।

५. **गुणमाला** — श्रीपाल की तीसरी पत्नी एव राजा धनपाल की पुत्री। इसका विवाह सागर तैर कर आने के पश्चात् श्रीपाल से हुआ। पर्याप्त समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् दीक्षा लेकर स्वर्ग प्राप्त किया।

६. **वीरदमन**—श्रीपाल का चाचा। कुष्ठ रोग होने पर श्रीपाल वीरदमन को राज्य भार सौप कर विदेश चला गया। श्रीपाल के वापस आने पर जब वीरदमन ने राज्य देने से इन्कार किया तो दोनो मे युद्ध हुआ और उसमे श्रीपाल की विजय हुई। अन्त मे वीरदमन ने दीक्षा ग्रहण की।

प्रद्युम्नरास

७. **प्रद्युम्न** — रुक्मिणी की कोख से पैदा होने वाला श्रीकृष्ण का पुत्र। जन्म के छठे दिन अपने पूर्व जन्म के शत्रु असुर ने उसे चुरा कर शिला के नीचे दबा दिया। कालसवर विद्याधर ने उसका लालन-पालन किया। यहा उसे कितनी ही अलौकिक विद्याएँ प्राप्त हुई। युवा होने पर कालसवर की स्त्री कचनमाला इस पर मोहित हो गई लेकिन प्रद्युम्न को अपने जाल मे नही फँसा सकी। इस घटना के पश्चात् कालसवर एव प्रद्युम्न में युद्ध हुआ। युद्ध मे जीत कर नारद के साथ प्रद्युम्न द्वारिका लौट आया तथा अपनी जन्म माता को अनेक क्रीडाओ से प्रसन्न किया। काफी समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् अन्त मे दीक्षा धारण की और गिर-नार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

८. नारद—सभी क्षेत्रों एवं तीर्थों में भ्रमण करने वाले ऋषि। सत्यभामा के अभिमान को खण्डित करने के लिए श्रीकृष्ण को रुक्मिणी से विवाह करने के लिये प्रोत्साहित किया। प्रद्युम्न के अपहरण होने पर रुक्मिणी को धैर्य बंधाया। कालसंवर को एवं श्रीकृष्ण को प्रद्युम्न के साथ युद्ध होने पर वास्तविक तथ्यों से परिचित करा कर युद्ध को टालने में सफलता प्राप्त की।

९. रुक्मिणी—कुण्डलपुर के भीष्म राजा की रूपलावण्य युक्त पुत्री थी। श्रीकृष्ण ने इसका हरण करके विवाह किया था। प्रद्युम्न इसका पुत्र था। राज्य सुख भोगने के पश्चात् आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वर्ग प्राप्त किया।

१०. भीष्मराज—कुण्डलपुर के राजा एवं रुक्मिणी के पिता।

११. शिशुपाल—पाटलीपुत्र का राजा था। पहले रुक्मिणी का विवाह इसी से निश्चित हुआ था। लेकिन श्रीकृष्ण द्वारा हर लिये जाने पर दोनों में युद्ध हुआ और अन्त में श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया।

१२. कालसंवर—विद्याधर राजा था। शिला तले दबे हुये प्रद्युम्न को उठाकर उसे १६ वर्ष तक अपने यहां रखा था। प्रद्युम्न के साथ युद्ध में कालसंवर पराजित हुआ।

१३. कंचनमाला—कालसंवर की स्त्री थी। प्रारम्भ में प्रद्युम्न को उसी ने पाल-पोष कर बड़ा किया।

१४. श्रीकृष्ण—नव नारायणों में एक नारायण थे। रुक्मिणी को हर कर ले आये और उसके साथ विवाह कर लिया। प्रद्युम्न इन्हीं का पुत्र था। तीर्थङ्कर नेमिनाथ के ये चचेरे भाई थे।

१५. सत्यभामा—श्रीकृष्ण की पत्नी।

१६. धूमकेतु—प्रद्युम्न का पूर्वजन्म का शत्रु।

नेमीश्वररास

१७. समुद्रविजय—नेमिनाथ के पिता थे। इन्होंने गिरनार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

१८. **उग्रसेन**—राजुल के पिता थे।

१९. **नेमीश्वर**—२३ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का ही दूसरा नाम है। ये श्री कृष्णजी के चचेरे भाई थे। जब ये विवाह के लिये तोरण द्वार पर पहुंचे तो उन्होंने एक ओर बहुत से पशु देखे जो बरातियो के लिए खाने के लिये वहां एकत्रित किये गये थे। नेमिनाथ करुणार्द्र होकर तोरण द्वार से वैराग्य लेने चले गये। दीर्घकाल तक तपस्या करने के पश्चात् इन्होने गिरनार से परिनिर्वाण प्राप्त किया।

२०. **राजुल**—राजा उग्रसेन की लड़की थी। नेमिनाथ ने इनके साथ विवाह न करके वैराग्य धारण कर लिया था। राजुल ने भी नेमिनाथ के संघ में दीक्षा धारण करली और अन्त में घोर तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया।

भविष्यदत्त चौपई

२१. **धनपति सेठ**—कुरू जांगल देश के हस्तिनापुर का नगर सेठ था।

२२. **धनेश्वर सेठ**—हस्तिनापुर नगर का दूसरा धनिक श्रेष्ठि था। धनश्री उसकी पत्नी थी।

२३. **कमलश्री**—धनेश्वर सेठ की सुपुत्री एवं भविष्यदत्त की माता थी। कुछ समय पश्चात् धनेश्वर सेठ ने कमलश्री का परित्याग करके उसे धनपति सेठ के यहां भेज दिया। कमलश्री धार्मिक विचारों की महिला थी। भविष्यदत्त जब विदेश चला गया तब भी वह जिन-भक्ति मे लगी रहती थी। अन्त में आर्यिका दीक्षा लेकर घोर तप किया तथा स्त्री पर्याय से मुक्ति प्राप्त कर स्वर्ग प्राप्त किया तथा फिर दूसरे भव में जन्म धारण करके अन्त में निर्वाण प्राप्त किया।

२४. **सरूपा**—धनपति सेठ की द्वितीय पत्नि तथा बन्धुदत्त की माता।

२५. **भविष्यदत्त** — धनपति सेठ का पुत्र था। माता का नाम कमलश्री था। अपने छोटे भाई बन्धुदत्त के साथ विदेश मे व्यापार के लिए गया। मार्ग मे बन्धुदत्त उसे मदन द्वीप मे अकेला छोड़कर आगे चला गया। भविष्यदत्त को इसी द्वीप मे अनेक विद्याएँ, अपार सपत्ति एवं लावण्यवती भविष्यानुरूपा वधु मिली। जब बन्धुदत्त का जहाज पुनः इसी द्वीप मे आया तो भविष्यदत्त एवं उसकी पत्नी उसके

साथ हो गये लेकिन भविष्यदत्त जब अपनी मुद्रिका वापिस लेने द्वीप में गया तो बन्धुदत्त उसे छोड़ कर आगे बढ़ चला। भविष्यदत्त फिर अकेला रह गया। फिर एक देव उसे विमान में बिठा कर हस्तिनापुर ले आया। यहाँ आने पर उसने पोदनपुर के राजा को युद्ध में हरा दिया और इस तरह हस्तिनापुर का राज्य भी उसे मिल गया। वर्षों तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् भविष्यदत्त ने मुनि दीक्षा ले ली और अन्त में तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया।

२६. भविष्यानुरूपा—भविष्यदत्त की पत्नी जो तिलक द्वीप से प्राप्त हुई थी।

२७. बन्धुदत्त[1]—भविष्यदत्त की दूसरी माता से उत्पन्न हुआ भाई। बन्धुदत्त ने भविष्यदत्त को दो बार धोखा दिया। उसे हस्तिनापुर के राजा ने देश से निर्वासित कर दिया था।

हनुमन्त कथा

२८. प्रहलाद—आदित्यपुर के शासक एव पवनजय के पिता थे।

२९. महेन्द्र—सुमेरू की पूर्व की ओर महत देश का शासक तथा अजना का पिता।

३०. पवनंजय—विद्याधर राजा प्रहलाद का पुत्र एव अजना का पति। १४ वर्ष तक अजना से दूर रहने के पश्चात् जब वह रावण की सहायतार्थ सेना सहित जा रहा था तो चकवी के विरह को देख कर उन्हे अंजना की याद आ गई और वह अपने साथी के साथ उससे मिलने चल दिया। शत्रु सेना पर विजय के पश्चात् जब वह वापिस आया तो उसे अजना नही मिली अन्त मे पर्याप्त खोज के पश्चात् अंजना हनुमान सहित मिली।

३१. मधुलता—अंजना की सहेली एवं दासी।

३२ रावण—लंका का स्वामी तथा राक्षसों का अधिपति। अनेक विधाओं का धारक। सीता का हरण करने के कारण राम के साथ युद्ध हुआ जिसमे वह लक्ष्मण द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

---

१. रहत तहा केई दिन गया, बधूदत्त प्रोहण आइया।
दमडी एक न पूंजी रह्यौ, पाप जोग सगलो खोइयो।२३।
फाटा वस्त्र अति बुरा हाल, दुर्बल अस्ति उतरी खाल।

३३. सुग्रीव—कोकिन्दापुरी का राजा एवं राम का विश्वस्त सहायक।

३४. हनुमान—अंजना का पुत्र था। सीता की खोज में लंका आते हुये उसने जैन मुनियों को बचाया था। हनुमान राम का विश्वस्त सेवक था।

सुदर्शनरास

३५. धाडीवाहन—अंग देश के राजा थे। रानी के बहकावे में आकर राजा ने सेठ सुदर्शन को सूली का आदेश दिया था।

३६. अभया—अंग देश के राजा धाडीवाहन की रानी थी। कपिला ब्राह्मणी के चक्कर मे आकर सेठ सुदर्शन से अपनी शारीरिक प्यास बुझाने की दृष्टि से उसे श्मशान मे सामायिक करते हुए उठा कर अपने महल मे मंगा लिया। सेठ सुदर्शन अपने चरित्र पर दृढ़ रहा। लेकिन रानी ने सेठ सुदर्शन पर शील-भंग का लांछन लगा दिया। लेकिन जब शील के महात्म्य से सूली का सिंहासन बन गया और रानी को मालूम हुआ तो वह अपघात करके मर गयी।

३७. कपिला—वह ब्राह्मणी थी। सेठ सुदर्शन की सुन्दरता पर मुग्ध थी। दर्द का बहाना बनाकर सेठ सुदर्शन को अपने यहाँ बुला लिया तथा काम ज्वर का नाम लेकर सेठ को फुसलाना चाहा लेकिन सुदर्शन उसे बहुत समझा कर कपिला के चगुल से मुक्त हो गया। अन्त मे कपिला नगर छोडकर पाटलीपुत्र चली गयी।

३८. मनोरमा—सेठ सुदर्शन की धर्म पत्नि।

३९. सेठ सुदर्शन—सुदर्शन चम्पा नगरी का नगर सेठ था जो अपने चरित्र के लिये वह नगर भर मे प्रसिद्ध था। कपिला ब्राह्मणी एव अभया रानी दोनो के ही चगुल मे वह नही फँसा। राजा ने रानी के बहकावे मे आकर जब उसे सूली का आदेश दिया तो सुदर्शन ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। लेकिन उसके शील के महात्म्य से वह सूली सिंहासन बन गयी। इसके पश्चात् कितने ही वर्षो तक घर में रहने के पश्चात् मुनि दीक्षा धारण करली और तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया।

जम्बूस्वामीरास

४०. जम्बूस्वामी—भगवान् महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली। इनके पिता का नाम श्रेष्ठि ऋषभदत्त एवं माता का नाम धारिणी था। युवावस्था मे इनका विवाह आठ कन्याओ से हो गया। लेकिन उनका मन संसार मे नहीं लगा।

इसलिये एक-एक पत्नि का परित्याग करके उन्होंने वैराग्य ले लिया तथा अन्त में और तपस्या के पश्चात् पहिले कैवल्य और फिर निर्वाण प्राप्त किया। जैन कवियों के लिये जम्बूस्वामी का जीवन बहुत प्रिय रहा है इसलिये सभी भाषाओं में उनके जीवन से सम्बन्धित रचनाएँ मिली हैं।

काव्यों में वर्णित प्रदेश, ग्राम एवं नगर

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों में अनेक प्रदेशों, नगरों, ग्रामों एवं द्वीपों का का उल्लेख किया है। कुछ नगरों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन किया है और कुछ का केवल नामोल्लेख मात्र किया है फिर भी ग्राम एव नगरो के वर्णन से काव्यों में रोचकता एवं उत्सुकता आयी है। अधिकांश नगर ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगर हैं जिन्होंने देश की संस्कृति के विकास मे भरपूर योगदान दिया है। ब्रह्म रायमल्ल ने भृगुकच्छपट्टण,[1] मालवदेश,[2] उज्जयिनी,[3] रत्नद्वीप,[4] अंगदेश,[5] चम्पापुर, दलवहण, दलवणपट्टण,[6] द्वारिका,[7] कुण्डलपुर,[8] हस्तीनागपुर,[9] पुंडरीक,[10] मगध-देश,[11] अयोध्या,[12] आदितपुर,[13] बसन्तनगर,[14] लंका,[15] पुण्डरीक कौंकिदा,[16] कुरूजांगलदेश,[17] पोदनपुर,[18] एवं वाराणसी[19] आदि नगरों एवं प्रदेशों का उल्लेख

१. श्रीपाल रास, ८० ।
२. वही, ६ ।
३. वही, ६ ।
४. वही, ८३ ।
५. वही, ११५ ।
६. वही, १६३ ।
७. प्रद्युम्नरास, ५ ।
   नेमीश्वररास, ८ ।
८. वही, २१।३६ ।
९. भविष्यदत्त चौपई, १०–२० ।
१०. प्रद्युम्नरास, ८२ ।
११. वही, ८६ ।
१२. वही, ९३ ।
१३-१६. हनुमत कथा ।
१७. भविष्यदत्त चौपई, १०–२० ।
१८. वही ।
१९. निर्दोष सप्तमी कथा ।

किया है तथा अपने पात्रों की जीवन घटनाओं का वर्णन किया है। कुछ नगरों का विस्तृत परिचय निम्न प्रकार है—

भृगुकच्छपट्टण

सौराष्ट्र प्रान्त के वर्तमान भडौच नगर का नाम ही प्राचीन काल में भगु-कच्छपट्टण था। यह नगर जैन साहित्य, व्यापार एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र माना जाता था।[1] श्रीपाल एवं धवल सेठ की प्रथम बार इसी नगर में भेट हुई थी।[2] सेठ के जहाजी बेड़े में ५०० जहाज थे। जिनसागर सूरि ने अष्टकम् में भृगुकच्छ को सौराष्ट्र का नगर लिखा है।[3] आचार्य चन्द्रकीर्ति ने भडोच नगर में अपनी कितनी ही रचनाओं को समाप्त किया था।[4] इसी तरह ब्रह्म अजित ने भृगुकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय में हनुमत्चरित्र की रचना की थी।[5] व्यवहार भाष्य में नगर का बड़ा महत्त्व बतलाया है।[6] कालकाचार्य ने भी इस नगर मे विहार किया था।[7] गुणचन्द्र गणि ने प्राकृत भाषा मे सवत् ११६८ मे इसी नगर मे पासणाहचरित की रचना समाप्त की थी।[8]

मालवदेश

मालवा और मालव एक ही नाम है। भारतीय साहित्यकारों एवं विशेषतः जैन साहित्यकारो के लिए मालव देश बहुत आकर्षण का देश रहा है। जैन आगम,

---

१. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ सख्या ३७३।

२. हो लघि देस बन गिरि नदी षाल।
सागर तट्ट ढाढौभयो हो भृग, कच्छपटण सुविसाल ॥८०॥ श्रीपालरास

३. द्वीपे श्री भृगुकच्छ वृद्ध नगरे सौराष्ट्रके सर्वत. ॥२॥

४. राजस्थान के जैन सत—डा० कासलीवाल, पृ० १५७।

५. वही, पृ० १६५।

६. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० २१६।

७. वही, पृ० ४५८।

८. वही, पृ० ५४६।

पुराण एवं काव्य साहित्य में इस प्रदेश का खूब उल्लेख मिलता है। आचार्य समंतभद्र ने मालवा के विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। भट्टारक ज्ञानभूषण ने मालव जन पद के श्रावकों को सम्बोधित किया था।[८] श्रीपाल मालव देश का राजा था।

उज्जयिनी

उज्जयिनी नगरी सैकड़ों वर्षों तक मालव जन पद की राजधानी रही। जैन साहित्य एवं इतिहास में इस नगरी का नाम सदैव ही प्रमुख रूप से लिया जाता रहा। भगवान महावीर ने इसी नगरी के अतिमुक्तक श्मशान में रूद्र द्वारा किये गये घोर उपसर्ग पर विजय प्राप्त की थी। आगमों एवं अन्य साहित्य में उज्जयिनी से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं। श्रीपाल राजा की राजधानी उज्जयिनी ही थी। चन्द्रगुप्त के शासनकाल में उज्जयिनी उसके राज्य का अंग थी तथा इस नगरी से भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य अपने संघ के साथ प्रयाग गये थे। भट्टारकों की भी यह नगरी केन्द्र रही थी। सवत् १६६६ मे विष्णुकवि ने भविष्यदत्त चौपई की यहीं रचना की थी।[९]

रत्नद्वीप

श्रीपाल एवं भविष्यदत्त अपने समय में दोनों ही वहां व्यापार के लिये गये थे। यह कोई दक्षिण दिशा का छोटा द्वीप मालूम पड़ता है।

अंगदेश एवं चम्पानगरी

अंगदेश एक जन पद था। चम्पा नगरी इसकी राजधानी थी। यह आर्य क्षेत्र मे आता था और आर्यों के २५३ जनपदों में इसका प्रमुख स्थान था। श्रीपाल रास में अगदेश एव उसकी राजधानी चम्पा का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

> हा सुरिण कोडीभड करै बखाण, अंगदेस चम्पापुरि थाम।
> तासु सिंघरथ राअइ, हो कुंवापहु तस तीया सुजाणि।
> तासु पुत्र सिरीपाल हा हो बचन हमारा जाणि प्रमाणि ।।११२।।

---

८. राजस्थान के जैन संत—डा० कासलीवाल, पृ० ४०।

९. संवतु सोरहसै छूं गई, अधिकी तापर छासठि भई।
पुरी उज्जैनी कविनि को वासु, विष्णु तहां करि रह्यो निवासु ।।

सेठ सुदर्शन भी अंगदेश का ही था। सुदर्शन रास में अंगदेश को धन-धान्यपूर्ण एवं जिन भवनों से युक्त देश कहा है।[1]

दश पुर

दशपट्टण अथवा दलवणपट्टण दशपुर के ही दूसरे नाम हैं। दशपुर पहले मन्दसौर का ही दूसरा नाम था।[2] कवि राजशेखर ने दशपुर का उल्लेख पैशाची भाषा के बोलने वालों का नगर बतलाने के लिये किया है।[3] आवश्यकचूर्णि में दशपुर की उत्पत्ति का उल्लेख आया है।[4] आचार्य समन्तभद्र संभवतः दशपुर मे कुछ समय तक रहे थे।

द्वारिका

यादवों की समुद्र तट पर स्थित प्रसिद्ध पौराणिक नगरी। इसी नगरी के शासक समुद्रविजय, वासुदेव एवं हलधर थे। २२ वे तीर्थङ्कर नेमिनाथ की जन्म नगरी भी यही थी। कवि ने द्वारिका का वर्णन नेमीश्वररास एवं प्रद्युम्नरास दोनो मे किया है।

अहो क्षेत्र भरथ अर जबू दीपो।
नग्र द्वाराओमती समद समीप सोभा बाग बाडी घणा।
अहो छपन जी कोडि जादौ तणो वासो।
लोगनि सुखीय लीला करै
अहो इन्द्रपुरी जिम करै हो विकास ॥८॥ नेमीश्वररास

दुर्वासा ऋषि के शाप से द्वारिका जल कर नष्ट हो गई थी।

---

१. अहो अंग देस अति भलो जी प्रधाना,
धनकण सपदा तणौ जो निधान
जिन भवण बन सरोवर घणा
अहो चम्पा जो नग्री हो मध्य सुभ थान
मुनिवर निवसै जी अति घणा।
स्वामी जी वासुपुज्य जी पहुतौ निरवाण ॥

२. पम्परामायण (७-३५)।

३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० २६।

४. वही, पृ० २५०।

५. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृ० १७४।

आवितपुर

सुमेरू के दक्षिण दिशा की ओर स्थित विद्याधरों का नगर था। नगर अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये विख्यात था। पवनकुमार का पिता प्रह्लाद इसी नगर का शासक था।

बसन्त नगर

सुमेरू के पूर्व दिशा की ओर स्थित विद्याधरों का दूसरा नगर। महेन्द्र इसी का शासक था। अंजना उसकी पुत्री थी।

पुंडरीक

विदेह क्षेत्र का नगर जहाँ सीमन्धर स्वामी शाश्वत विराज कर धर्मोपदेश का पान कराते रहते हैं।

लंका

भारत के दक्षिण की ओर स्थित लंका द्वीप बहु चर्चित द्वीप है। रावण यहाँ का राजा था। उसने सीता का अपहरण करके इसी द्वीप मे लाकर रखा था। हनुमंत कथा में ब्रह्म रायमल्ल ने लका वर्णन किया है। यह द्वीप त्रिकुटाचल पर्व की तलहटी मे स्थित है।[1]

हस्तिनागपुर

हस्तिनापुर का ही दूसरा नाम है। यह नगर कुरूजांगल देश की राजधानी थी। ब्रह्म रायमल्ल ने इस नगर को स्वर्ग की नगरी के समान लिखा है और उसका निम्न प्रकार विस्तृत वर्णन किया है[2] —

> उत्तम कुर जंगल को देस, भली बस्त सहु भरिउ असेस।
> वस्तु मनोहर लहि जे घणी, पुजै तहाँ रली मन तणी।
> तह मैं हस्तनागपुर थान, सोभा जैसी सुर्ग विमान।
> बाग बावडी तहां सोभा घणी, वृक्ष जाति बहु जाई न गिणी।
> मुनिवर नाथ धरै तहां ध्यान, जाणै सोनौ तिणो समान।
> परिगह संगत जैसा ईस, करइ ध्यान अति महा जगीस ॥११॥

---

१. पद्मपुराण ५।१६७। २. भविष्यदत्तचौपई।

रिद्धिवंत मुनिवर अति घणा, वृक्ष फली सहु छह रिति तणा ।
करै घोर तप मन बच काय, उपजो केवल मुक्ति ही जाइ ।।१२।।
क्षेत्री धान अहार होइ, दुख्युकाल न जाणै कोइ ।
सोभ भली ताल पोखरी, दीसै निर्मल पाणी भरी ।।१३।।
पंथी जण तस भूख पलाई, सीतल नीर वृक्ष फल खाई ।।१४।।
नग्र मांहि जिण थानक घणा, माहै बिंब भला जिण तणा ।
इठ विधि पूजा श्रावक करै, गुर का वचन स हीयडै धरै ।।१५।।
दान चारि तिहुं पात्रां देइ, पात्र कुपात्र परीक्षा लेइ ।
बिंब प्रतिष्ठा जात्रा सार, खरचै द्रव्य आपणै अपार ।।१६।।
ऊंचा मंदर पौल पगार, सात भूमि ऊपरि बिसतार ।
घरि घरि रली बधावा होइ, कान पडिउ नहि सुणि जे कोइ ।।१७ ।
राजा राज करै भूपाल, जैसो स्वर्ग इन्द्र चोवाल ।
पालै प्रजा चालै न्याइ, पुन्यवंत हथनापुर राइ ।।१८।।

प्रद्युम्न चरित मे दुर्योधन को हस्तिनापुर का राजा लिखा है । जैन ग्रन्थो मे हस्तिनापुर को देश की १० प्रसिद्ध राजधानियो एवं तीर्थों मे गिनाया है ।

महाकवि की काव्य रचना के प्रमुख नगर

ब्रह्म रायमल्ल सन्त थे इसलिए वे भ्रमण किया ही करते थे । राजस्थान उनका प्रमुख प्रदेश था जिसके विभिन्न नगरों मे उन्होंने विहार करके साहित्य-निर्माण का पवित्र कार्य सपन्न किया था । कवि ने उन नगरों का रचना के अन्त में जो परिचय दिया है वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है तथा वह नगरो के व्यापार, प्राकृतिक सौन्दर्य एव वहा की व्यवस्था के बारे मे परिचय देने वाली है । हम यहां उन सभी नगरो का सामान्य परिचय प्रस्तुत कर रहे है —

रणथम्भौर

ढूंढाड प्रदेश में रणथम्भौर का किला वीरता एव बलिदान का प्रतीक है । उसके नाम से शौर्य एवं त्याग की कितनी ही कहानियां जुड़ी हुई हैं । 11 वी शताब्दि से यह दुर्ग शाकम्भरी के चौहान शासको के अधीन था । इसके पश्चात् रणथम्भौर ने

कितने ही उतार चढ़ाव देखे। कभी उसके तलवारों एवं तोपों की खुली चुनौती का सामना किया तो कभी उसने रक्षा के लिए हजारों लाखों वीरों को अपना खून बहाते देखा। हम्मीर राजा के साथ ही रणथम्भौर का भाग्य ने पलटा खाया और कभी वह मुसलिम बादशाहों की अधीन रहा तो कभी राजपूत शासकों ने उस पर अपनी पताका फहरायी। देहली के बादशाहो के लिए यह किला हमेशा ही सिरदर्द बना रहा। सम्राट अकबर ने जब इस किले पर अधिकार किया तो वहाँ कुछ शान्ति रही अन्त में मुगल सम्राट शाह आलम ने इस किले को जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिंह को दे दिया।

रणथम्भौर जैनधर्म एवं संस्कृति का केन्द्र रहा। युद्धों एव मारकाट के मध्य भी वहाँ कभी-कभी सांस्कृतिक कार्य होते रहे। 11 वीं शताब्दि मे शाकम्भरी के सम्राट पृथ्वीराज (प्रथम) ने जैन मन्दिरो में स्वर्ण कलश चढ़ाया था।[१] सिद्धसेन सूरि ने राजस्थान के जिन पवित्र स्थानों का उल्लेख किया है उनमें रणथम्भौर का नाम भी सम्मिलित है।

राजा हम्मीर के शासन काल में भट्टारक धर्मचन्द्र ने किले में विशाल प्रतिष्ठा समारोह का आयोजन किया था[२] और मन्दिर में चौबीसी की स्थापना करवायी थी। उसके शासन में जैन धर्म का चारो ओर अच्छा प्रभाव स्थापित था। हम्मीर के पश्चात् रणथम्भौर मुसलिम शासकों के आक्रमण का शिकार बनता रहा। संवत् 1608 मे पं० जिनदास ने शेरपुर के शान्तिनाथ चैत्यालय में होलीरेणुका चरित्र की रचना की थी। जिनदास रणथम्भौर के निकट नवलखपुर का रहने वाला था।[३] इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि रणथम्भौर में ही साह करमा द्वारा करवायी गई थी और आचार्य ललितकीर्त्ति को भेंट मे दी गई थी। इसके एक वर्ष पश्चात् संवत् 1609 में श्रीधर

---

१. रणथभपुरे आणालेहेणं जस्स सर्मारवेण।
हेम अप दड मिसओ निच्चं नच्चाविया कित्ती ।।३।।
—पद्मदेव कृत सद्गुरुपद्धति

२. सवत् माघ वदि ५ श्री मूलसघे सरस्वती गच्छे भट्टारक श्री धर्मचन्द्र जी साहमल पीलमल चांदवाड भार्या भरवत सहरगढ रणथंभोर श्री राजा हम्मीर।

३. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृ० २१२, पचायत मन्दिर भरतपुर।

के भविष्यदत्त चरित की प्रतिलिपि की गई। भविष्यदत्तचरित अपभ्रंश की कृति है। इसी वर्ष एक और ग्रंथ जिणदत्तचरिउ की प्रतिलिपि की गई। प्रस्तुत पांडुलिपि आचार्य ललितकीर्ति को भेंट स्वरूप दी गई। उस समय साह दुलहा वहाँ के प्रमुख श्रावक थे।

संवत् 1630 में या इसके पूर्व ब्रह्म रायमल्ल रणथम्भौर पहुँचे थे। उस समय किले पर सम्राट अकबर का शासन था। तथा वहाँ अपेक्षाकृत शान्ति थी। इसी कारण कवि वहाँ श्रीपाल रास की रचना कर सके। ब्रह्म रायमल्ल वहाँ कितने समय तक रहे इस सम्बन्ध मे तो कोई उल्लेख नही मिलता किन्तु कवि ने किले की समृद्धि की प्रशसा की है तथा उसे धन तथा सम्पत्ति का खजाना कहा है। किले के चारों ओर पानी से भरे हुए सरोवर थे। यही नही वन उपवन उद्यान से वह युक्त था। किले में बहुत से जिन मन्दिर थे जो अतीव शोभायमान थे।

सवत् 1644 मे भट्टारक सकलभूषण के षटकर्मोपदेश माला की प्रतिलिपि श्रीमती पार्वती ने सम्पन्न करायी। उस समय यहाँ राव जगन्नाथ का शासन था। दुर्ग के चारो ओर शान्ति थी तथा वहाँ के निवासियो का ध्यान साहित्य प्रचार की ओर जाने लगा था। इसके पश्चात् सवत् 1659 में श्री ऋषभदेव जी अग्रवाल के आग्रह से तत्वार्थसूत्र की प्रति की गई। इससे अग्रवाल जैन समाज मे पूर्ण प्रभाव था। राजा जगन्नाथ ने टोडा के निवासी खीमसी को अपना मन्त्री बनाया जिन्होंने किले पर एक जिन मन्दिर का निर्माण कराया था।

हरसोर

हरसोर की राजस्थान के प्राचीन नगरो मे गणना की जाती है। जो नागौर जिले मे पुष्कर से डेगाना जाने वाले बस सडक पर स्थित है। 12 वी शताब्दि मे यह नगर प्रसिद्धि पा चुका था। जिस प्रकार श्रीमाल से श्रीमाली तथा ओसिया से ओसवाल, खडेला से खण्डेलवाल जाति का निकास हुआ था उसी प्रकार हरसोर से हरसूरा जाति की उत्पत्ति हुई थी।[1] इसी तरह हर्षपुरीय गच्छ का भी इसी नगर से उत्पत्ति हुई थी।[2] हरसोर पर प्रारम्भ मे शाकम्भरी के चौहानो का शासन था। चौहानो के पश्चात् हरसोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

---

1. Ancient Cities and Town, of Rajasthan by Dr. K. C. Jain, Page 328.
2. Ibid, Page 330.

संवत् 1628 में ब्रह्म रायमल्ल हरसोर पहुँचे और वहीं पर भादवा सुदी 2 बुधवार संवत् 1628 के दिन प्रद्युम्नरास की रचना समाप्त की। कवि ने हरसोर का बहुत ही संक्षिप्त परिचय दिया है जो निम्न प्रकार है—

> हो सोलहसै अठविस विचारो, हो भादव सुदि दुतीया बुधिवारो
> गढ हरसोर महा भलो जी, हो देवशास्त्र गुरू राखै मानो ।।194।

17 वीं शताब्दि के प्रथम चरण में हरसोर में श्रावकों की अच्छी बस्ती थी और वे देवशास्त्र गुरू तीनों की ही भक्ति करते थे।

जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सवत् 1662 की एक भविष्यदत्त चरित्र (श्रीधरकृत) की पांडुलिपि है जो जिसकी लिपि अजमेर में अर्जुन जोशी द्वारा की गयी थी इसके दूसरे ओर लिखा हुआ है कि हरसोर में राजा सांवलदास के शासन काल मे खण्डेलवाल देव एवं उसकी पत्नी देवलदे द्वारा ग्रन्थ की प्रतिलिपि करायी गयी थी।[१]

झुंझुनू

झुंझुनु शेखावाटी प्रदेश का प्रमुख नगर है। देहली के समीप होने के कारण यहाँ दिगम्बर जैन भट्टारको का बराबर आवागमन बना रहा। 15 वी शताब्दि में होने वाले चरित्रवर्द्धन का झुंझुनु के प्रदेश ही प्रमुख कार्य क्षेत्र था।[२] नगर में दिगम्बर एव श्वेताम्बर दोनों ही का जोर था। संवत् 1516 मे इसी नगर में भट्टारक जिनचन्द के एवं मुनि सहस्त्रकीर्त्ति के शिष्य तिहुणा ने त्रैलोक्यदीपक (वामदेव) की प्रतिलिपि करके अपने गुरू जिनचन्द्र को भेंट की। ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराने वाले थे खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र वाले सघी मोठना उसकी पत्नी साहु एव उसके परिवार के अन्य सदस्यगण। पचमी व्रत के उद्यापन के उपलक्ष में प्रस्तुत ग्रन्थ प्रतिलिपि करवाकर तत्कालीन भट्टारक जिनचन्द को भेंट स्वरूप दिया गया था।[3]

सवत् 1615 मे ब्रह्म रायमल्ल झुझुनु पहुँचे। उनका वहाँ अच्छा स्वागत किया गया और इसी नगर मे नेमीश्वररास समाप्त किया। कवि ने नगर का जो संक्षिप्त

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची, चतुर्थ भाग, पृ० १८४।

२. राजस्थान के जैन साहित्य, पृ० ६६।

३. स्वस्ति सं० १५१६ वर्षे ....सद्गुरूवे प्रदत्तं।

वर्णन किया है उससे पता चलता है कि नगर में चारों ओर वन उपवन थे। श्रावकों की संख्या नगर में विशेष थी। वैसे वहाँ सभी जातियों के लोग रहते थे। नगर का राजा चौहान जाति का था जो उदार एवं कुशल शासक था तथा सभी धर्मों का आदर करता था।[१]

संवत् 1815 से पूर्व महापण्डित टोडरमल सिंघाना गये जो झुंझुनु प्रदेश में ही स्थित हैं। इससे भी पता चलता है कि उस समय तक यह प्रदेश जैन धर्मावलम्बियों का प्रमुख क्षेत्र था।

धौलपुर

धौलपुर पहिले राजस्थान की एक छोटी जाट रियासत थी। वर्तमान में यह सवाई माधोपुर का उपजिला है। धौलपुर राजस्थान एवं मध्यप्रदेश का सीमावर्ती प्रदेश है। वैसे धौलपुर का प्राचीन इतिहास रहा है। 8 वीं शताब्दि से 17 वीं शताब्दि तक यहाँ चौहान एवं तोमर राजपूतों का शासन रहा। कुछ समय के लिए सिकन्दर लोदी ने इस क्षेत्र को अपने राज्य मे मिला लिया। खानुआ की लड़ाई के पश्चात् यह प्रदेश मुगलों के हाथ में आ गया और उसके पश्चात् मरहठाओं ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। सन् 1806 मे धौलपुर, बाडी, राजाखेडा तथा सरमपुरा को मिलाकर एक नयी रियासत को जन्म दिया गया उसे महाराज राना कीरतसिंह को दे दिया गया। उनके पश्चात् मत्स्य प्रदेश निर्माण तक धौलपुर राज्य का शासन उन्हीं के वंशजों के हाथो में रहा।

धौलपुर जैन धर्म की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण प्रदेश रहा है। अपभ्रंश के महाकवि रइधु का धौलपुर प्रदेश से विशेष सम्बन्ध रहा था और उनका जन्म भी इसी प्रदेश में हुआ था।[२] श्री जिनहंससूरि (सं० 1524-82) ने धौलपुर में बादशाह को चमत्कार दिखला कर 500 कैदियों को छुड़वाया था।[3]

संवत् 1629 अथवा इसके पूर्व से ब्रह्म रायमल्ल स्वयं धौलपुर पहुँचे और वहाँ के श्रावक श्राविकाओं को साहित्य एवं सस्कृति के प्रति जागरूकता के लिए प्रेरणा दी। ब्रह्म रायमल्ल ने नगर की सुन्दरता का यद्यपि अधिक वर्णन नहीं किया लेकिन जो

---

१. अहो सोलाह सै पन्द्रह रच्यौरास..........................राखैजी मान ॥४२॥
२. राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० १५५।
३. वही, पृ० ६७।

कुछ किया है उससे ज्ञात होता है कि उस समय नगर में सभी जातियाँ रहती थी तथा वह वन, उपवन, मन्दिर एवं मकानों की दृष्टि से नगर स्वर्ग समान मालूम होता था। कवि ने धौलपुर को धौलहरनग लिखा है।[1] जैनों की घनी बस्ती थी और उनकी रुचि पूजा पाठ आदि में रहती थी।

शाकम्भरी

वर्तमान सांभर का नाम ही शाकम्भरी रहा है। शाकम्भरी का उल्लेख संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। शाकम्भरी देवी के पीठ के रूप में वर्तमान सांभर की प्राचीनता महाभारत काल तक तो चली ही जाती है: महाभारत (वनपर्व) देवी भागवती 7।28, शिवपुराण (उमासंहिता) मार्कण्डेयपुराण और मूर्ति रहस्य आदि पौराणिक ग्रन्थों में शाकम्भरी की अवतार कथाओं में शतवार्षिकी अनावृष्ठि, चिन्ताकुल ऋषियों पर देवी का अनुग्रह, जलवृष्टि, शाकादि प्रसाद दान द्वारा धरती के भरण पोषण आदि की कथाएँ उल्लेखनीय हैं।[2] वैष्णव पुराणों में शाकम्भरी देवी के तीनों रूपों मे शताक्षि, शाकम्भरी और दुर्गा का विवेचन मिलता है। देश में शाकम्भरी के तीन साधना पीठ हैं। पहला सहारनपुर में दूसरा सीकर के पास एवं तीसरा सांभर में स्थित है। यों तो सांभर को शाकम्भरी का प्रसिद्ध साधना पीठ होने का गौरव प्राप्त है लेकिन इसमे स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थली देवदानी (देवयानी) के आधार पर भी इस नगर की परम्परा महाभारत काल तक चली जाती है।

जैन धर्म और जैन संस्कृति की दृष्टि में शाकम्भरी प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण नगर रहा। मारवाड़ प्रदेश का प्रवेश द्वार होने के कारण भी इस नगर का अत्यधिक महत्त्व रहा। देहली एवं आगरा से आने वाले जैनाचार्य शाकम्भरी में होकर ही

---

१. अहो धोलहर नग्र बन देहुरा थान,
देवपुर सोभै जी स्वर्ग समान
पौणि छत्तीस लीला करैं
अहो करैं पूजा नित जपै अरहंत।

२. स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा।
शाकम्भरीति नामापि तद्दिनात् समभून्नृप ।।देवी भागवती ७।२८
आतिथ्यं च कृतं तेषां, शाकेन किल भारत।
ततः शाकम्भरीत्येव नामा यस्याः प्रतिष्ठितम्। महाभारत वनपर्व ८४

मारवाड़ में विहार करते थे। अजमेर, चित्तौड़, चाकसू, नागौर एवं आमेर में होने वाले भट्टारकों ने सांभर को अपने विहार से खूब पावन किया था। महाकवि वीर आशाधर, धनपाल एवं महेश्वरसूरि ने अपनी कृतियों में शाकम्भरी का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध जैन कवि ब्रह्म रायमल्ल ने संवत् 1625 में ज्येष्ठ जिनवर कथा एवं जिन लाडूगीत की रचना सांभर में ही की थी। दोनों ही लघु रचनाएँ हैं। नरायना से जो प्राचीन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई है ये इस प्रदेश एव उसकी राजधानी साभर मे जैन सस्कृति की विशालता पर प्रकाश डालती हैं। संवत् 1524 में यहां जिनचन्द्राचार्य कृत सिद्धान्तसार सग्रह की प्रतिलिपि की गई।[1] संवत् 1750 मे यहां भट्टारक रत्नकीति सांभर पधारे और श्राविका गोगलदे ने सूक्तमुक्तावली टीका की पाडुलिपि लिखवा कर उन्हे भेट की थी।[2] संवत् 1829 में अजमेर के भट्टारक विजयकीर्ति के अम्नाय के हरिनारायण ने पुराणसार की प्रति करवा कर प० माणकचन्द को भेट में दी थी। 19 वी शताब्दी मे यहां श्री रामलाल पहाड्या हुए जो अपने समय के अच्छे लिपिकार थे।[3]

वर्तमान मे नगर मे 4 दिगम्बर जैन मन्दिर हैं जिनमे विशाल एव प्राचीन जिन प्रतिमाएँ विराजमान है। नगर के धान मण्डी के मन्दिर को जो प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का सग्रह है वह यहां के निवासियों की साहित्यिक रुचि की ओर सकेत करने वाला है। नगर मे इस युग मे भी जैनो की अच्छी बस्ती है और वे अपने आचार व्यवहार तथा शिक्षा आदि की दृष्टि से प्रदेश मे प्रमुख माने जाते हैं।

सांगानेर

राजस्थान की राजधानी जयपुर से १३ किलोमीटर पर दक्षिण की ओर स्थित सागानेर प्रदेश के प्राचीन नगरो मे प्रमुख नगर माना जाता है। प्राचीन ग्रन्थो मे इस नगर का नाम संग्रामपुर भी मिलता है। १० वीं शताब्दी के पूर्व में ही इस नगर के कभी अपने विकास की चरम सीमा पर पहुच कर प्रसन्नता के प्रसून बरसाये तो कभी पतन की ओर दृष्टि डाल कर उसे आँसू भी बहाने पडे। १२ वी शताब्दी तक यह नगर अपने पूर्ण वैभव पर था। वहाँ विशाल मन्दिर थे। धवल एव कलापूर्ण प्रासाद थे। व्यापार एव उद्योग था। इसके साथ ही वहाँ थे—सम्य एव

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची, पंचम भाग, पृ० ८३।
२. वही, पृ० ७०६।
३. वही, पृ० २६०।

सुसंस्कृत नागरिक। सांगानेर (संग्रामपुर) के समीप ही चम्पावती (चाकसू) तक्षकगढ़ (टोडारायसिंह) एवं भाम्रगढ़ (आमेर) के राज्य थे जिन्हें उसकी समृद्धि एव वैभव पर ईर्ष्या थी। कालान्तर में नगर के भाग्य ने पलटा खाया और धीरे-धीरे वह वीरान नगर-सा बन गया। जिसमें संघी जी का जैन मन्दिर एवं अन्य घरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहा। मन्दिर के उत्तुंग शिखर ही नगर के वैभव के एक मात्र प्रतीक रह गये।

१६ वीं शताब्दी में आमेर के राज सिंहासन पर राजा पृथ्वीसिंह सुशोभित थे। वे वीर राजपूत थे तथा अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाने के तीव्र इच्छुक थे। उनके १२ राजकुमार थे जिन्हें पृथ्वीसिंह ने आमेर में ही एक-एक कोटडी (किले के रूप मे) बनाने की स्वीकृति दे दी। इन्ही १२ राजकुमारों मे से एक राजकुमार ने सागा जो वीरता एवं सूझ वाले थे। महाराजा पृथ्वीसिंह के पश्चात् महाराजा रतनसिंह आमेर के शासक बने। रतनसिंह की और राजकुमार सांगा की अधिक दिन तक नही बन सकी। राजकुमार सांगा बीकानेर के शासक जयसिंह के पास चले गये। कुछ ही समय मे उसने वहाँ सेना एकत्रित की और शस्त्रों से पूर्ण सुसज्जित होकर आमेर की ओर चल दिया। मार्ग में मोजमाबाद के मैदान में ही दोनो सेनाओ में जमकर लड़ाई हुई और उस युद्ध मे विजयश्री सागा के हाथ लगी। राजकुमार सांगा आमेर की ओर चल पड़े। मार्ग में उसे एक उजड़ी हुई बस्ती दिखलाई दी। सांगा जैन मन्दिर की कला एव उसकी भव्यता को देखकर प्रसन्न हो गया। मन्दिर में विराजमान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के दर्शन किये और उजडी हुई बस्ती को पुन: बसाने का सकल्प किया। यह १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण की घटना है। बस्ती का नाम सांगा के नाम से सग्रामपुर के स्थान पर सांगानेर प्रसिद्ध हो गया। कुछ ही वर्षों मे वह पुनः अच्छा नगर बन गया।

सन् 1561 में जब मुगल बादशाह अकबर अजमेर के ख्वाजा की दरगाह में अपनी भक्ति प्रदर्शित करने गये तो आमेर के राजा भारमल्ल ने उनका स्वागत सांगानेर में ही किया। महाराजा भगवन्तदास के शासन मे हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ब्रह्म रायमल्ल हुए जिन्होने सांगानेर में ही सन् 1576 में भविष्यदत्त चौपई की रचना समाप्त की। सन् 1582 मे जैनाचार्य हीरविजय सूरि सम्राट अकबर के निमन्त्रण पर उनके दरबार में गये थे तो वे सांगानेर होकर ही देहली गये थे। सांगानेर निवासियो ने उनका हार्दिक स्वागत किया था। इसके पश्चात् यह नगर 16 वीं शताब्दि से 19 वीं शताब्दि तक विद्वानों का उल्लेखनीय केन्द्र रहा

सांगानेर का उल्लेख ब्रह्म रायमल्ल ने तो किया ही है इस नगर में खुशालचन्द काला (17 वीं शताब्दि), पुण्यकीर्ति (संवत् 1660), जोधराजगोदीका (16 वीं-17 वीं शताब्दि) हेमराज ।। (17 वीं शताब्दि) तथा किशनसिंह जैसे विद्वान् हुए। जयपुर बसने के 50 वर्ष बाद तक यह नगर जैन साहित्यिकों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। ब्रह्म रायमल्ल ने सॉंगानेर के बारे में जो वर्णन किया है उससे पता चलता है कि उस समय यह नगर धन-धान्यपूर्ण था तथा चारों ओर पूर्ण सुख शान्ति थी। श्रावको की यहाँ बस्ती की वे सभी धन सम्पत्ति युक्त थे। सबसे अच्छी बात यह थी कि उनमे आपस में पूर्ण मतैक्य था। नगर में जो जैन मन्दिर थे उनके उन्नत शिखर आकाश को छूते थे। बाजार में जवाहरात का व्यापार खूब होता था। सॉंगानेर ढूढाहड देश में विशेष शोभा युक्त था। शहर के पास ही नदी बहती थी और चारों ओर पूर्ण सुख-शान्ति व्याप्त थी।

विद्वानों के केन्द्र के साथ ही सांगानेर भट्टारकों का केन्द्र भी था। आमेर गद्दी होने के पश्चात् भी वे बराबर सांगानेर आया करते थे। अभी तक जितनी भी प्रशस्तियाँ मिली है उनमें सभी में भट्टारकों का अत्यधिक श्रद्धा के साथ नामोल्लेख किया गया है। लेकिन भट्टारकों का विशेष विहार भट्टारक चन्द्रकीर्ति (संवत् 1622-62 तक) से बढ़ा और भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति, भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति, भट्टारक जगत्कीर्ति, भट्टारक महेन्द्रकीर्ति, भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति आदि का विशेष आवागमन रहा। तेरहपन्थ के उदय के समय भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति वहीं सांगानेर मे थे।[1] खुशालचन्द काला लक्ष्मीदास के शिष्य थे जो स्वयं भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे।

देस ढूंढाहड सोभा घणी, पूजै तहा आलि मण तणी।
निर्मल तलै नदी बहु फिरै, सुख सं बसे बहु सांगानेरि ।।
चहुदिशि बण्या भला बाजार, भरै पटोला मोती हार।
भवन उतुंग जिनेश्वर तणा, सोभै चंदवा तोरणा घणा।
राजा राजे भगवन्तदास, राजेस्वर सेवहि बहु तास।
परजा लोग सुखी सब बसै, दुखी दलिद्री पुरवै आस।
श्रावक लोग बसै धनवन्त, पूजा करहि जपहि अरिहन्त।
उपरा ऊपरी बैर न काम, जिहि अहिमिन्द सुर्ग सुखनाम ।।

1. भट्टारक आंबेरिके नरेन्द्रकीरति नाम।
यह कुपन्थ तिनकै समै नयो चल्यो अघ धाम ।।

भट्टारकों एवं विद्वानों का केन्द्र होने के साथ ही यहाँ प्राचीन साहित्य का भारी संग्रह था। बड़े-बड़े शास्त्र भण्डार थे। तथा उनमे प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने के पूर्ण साधन थे। जयपुर के तेरहपन्थी मन्दिर (बड़ा), ठोलियों का मन्दिर, बधीचन्द जी का मन्दिर एवं गोधों के मन्दिर में जो शास्त्र भण्डार है वे सब पहिले सांगानेर के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में थे। इसके अतिरिक्त यह नगर सुधारको का भी केन्द्र था। दिगम्बर समाज के तेरहपन्थ का सबसे अधिक पोषण यही हुआ तथा इसके मुख्य नेता अमरा भौसा ने जो हिन्दी के कवि जोधराज गोदीका के पिता थे। बख्तराम साह ने अपने ग्रन्थ मिथ्यात्व खण्डन पुस्तक मे तेरहपन्थ एवं अमरचन्द के बारे में विस्तृत जानकारी दी है। जिसके अनुसार अपना भौसा को धन का अत्यधिक गुमान था तथा वह जिनवाणी का अविनय करता था इसलिए उसको वहाँ के श्रावको ने जिन मन्दिर से निकाल दिया इसके पश्चात् उसने तेरहपथ का प्रचार किया और अपना एक नया मन्दिर बनवा लिया।[2]

---

2. जैपुर निकटि बसै एक ओर, सांगानेरि आदि तै ठोर।
सबे सुखी ता नगरी माहि, तिन मे श्रावक सुवस बसाहि।
बड़े-बड़े चैत्यालथ जहा, ब्रह्मचार इक बसै तहा।
अमरचन्द ही ताको नाम, सोभित सकल गुननि का धाम।
ताके ढिगी मिली आवत पन्च, कथा सुनत तजि कै परपन्च।
तिनि मैं अमरा भौसा जाति, गोदीका यह ब्योंक कहाति।
धनको गरब अधिक तिन धरयौ, जिनवाणो को अविनयकरयो।
तब बालो श्रावकनि विचारि, जिन मन्दिर तै दयो निकारि।
जब उन कीन्हो क्रोध अनंत, कही चले हो नूतन पन्थ।
तब वै अध्यातमी कितेक मिलै, द्वादश सबै येकसे मिले।
बनवो कछुयक लालच दैवे, अपने मत में आने छं छै।
नयो देहुरो ठान्यो ओर, पूजा पाठ रचे बर जो।
सतरहे मेरु निडोत्तरै शाल, मत थाषो असै अघ जाल।
लोगनि मिलि कै मतो उपायो, तेरहपन्थ नाम ठहरायो।

उस समय सांगानेर के जैन समाज की बहुत ख्याति बढ़ गयी थी तथा धार्मिक एवं सामाजिक मामलों को निबटाने की दृष्टि से भी वहाँ के प्रमुख श्रावकों के पास आते और उनसे मार्ग दर्शन चाहा जाता। कविवर जोधराज गोदीका के कारण सांगानेर को और भी प्रसिद्धि एव लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसने लिखा है कि हजारों नगरों में सांगानेर प्रमुख नगर था।[१]

सांगानेर साहित्यिक केन्द्र के अतिरिक्त व्यापारिक केन्द्र था। जयपुर बसने के पूर्व इस नगर का बहुत महत्त्व था। बाहर के विद्वान् एव व्यापारी यहाँ आकर रहने लगते थे। हिन्दी के विद्वान् किशनसिंह (17-18 वी शताब्दि) व्यापार के लिए ही रामपुरा छोड़कर सांगानेर आकर रहने लगे थे। इसी तरह ब्रह्म रायमल्ल (16 वी शताब्दि) ने भी यहाँ काफी समय तक रहे थे। हेमराज द्वितीय सांगानेर के थे लेकिन फिर कामा जाकर रहने लगे थे।[२]

सांगानेर मे बडी भारी सख्या मे ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ की गई जिससे यहाँ के समाज की साहित्यिक प्रियता का पता लगता है। संवत् १६०० मे सागा के शासन मे भट्टारक वर्धमान देव कृत वराग चरित्र की प्रतिलिपि की गयी थी। उसमे सागा को 'राव' की उपाधि से सम्बोधित किया है।[१] सागानेर के पुनस्थापन के पश्चात् सवतोल्लेख वाली यह प्रथम पाण्डुलिपि है। इसी ग्रन्थ की पुन. सवत् १६३१ मे प्रतिलिपि की गयी थी। उस समय नगर पर महाराजाधिराज भगवन्तसिंह का राज था।[२] इसके पश्चात् आदिनाथ चैत्यालय मे सस्कृत की प्रसिद्ध पुराण कृति हरिवंशपुराण की प्रतिलिपि की गयी। उस समय महाराजा मानसिंह का शासन था। सवत् १७१२ में आर्यिका चन्द्रश्री ने दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियो मे चातुर्मास किया। उनकी शिष्या नान्ही ने उस समय अष्टान्हिका व्रत रखा और उसके निमित्त

---

१. सागानेरि सुथान में, देश ढूंढाहडि सार।
   ता सम नहि को और पुर, देखे सहर हजार।।

२. उपनौ सांगानेरि को, अब कामागढ वास।
   यहाँ हेम दोहा रचे, स्वपर बुद्धि परकास।।

१. ग्रन्थ सूची प्रथम भाग-पृष्ठ सख्या ३८४।

२. ग्रन्थ सूची तृतीय भाग-पृष्ठ सख्या ७८।

धर्म परीक्षा की प्रति करवा कर मन्दिर में विराजमान की।[3] १८ वीं एवं १६ वीं शताब्दी में यहाँ ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने का कार्य बराबर चलता रहा। जयपुर के ग्रन्थ भण्डारों से पचास से भी अधिक ऐसी पाण्डुलिपियाँ होगी जिनका लेखन कार्य इसी नगर मे हुआ था। प्रतिलिपि करने वाले पण्डितो मे पं० चोखनन्द, पं० सवाई-राम गोधा एव उनके शिष्य नानगराम का नाम उल्लेखनीय है।

साँगानेर जैन एवं वैष्णव मन्दिरो की दृष्टि से भी उल्लेखनीय नगर है। यहाँ का संघी जी का जैन मन्दिर राजस्थान के प्राचीन एव कलापूर्ण मन्दिरों में से एक मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण १० वी शताब्दि मे हुआ था। मन्दिर के चौक में जो वेदी है उसकी बांदरवाल मे संवत् १००१ का एक लेख अंकित है।[4] जिसके अनुसार मन्दिर का निर्माण सवत् १००१ के पूर्व ही होना चाहिये।

इस मन्दिर की कला की तुलना आबू के दिलवाडा के जैन मन्दिर से की जा सकती है। जिसका निर्माण इसके बाद मे हुआ था। मन्दिर का द्वार अत्यधिक कला-पूर्ण है और चौक मे दोनो ओर स्तम्भो पर किन्नर-किन्नरियाँ विविध वाध्य यन्त्रों के साथ नृत्य करती हुई प्रदर्शित की गयी हैं। उनके हाथ में फूलो की माला है तथा वे चवर करते हुए दिखलाये गये है। दूसरे चौक मे जो वेदी है उसके तोरणद्वार एवं बाँदरवाल अत्यधिक कला पूर्ण है और ऐसा लगता है जैसे कलाकार ने अपनी सम्पूर्ण कला उन्ही मे उडेल दी है। कलाकार के भाव एकदम स्पष्ट हैं और जिन्हे देखते ही दर्शक भाव विभोर हो जाता है। इसी चौक के दक्षिण की ओर गर्भ-गृह मे सवत् ११८६ की श्वेत पाषाण की भगवान पार्श्वनाथ की बहुत ही मनोज्ञ प्रतिमा है जिसके दर्शन मात्र से ही दर्शक के हृदय मे अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न होती है। मन्दिर के द्वितीय चौक के द्वार के उत्तर की ओर 'ढोलामारू' का चित्र अंकित है। जिससे पता चलता है कि ११ वी शताब्दि मे भी ढोला मारु अत्यधिक लोकप्रिय था। मन्दिर के तीन शिखर सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के प्रतीक है।

जैन मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ का साँगा बाबा का मन्दिर भी अत्यधिक लोकप्रिय एवं इतिहास प्रसिद्ध मन्दिर है। जहाँ साँगा बाबा के चित्र की पूजा की जाती है। यहाँ एक सोगेश्वर महादेव का मन्दिर है जिसका निर्माण राजकुमार साँगा

---

३. ग्रन्थ सूची पंचम भाग–पृष्ठ सख्या ११६।

४. सवत् १००१ लिखित पण्डित तेजा शिष्य आचार्य पूर्णचन्द्र।

ने कराया। एक जनश्रुति के अनुसार राजा मानसिंह की कहानी जुड़ी हुई है तभी से "साँगानेर का साँगा बाबा लाये राजा मान" के नाम से दोहा भी लोकप्रिय बन गया।

साँगानेर आज भी हाथ से बने कागज एवं विशिष्ट कपड़े की छपाई के लिये प्रसिद्ध है। नगर का तेजी से विकास हो रहा है और इसकी आज जनसंख्या १६००० तक पहुँच गयी है।

तक्षकगढ़ (टोडारायसिंह)

टोडारायसिंह ढूंढाड प्रदेश के प्राचीन नगरो में गिना जाता है। शिलालेखों, ग्रन्थ प्रशस्तियों एवं मूर्तिलेखो मे इस नगर के टोडारायत्तन, तोडागढ़, तक्षकगढ़, तक्षकदुर्ग आदि नाम मिलते हैं। वर्तमान मे यह टोंक जिले मे अवस्थित है तथा जयपुर से दक्षिण की ओर ६० मील है। नगर के चारो ओर परकोटा है तथा परकोटे में कितने ही खण्डहर भवन हैं जिनसे पता चलता है कि कभी यह नगर समृद्धशाली एवं राज्य की राजधानी रहा था। स्वय तक्षकगढ़ नाम ही इस बात का द्योतक है कि यह नगर नाग जाति के शासकों का नगर था। मथुरा एव पद्मावती मे नाग जाति का दूसरी तीसरी शताब्दी मे शासन था इसलिये यह नगर भी उसी समय बसाया गया होगा। ७वी शताब्दी मे टोडारायसिंह चाटसू के गुहिल वंशीय शासकों द्वारा शासित था। १२ वी शताब्दी मे यह नगर अजमेर के चौहानो के अधीन आ गया। इसके पश्चात् टोडारायसिंह विभिन्न शासकों के अधीन चलता रहा इसमे देहली, आगरा एव जयपुर के नाम उल्लेखनीय है। सोलंकियो के शासन में यह नगर विकास की ओर बढने लगा।

अकबर ने सोलकियो से टोडारायसिंह को जीत लिया और आमेर के राजा भारमल के छोटे भाई जगन्नाथ को यहाँ का शासन भार सम्हला दिया। जगन्नाथ राव के शासनकाल मे यहाँ बावडियो का निर्माण हुआ। स्वय महाराजा ने भा अपने नाम की बावडी बनवायी। इसलिये टोडारायसिंह बावडी, दावडी, गट्टी और पट्टी के लिये प्रदेश भर मे प्रसिद्ध हो गया।

टोडारायसिंह जैन साहित्य एव सस्कृति की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नगर माना जाता रहा। राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो में सैंकडों ऐसी पाण्डुलिपियाँ

---

१. प्रशस्ति संग्रह—डा० कासलीवाल—पृष्ठ संख्या ११३।

हैं जिनकी प्रतिलिपि इसी नगर में हुई थी और उनके आधार पर इसे जैन साहित्य एवं संस्कृति का केन्द्र माना जा सकता है। सबसे अधिक प्रतिलिपियाँ १५ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक की मिलती है। संवत् १४६७ मे यहाँ प्रवचनसार की प्रति की गयी थी। संवत् १६१२ में राव श्रीरामचन्द्र के शासन काल में पुष्पदन्त कृत णायकुमार चरिउ की प्रतिलिपि की गयी थी, इसी तरह संवत् १६६४ में जब यहाँ राव जगन्नाथ का शासन था, आदिपुराण (पुष्पदन्त कृत) की पाण्डुलिपि तैयार की गयी थी।[1] संवत् १६३६ में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ब्रह्म रायमल का आगमन हुआ और उन्होंने अपनी आध्यात्मिक कृति परमहंस चौपई की रचना समाप्त की।

१८ वीं शताब्दी में यहाँ संस्कृति के दो उच्चकोटि के विद्वान् हुये। इनमें प्रथम विद्वान् पेमराज श्रेष्ठी के पुत्र वादिराज थे जिन्होंने इसी नगर में संवत् १७२९ में वाग्भट्टालंकारावचूरि–कवि चन्द्रिका की रचना की थी।[3] कवि वहाँ के राजा राजसिंह के मन्त्री थे जो भीमसिंह के पुत्र थे। वादिराज के ही भाई जगन्नाथ थे। ये भी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जगन्नाथ भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के प्रिय शिष्य थे और उनके समय में टोडरायसिंह में संस्कृत ग्रन्थों का अच्छा पठन पाठन था।

यहाँ का प्रसिद्ध आदिनाथ दि जैन मन्दिर सवत् १५९५ में मडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से खण्डेलवाल जाति के श्रावकों ने निर्माण कराया था।[4] उस समय नगर पर महाराजाधिराज सूर्यसेन के पुत्र सौदीसेन तथा उनके पुत्र पृथ्वीराज पूरणमल का शासन था। इसी मन्दिर मे आदिनाथ की जो मूलनायक प्रतिमा है उसकी प्रतिष्ठा सवत् १५१६ में हुई थी।[5] इस मन्दिर में संवत् ११३७ की प्राचीनतम

---

१. वही, पृष्ठ ८९

२. सोलासै छत्तीस बखान, ज्येष्ठ सावली तेरस जान।
सोमैवार सनीसरवार, ग्रह नक्षत्र योग शुभसार ॥ ६४४ ॥
देस भावो तिह नागरचाल, तक्षिकगढ़ अति बन्यौ विसाल।
सोभै वाडी बाग सुचंग, कूप बावडी निरमल अंग ॥ ६४५ ॥

३. श्रीराजसिंह नृपति जैयसिंह एव श्रीतक्षकाख्य नगरी अणहिल्लतुल्या।
श्री वादिराज विबुधो ऊपर वादिराज, श्री सूत्रवृत्तिरिह नंदतु चार्कचन्द्रः ॥

४. आदिनाथ के मन्दिर मे वेदी के पीछे की अंकित शिलालेख।

५. आदिनाथ के मन्दिर में सिवारे में दायी ओर वेदी का लेख।

प्रतिमा है। यहाँ पार्श्वनाथ की दो पाँच फीट ऊँची प्रतिमाएँ हैं जो अत्यधिक मनोज्ञ हैं। इनमें से एक मूर्ति मन्दिर की मरम्मत करते समय प्राप्त हुई थी।

आदिनाथ के समान ही नेमिनाथ का मन्दिर भी विशाल एव प्राचीन है। इसमे नेमिनाथ स्वामी की मूलनायक प्रतिमा है जो अत्यधिक मनोहर एव मनोज्ञ है। ग्राम में उत्तर-पश्चिम की ओर छतरियाँ है वहाँ भट्टारको की निषेधिकाएँ हैं। भट्टारक प्रभाचन्द्र की निषेधिका सवत् १५०६ मे स्थापित की गयी थी। दूसरी निषेधिका सवत् १६४४ मे स्थापित की गयी थी। इन निषेधिकाओ से ज्ञात होता है कि टोडारायसिंह कभी भट्टारको की गतिविधियो का प्रमुख केन्द्र रहा था।

यही पहाड़ पर एक नशिया है जो कभी जैन मन्दिर था तथा आजकल सार्वजनिक स्थान बना हुआ है। मन्दिर के द्वार पर सवत् १८८० का एक लेख आज भी उपलब्ध है।

सवाई माधोपुर

रणथम्भौर दुर्ग की छत्रछाया मे बसा हुआ सवाई माधोपुर महाराजा सवाई माधोसिंह (१७००-६७) द्वारा सवत् १८१६ (१७६२) मे बसाया हुआ प्राचीन नगर है। आजकल यह नगर जिला मुख्यालय है। चारो ओर घने जगल एवं पर्वतमालाओ से घिरा हुआ सवाई माधोपुर की प्राकृतिक छटा देखत ही बनती है। नगर के पास ही घने जगल मे शेरगढ है जो पहले अच्छी बस्ती थी। वहाँ का जैन मन्दिर अपने प्राचीन वैभव की याद दिला रहे हैं।

सवाई माधोपुर जैन मन्दिरो एव शास्त्र भण्डारो की दृष्टि से कभी समृद्ध नगर रहा था। यहाँ के मन्दिरो मे प्राचीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित है मूर्तियाँ भी विशाल एव कलापूर्ण है जिससे पता चलता है कि कभी यह नगर जैन धर्म एव सस्कृति का बडा केन्द्र था। सवत् १८२६ मे सम्पन्न पचकल्याणक प्रतिष्ठा अपने ढग की महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा थी तथा जिसमे हजारो की सख्या मे जैन प्रतिमाये सुदूर प्रान्तों से लायी जाकर प्रतिष्ठापित की गयी थी। इसके प्रतिष्टापक थे दीवान सघी नन्दलाल प्रतिष्ठाकारक भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति थे। उस समय यहाँ पर जयपुर के महाराजा सवाई पृथ्वीसिंह जी का शासन था।

वर्तमान मे यहाँ रणथम्भौर, शेरगढ़ तथा चमात्कार जी के मन्दिर के अतिरिक्त ९ मन्दिर एव चैत्यालय है।

दिगम्बर जैन मन्दिर दीवान जी का विशाल मन्दिर है। मन्दिर तीन शिखरों एवं चार कोनों में चार छत्रियों सहित है। मन्दिर में एक भौंहरा है जिसमें मूर्तियां बिराजमान हैं। यहां हस्तलिखित ग्रन्थों का भी अच्छा संग्रह है। जिसमें करीब 300 पांडुलिपियां होंगीं।

नगर का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर सांवला जी का है। सांवला बाबा की मूर्ति मनोज्ञ एवं चमत्कारिक है। इसीलिए जब जयपुर राज्य में वैष्णव जैन उपद्रव हुये उस समय इस मन्दिर को लूटने का प्रयास किया गया था लेकिन मूर्ति की चमत्कार से उपद्रवी कुछ भी नही कर सके। इस मन्दिर में 13 वीं–14 वीं शताब्दी तक की मूर्तियां हैं।

पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर यहां का नवीन मन्दिर है। साम्प्रदायिक उपद्रव में पंचायती मन्दिर को भी लूटा गया तथा नष्ट किया गया। उसके स्थान पर इस मन्दिर का निर्माण कराया गया। यह पंचायती बड़ा मन्दिर पार्श्वनाथ जी का है इसमें हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है। मुसावडियों के मन्दिर का निर्माण साम्प्रदायिक उपद्रव के बाद हुआ। यह नगर सेठ का मन्दिर है।

सवाई मोधोपुर मे जैन कवि चम्पाराम हुए जिन्होंने संवत् 1864 में भद्रबाहु चरित भाषा टीका लिखी। चम्पाराम हीरालाल भांवसा के पुत्र थे।[1] सवत् 1825 में यहां द्रव्य सग्रह की प्रतिलिपि की गयी। इसी तरह पचासों और भी प्रतियां मिलती है जिनकी यहां प्रतिलिपि हुई थी।

देहली

गत सैकड़ों वर्षों मे देहली को भारत का प्रमुख नगर रहने का सौभाग्य प्राप्त है। इसलिये यहां के नागरिको ने यदि अच्छे दिन देखे है तो उन्हें अनेक बार बुरे दिन भी देखने पड़े हैं। तैमूरलग, नादिरशाह जैसे नृशस आक्रमणकारियो ने यहां के नागरिकों पर जो अत्याचार किये थे वह मुसलिम युग में नगर की सस्कृति एव सम्यता को मिटाने के जो बर्बर कार्य किये थे उन्हें याद करते ही पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाता है। लेकिन अनेक अत्याचारो, लूट, खसोट एव विनाश कार्य होने पर

---

1. ग्रन्थ सूची भाग–3, पृष्ठ 212

भी यहां के नागरिकों ने कभी हिम्मत नहीं हारी और अपने साहस, सूझबूझ से संस्कृति एवं धार्मिक विकास मे लगे रहे ।

देहली में जैन धर्म का प्रारम्भ से ही वर्चस्व रहा । जैनो की संख्या, साहित्य-निर्माण एवं धार्मिक तथा सास्कृतिक समारोहो की दृष्टि से इसने देश का मार्गदर्शन किया है । राजपूत काल से भी अधिक सम्मान जैन श्रेष्ठियों का मुसलिम काल में रहा । अलाउद्दीन खिलजी के समय (१२९६–१३९६) मे नगर सेठ पूर्णचन्द्र नामक श्रावक था । बादशाह की उस पर विशेष कृपा थी । सेठ पूर्णचन्द्र के आग्रह वश तत्कालीन दिगम्बर आचार्य माधवसेन देहली आये शास्त्रार्थ मे दो ब्राह्मण विद्वानो को हराया । फिरोजशाह तुगलक के समय देहली में भट्टारक गादी की स्थापना की गई । इसके बाद से देहली भट्टारकों का प्रमुख केन्द्र-स्थान बन गया । राजस्थान के विभिन्न जैन-ग्रन्थ भण्डारो मे १४वी शताब्दी मे देहली नगर मे होने वाली पाण्डुलिपियों का सग्रह मिलता है । जयपुर, उदयपुर आदि नगरो के शास्त्र भण्डारो में १४ वी एव १५ वी शताब्दी की जो पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती हैं वे अधिकाश देहली मे लिपि-बद्ध की गई थी । अपभ्र श के भी कितने ही ग्रथ देहली मे निर्मित किये गये थे । ग्रथो मे ही हुई प्रशस्तियो के आधार पर देहली के जैनों मे साहित्यिक प्रेम का पता लगता है । विबुध श्रीधर ने सवत् ११८९ को देहली मे नट्टल साहू की प्रेरणा से पासणाट-चरिउ की रचना की थी । उस समय यहा पर तोमरवशीय शासक अनगपाल का शासन था ।

ब्रह्म रायमल्ल ने १६१३ मे प्राचीन ग्रन्थो की प्रतिलिपि करके अपना साहित्यिक जीवन देहली मे ही प्रारम्भ किया था । उस समय यहा भट्टारको का चरमोत्कर्ष था । चारो ओर धार्मिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक क्षेत्र मे उन्ही का शासन चलता था । मुगल शासन मे ही देहली मे लाल मन्दिर का निर्माण हुआ जो जैनो के महान् प्रभाव का द्योतक है । ब्रिटिश युग मे भी जैनधर्मावम्बियो ने शासन एव सास्कृतिक गतिविधियो मे अपना प्रभाव रखा । आज भी देहली का जैन समाज साहित्यिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक जागरूक माना जाता है ।

भविष्यदत्त चौपई

भविष्यदत्त चौपई महाकवि की प्रमुख कृति है। इसका रचना काल संवत् १६३३ कार्तिक सुदि १४ शनिवार तथा रचना स्थान सांगानेर है। प्रस्तुत पाठ कृति का प्रारम्भिक अंश है। जो तीन पाण्डुलिपियों के आधार पर तैयार किया गया है। इन पाण्डुलिपियों का परिचय निम्न प्रकार है—

क प्रति — पत्र सख्या ६६। आकार ६ × ७।। इञ्च।

लिपिकाल सवत् १७१६ पौष शुक्ला प्रतिपदा।

प्राप्ति स्थान—साहित्य शोध विभाग, दि० जैन अ० क्षेत्र, श्री महावीरजी, जयपुर।

विशेष—प्रस्तुत पाण्डुलिपि एक गुटके मे संग्रहीत है जिसमें ब्रह्म रायमल्ल की दूसरी कृति हनुमंत कथा का भी संग्रह है। इसके अतिरिक्त सील रासो एवं दान-सील-तप-भावना की चौपई का सग्रह भी है लेकिन दोनों कृतियाँ ही अपूर्ण है। गुटका जीर्ण अवस्था में है।

ख प्रति — पत्र संख्या ६८। आकार ७ × ७ इञ्च।

लेखन काल — संवत् १६६० भादवा बुदि शुक्रवार।

प्राप्ति स्थान — साहित्य शोध विभाग, महावीर निकेतन, जयपुर।

विशेष — प्रस्तुत पाण्डुलिपि एक गुटके मे संग्रहीत है। जिसमे प्रारम्भ के १७ पृष्ठ नहीं है। उसमे चौपई की पद्य सख्या अलग-अलग न देकर एक साथ दी गई है जिनकी सख्या ६१५ दी हुई है। इस पाण्डुलिपि में ६१५ वां पद्य निम्न प्रकार

दिया हुआ है जिसमे स्वयं महाकवि एवं साथ में उनके गुरु का स्मरण भी किया गया है—

मंगल श्री अरहंत जिणिद, मंगल अनन्तकीर्त्ति मुणिंद।
मंगल पढइ करई बखाण, मंगल ब्रह्म राइमल सुजाण ।।६१५।।

पाण्डुलिपि की लेखक प्रशस्ति भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिससे पता चलता है कि यह गुटका आगरा मे बादशाह शाहजहाँ की हवेली मे लिखा गया था। उस हवेली में जौता पाटणी रहते थे। वहाँ चन्द्रप्रभु का मन्दिर था। उस मन्दिर में छीतर गोदीका की पाण्डुलिपि थी जिसे देखकर प्रस्तुत पाण्डुलिपि तैयार की गयी थी। ग्रन्थ प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण है जो निम्न प्रकार है —

संवत् १६९० वर्षे भादवा वद १ सुक्रवार। पोथी लिख्यते पोथी सा. जौता पाटणी दातुका की लिखी आगरा मध्ये पतिसाही श्री साहिजहां की हवेली श्री जलाखाँ कोरची की मध्ये वास जौता पाटणी। सुभं भवतु। श्री चन्द्रप्रभ के देहुरै। सा. छीतर गोदीका की पोथी देखि लिखी।

मनधरि कथा सुणै कोई, ताहि घरि सुख संपति सुत होई।
थोड़ी मति किया बखाण, भवसदंत पायो निर्वाण ।।१।।
प्रशांतमति गभीरं, विश्व विद्या कुलग्रहं।
भव्यौकसरण जीयात, श्रीमद् सर्वज्ञशासन ।।१।।

ब प्रति—पत्र संख्या ६६। आकार ११ × ४ इञ्च।

लेखन काल—संवत् १७८४ जेठ बदि ७ सोमवार।

प्राप्ति स्थान—महावीर भवन, जयपुर।

प्रशस्ति—सवत् १७८४ का जेठ बदि ७ सोमवार। आबैरि नगरे श्री मल्लिनाथ जिनालये। साहां का देहुरामध्ये। भट्टारक जी श्री श्री श्री देवेन्द्रकीर्त्ति जी का सिषि पांडे दयाराम लिखितं जाति सोनी नराणा का बासी पोथी लिखी।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि मे प्रारम्भ में मंगलाचरण एवं प्रारम्भिक में पद्यों की सख्या अलग-अलग दी गयी है। इसके पश्चात् पद्यों की संख्या एक साथ दी हुई है।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अथ भविष्यदत्त चौपई लिख्यते ॥

मंगलाचरण

स्वामी चंद्रप्रभ जिणनाथ । नमौं चरण धरि मस्तकि हाथ ॥
लंछिन कह्यौ चंद्रमा तासु । काया उज्जल अधिक उजासु ॥१॥

चौवीस तीर्थङ्कर स्तवन

आदिनाथ वंदौ जिणदेव । सुर नर फण मिलि धाए सेव ।
अजितनाथ जे वंदौ भाइ । दुःख दालिद्र रोग सहु जाइ ॥२॥

संभवनाथ नमौं गुणवंत । भए सिद्ध सुख लहैं अनंत ।
अभिनन्दण प्रणमौं बहु भाइ । रक्षा करी जीव छह काय ॥३॥

प्रणमु सुमति सुमति दातार । भवियण भव उतारण पार ।
वंदौ पद्मप्रभु जिनराइ । खंडह असुभ कर्म छै जाइ ॥४॥

हरित वर्ण जिणदेव सुपास । वंदत पुरवै भवियण आस ।
चंद्रप्रभ का प्रणमौ पाइ । ऊजल वर्ण सनिर्म्मल काय ॥५॥

प्रणयो पहुपदंत जिननाथ । मुक्ति रमणिस्यौ कीन्हौ साथ ।
नमौं देव सीतल धरि ध्यान । मेल्हाई कौ मोखिस्थान ॥६॥

जिण श्रेयांस नमौं सिरनाइ । स्वामी करौ संजम को घात ।
वासपुजि वंदौ अविकार । उपजै बुद्धि होइ विस्तार ॥७॥

नमौ विमल जिन त्रिभुवन देव । जास पसाई विमल मति एव ।
प्रणमौ जिण चौदह अनंत । काटि कर्म पाल्यो सिव पंथ ॥१०॥

बंदौ विधिस्यौ धर्म जिणिंद । करइ सेव नर इंद फुणिंद ।
सांति नमौ जिण मन वच काय । नाम लेत सहु पातिग जाई ॥११॥

कुंथनाथ जे बंदै कोइ । तिहि कै दुख दलिद्र न होइ ।
अरहनाथ बंदु सुध भाइ । मन वच पूजि र सिव पद जाइ ॥१२॥

मल्लि नमौ ते तहि तप कीयो । कवरि कालि तहि संजम लीयो ।
मुनिसुव्रत बंदौं धरि धीर । सोभा सांवल वर्ण सरीर ॥१३॥

इकुइसमो बंदौ नमिनाथ । मुक्ति रमणिस्यौ कीन्हो साथ ।
नेमिनाथ बंदौ गिरिनारि । तजि काया पहुतौ सिवद्वार ॥१४॥

पारसनाथ करो बंदना । सह्या परिसा कमठ तणा ॥
वीरनाथ बंदो जगिसार । राख्यो धर्म्म तणं व्यौहार ॥१५॥

जिण चौबीस कह्या जिणदेव । हुवा अब छै होइसी एव ॥
तिसहु नमो बचन मन काय । नाम लेत सहु पातिग जाइ ॥१४॥

विरहमाण तिथकर बीस । मन वच काया नमों जे सीस ।
हुवा जेता भूव केवली । ते सहु प्रणमौ आनंद रली ॥१५॥

बहु विधि प्रणमौ सारद माय । भूलो आखर आणं ठाइ ॥
करौ इ प्रसाद बुधि जे लहौ । भवसदंस को सनमध कहौ ॥१६॥

मन बच काय नमो गणधीर । चौदह सै त्रेपन अतिधीर ॥
दीप अढाई चारित धरै । ते सहु नमौ विधि विस्तरै ॥१७॥

देव सास्त्र गुरु बंदो भाइ । बुधि होइ तम्ह तणं पसाइ ।
हौ मूरिख नवि जाणौ भेद । लहौ न अर्थं होइ बहु खेद ॥१८॥

देव सास्त्र गुरु को दे मान । तिहि नै उपजै बुधि निधान ॥
देव सास्त्र गुरु बुंद लही । व्रत पंचमि को फल कहौं ॥१९॥

वस्तबंध

प्रथम वंदा देव अरहंत । नाम लेत सहु पाप नासौं ।
दूजा प्रणमौ सारदा अंथि । पूर्व को अर्थ भाषै गणधर ॥

मुनिवर वंदिया मन मै बहु आणंद ।
व्रत पंचमी प्रणमौ कमलश्री को नन्द ॥२०॥

विषय प्रवेश

चौपई—जंबुदीप अति करै विकास । दीप असंख्य फिरया बहु पास ।
चंद्र सूर्य द्वै द्वै सारी जाति । आवागमन करै दिनराति ॥१॥

मेर सुदर्सन जोजन लाख । तिहि गजदंत बण्या बहु पासि ।
जिणवर भवण सासुता जहां । जिनका जन्म कल्याणक तहां ॥२॥

मेरु भाग शुभ दखिण बसैं । भरथ खेत्र तहां उत्तम बसै ॥
चौथो काल जठै सुभ होइ । पुरिष सिलाका उपजै लोइ ॥३॥

पोदनपुर नगर वर्णन

तिहि मै सुभ कुरु जंगल देस । गढ पोदनपुर बसै असेस ॥
तहा जिणवर कल्याणक होइ । पापी दुखी न दीसै कोइ ॥४॥

मारण नाम न सुनजे जहां । खेलत सारि मारि जे तहां ।
हाथ पाई नवि छेदै कान । सुभद्र लाय ते छेदै पान ॥५॥

बंधन नाह फूल बंधेर । बधन कोई किसहा न देइ ॥
कामणि नैण काजल होइ । हियडै मनुख न कालो होइ ॥६॥

सर्प्प परायो छिद्र जु गहै । कोई किसका छिद्र न कहै ।
गुंगो कोइ न दीसै सुनि । पर अपवाद रहै धरि मौनि ॥७॥

चोरी चोर न दीसै जहां । घडी मीर नैं चोरौं जहां ।
दंड नासको किसही न लेइ । मन बच काइ मुनि दंड देइ ॥८॥

उत्तम कुर जंगल को देस । भली वस्त सहु भरिउ प्रसेस ।
वस्त मनोहर लहि जे घणी । पुजै तहां रली मन तणी ॥६॥

तह मैं हस्तनागपुर थान । सोभा जैसो सुर्ग बिमान ॥
बाग बावड़ी तहां सोभा घणी । वृक्ष जाति बहु जाई न गिणी ॥१०॥

मुनिवर नाथ धरे तहां ध्यान । जाणे सोनों तिणो समान ।
परिग्रहि संग तजे बाईस । करइ ध्यान प्रति ब्रह्म जगीस ॥११॥

रिद्धिवंत मुनिवर प्रतिघणा । वृक्ष फलै सहु छहूरिति तणा ॥
करै घोर तप मन बच काय । उपजै केवल मुक्ति ही जाई ॥१२॥

सेतो ध्यान प्रहरा होई । दुप्रह काल न जाणौ कोई ॥
सोभै भली ताल पोखरी । दीसै निर्म्मल पाणी भरी ॥१३॥

माहि कमलणो करै विकास । जाणिक रवि कियो प्रगास ।
पंथि जण तस मूख पलाई । सीतल नीर वृक्ष फल खाई ॥१४॥

बग्र मांहि जिण चानक घणा । माहै बिंब भला जिण तणा ।
श्रठ विधि पुजा श्रावक करै । गुर का बचन हीयडै धरै ॥१५॥

दान च्यार तिहु पात्रा देइ । पात्र कुपात्र परीक्षा लेइ ।
बिंब प्रतिष्टा जात्रा सार । खरचै द्रव्य श्रापणो श्रपार ॥१६॥

ऊंचा मंदर पौल पगार । सात भूमि उपरि विसतार ।
घरि घरि रली बधावा होइ । कानि पडि नवि सुणि जे कोइ ॥१७॥

राजा नाम राज करै भूपाल । जैसो स्वर्ग इंद्र भौपाल ।
पालै प्रजा चालै न्याई । पुन्यवत घणा पुर राइ ॥१८॥

चोर चबाड न राखे ठाम । गाइ सिंघ पीवै इक ठाम ।
नेम धरम्म षट्‌उ श्राचार । पुण्य पाप को करै विचार ॥१९॥

राणी पुहपावती सुजाणि । गुण लावणि रूप की खानि ।
दुखी दलिद्र मै देवै दान । देव सास्त्र गुर राखै मान ॥२०॥

बसं एक तहां धनिपति साहु । जैन धर्म्म उपरि बहु भाउ ।
पूजा दान करै मनलाई । प्राठै चौदसि प्रन्न न खाई ॥२१॥

पोसौ सामाइक सुभ करै । मन मिथ्यात ताम परिहरै ।।
सुभ आचार सीलस्यौं रहै । पुण्य उदै सुभ भोगस्यौं गहै ।।२२।।

दुजो सेठ धनेसुर वास । बहु लछमी तणै निवास ।
सेठिणी नाम तास हरुणी । गुण लावण्य रूप बहु भरी ।।२३।।

सेठ सेठिनी भोगै भोग । पुत्री भई कर्म संजोग ।
कमलश्री सुभ ताको नाम । बाणी सबै सामौद्रक ठाम ।।२४।।

रूप कला वेवेक चातुरी । सोभै स्वर्ग तणो अपछरी ।
जोवनवंत देखी तसु तात । पुत्री बहु विचारै बात ।।२५।।

पुत्री थान देइ बहु चोइ । कुल सुभ दी (उ) बराबरि होइ ।।
घर वर जोडि देखि व्योपाई । पुत्री पिता विवाहे ताहि ।।२६।।

कमलश्री विवाह वर्णन

सेठि बात मन मैं चितवई । पुत्री धनपति जोगैब दई ।
मडप वेदी रच्या विसाल । तोरण बंध्या मोती माल ।।२७।।

दहु पक्ष बहु मंगलचार । कामणि गावै गीत सुचार ।
वर कन्या कीन्हौ सिंगार । चौवा चंदण वस्त्र अपार ।।२८।।

नाचै तिया करै बहु कोड । वर कन्या कै बांध्यो मोड ।।
वेदी मंडप विप्र आइयो । वर कन्या हथलेवो दीयो ।।२९।।

दुवै पक्ष नर बैठा वाखि । भयो विवाह अग्नि दे साखि ।
पुत्री वरनै दीन्हो मान । कंचन वस्त्र मान सनमानु ।।३०।।

जांमी सजन संतोषिया । वस्त्र कनक त्याइनै बहु दीया ।।
हाथ जोडि धनपतिस्यौं कही । कमलश्री तुम्ह दासी भई ।।३१।।

छोडिउ माण धनेसुर कह्यौ । पुत्री दई[1] तिहि हारियो ।
असो लोक तणो व्योहार । मोह जाल पडियो संसार ।।३२।।

---

१. आइ ।

आगम माव निसाण घाउ । कमलश्री घरि ल्यायो साहु ।
तिया पुरिष बहु भुंजै भोग । पहली सुभ साता संजोग ॥३३॥

वस्तुबन्ध

कमलश्री सुख बहु करै, पूर्व पुन्य तस उदै आइयो ।
लखमीवत गुणनिलौ, सेठ धनपति कंत पाईयो ॥
जिहि का अखिर सिर बह्या, भयो बिवाह संजोग ।
अवर कथा आगै भई ते सहु कह्या पयोग ॥३४॥

कमलश्री का गार्हस्थ जीवन

सुखस्यो सेठ सेठिनि बहु लाउ । दान पुण्य मनि अधिक उछाह ।
मुनि एकाचार्य आईयो । कमल श्री सो पडिगाहियो ॥१॥

पाई पखालि गंधोदिक लेई । ऊंचौ आसण वैसण देई ।
आठ द्रव्य तसु थाली भरी । मुनिवर चरण पुजा करी ॥२॥

मन बच कामा करि बंदना । फासू अन्न दीयो तंखिणा ।
जैसी रिति तैसे आहार । जिहि आहारे मुनि तप विसतार ॥३॥

लेइ आहार दे अखै दान । सेठनी सुख पायो असमान ।
दीयो सिंघासण मुनिवर जोग । हाथ जोडि बुझै तसु जोग ॥४॥

स्वामी बात एक सुणि कहौ । आर्जिका तणौ व्रत कब लहौ ।
मन की सांसौ भांनो बाप । आइ हीया की सहु संताप ॥५॥

मुनिवर बात लही मन तणी । मुनि बोल्यो कमलश्री भणी ।
पुत्री मन रख्या करि धीर । थारै पुत्र होसी वरवीर ॥६॥

पुत्र तणा सुख सारा भोगसी । अंति काल संजम लेईसी ।
सुण्या बचन मन हरिष्यो भयो । तखिण मुनिवर बन मैं गयो ॥७॥

कमलश्री मनि आनंद भयो । मुनिवर बचन गांठि बांधियो ॥
पछिम दिस जे उगै भाण । मुनिवर झूठ न करै बखाणि ॥८॥

सेठ्ठ एक दिन सेवै तिया, उपनौ गर्भ धनेस्वर धिया।
उपनउ सुभ डोहलो सुचंग, पुजा दान महोछा रंग ॥९॥

भविष्यदत्त का जन्म

गर्भ मास नव पूरे भयो, कमलश्री बालक जाइयो।
पुत्र महोछा धनपति साह, द्रवि द्रबं बहुत उछाह ॥१०॥

महाभिषेक जिनेश्वर थान, दुखी दलिद्री जोगे दान।
सुणी बात आयो भूपाल, खरच्यौ द्रव्य देखी भूवाल ॥११॥

सजन लोग बधाई करी, गावै गीत तिया रसि भरी।
धनपति कै घरि जायो नंद, हस्तनागपुर बहु आनंद ॥१२॥

भावभगति पूजा मुनिराय, हाथ जोडि बूझै सुभाइ।
स्वामी बालक काढौ नाम, पूजै महा मनोरथ काम ॥१३॥

बोल्यो मुनिवर कह्यौ विचारि, भविसदंत इहु नाम कुमार।
पुन्यवत इहु होसी बाल, दुर्जन दुष्ट तणौ सिरिसाल ॥१४॥

बधा मुनिवर घरि आइया, मात पिता नै बहु सुख भया।
अन्न पान रस पोखै बाल, हूं ज चंद्र जिम बधै विसाल ॥१५॥

बालक बरस सात को भयो, पडित आगै पढणौ दीयो।
कीया महोछा जिणवरि थानि, सजन जन बहु दीन्हा दान ॥१६॥

गुर को विनौ अधिक बहु करै, मति सबुधि अधिक विसतरै।
घणा सास्त्र का जाण्या भेद, आश्रव बंध कर्म को छेद ॥१७॥

कमलश्री का परित्याग

एक दिवस कर्म को भाइ, उपनौ क्रोध सेठ्ठ अकुलाइ।
कमलश्रीस्यों विनयै भाव, मेरा घर थे वेगिउ जाउ ॥१८॥

बार बार तुम से यौ कहूं, तुममै दीठा सुख न लहूं।
घणौं कहा करिजे प्रलाप, पूरबलौं को आयो पाप ॥१९॥

तुम्ह नै देखो जिम सर्पिणी , हे निरलज्ज निकसि तक्षणी ।
मेरी घर थे कैसी आहु , उपजै हीये बहुत विसंदाहु ।।२०।।

कठिण वचन सुणि स्वामी तणा , कमलश्री बोली तंक्षणा ।
कौण कुकर्म मैं कीयो घणौ , जहि तम बहुत क्रोध उपनौ ।।२१।।

स्वामी मन मै देखौ जोइ , बिण अपराध न काढै कोइ ।
नाहक पसु न घालै घाव , तुम छो माणस कौ परिजाउ ।।२२।।

स्वामी जा को सुखि हो सुखी , थारै दुखि हुं गाढ़ी दुखी ।
माता पिता तुम बांधि बाहु , चित्त विचार करौ हो साहु ।।२३।।

धनपति सेठु कहै सुणि नार , तुम सम तिया नहि ससार ।
कोइ ग्रह मुक करो विकार , तहि थे थारो करै निसार ।।२४।।

कमलश्री ले सास उसास , कंत क्रोध छाडिउ घरबास ।
नैणा नीर करै असमान , चाली मातपिता कै थानि ।।२५।।

दोहड़ा— पाप पुन्य बंधन करै, तिसा उदी पै आइ ।
जे तरु माली सीचही , तिसका सो फल खाइ ।।२६।।

जीवडो बधं सुभ असुभ, करै हरिष विसमाद ।
कुसी आलो कीट जस्यौं, पडै मोह प्रमाद ।।२७।।

कम्मेह बध्यो जीवडो, माडो घणौ पसार ।
मन दोडावै आपणो, पावै नही लगार ।।२८।।

आपण कर्म बुरा करै, अर परनै दे (वे) दोस ।
बावै तिसो जिसो लुणै, हीया न कीजे सोस ।।२९।।

कमलश्री का माता-पिता के घर जाना

चौपई— कमल माता घरि गई , पौलि द्वारि ट्राढो रही ।
देखि बिलखी मात तस तात हीयडा मध्य विचारो बात ।।३०।।

जीमण ब्याह नही कोइ काज , विण कोकी किम आइ आजि ।
कीयो कुकर्म ठाणि मति वुरी , तीह थे सेठु तजी सुदरी ।।३१।।

घर की सुंदरि प्राण आधार, तहि को पुत्र महा सुकमाल।
माता पिता विचारैं जोई, विण अपराध न काढै कोई ॥३२॥

करैं कुकरम सुता सुत कोइ, माता पिता नैं बहु दुख होइ।
रूनी माता कै गलि लागि, हूं पिय काढी कर्म अभागि ॥३३॥

मैं अपराध न कीयो कोइ, विण अपराध दियो दुख मोह।
कोई कर्म उदै आइयो, ताहि थे क्रोध कंत नैं भयो ॥३४॥

कहै माता कमलश्री सुणौ, सुध चित्त राखौ आपणौ।
सासू कंत दुख दे घणौ, सरणाइ घर माता तणौ ॥३५॥

दुखि दलिद्री नैं दिहु दान, भोजन करौ रहौ थिरथान।
सुंदरि मात पिता घरि वास, करैं दुख अति सास उसास ॥३६॥

बहु सुत मंत्री सेठु को जाम, आयो सेठु धनेश्वर ठाम।
पंडित अधिक विवेक सुजाण, कहौ पाछिला सर्व बखाण ॥३७॥

कमलश्री तुम पुत्री जाणि, सजम सील रूप की खांनि।
नाहक सेठि निकालो दीयो, पूर्व असुभ उदै आइयो ॥३८॥

तुम मन माहि सक मति धरौ, सुंदरि का मन कीयौ बुरौ।
हु धनिपति यो समझाउ जाय, दिन दस पांच तुम्हारैं थाय ॥३९॥

बात कहि मंत्री घरि गयो, मात पिता नैं बहु सुख भयो।
पुत्री नैं बहु दीन्हौं मान, कनक बस्त्र सुभ सेज्या थान ॥४०॥

भविष्यदत्त का ननिहाल जाना

कवरि बिदा लीन्ही गुर तणी, भवसदत आयो घर भणी।
दीठो पिता कूर बहु चित्त, क्रोध सरीर हु राता नेत्र ॥४१॥

भवसदंत दिठि न पडि मात, पाडोसनिस्यौं बुझी बात।
ब्योरौ बात सबै तहि भण्यो, जांणि कहीयो वज्र को हण्यो ॥४२॥

बात विचारि कवर चालियो, नाना कै घरि ठाढो भयो।
माता आगैं हुवो खडो, जहां गाइ तहां वाछडो ॥४३॥

भेटी माता रूदन बहु करिउ, भवसदत ह्रीयो गहि भरिउ।
मात तणा ग्रांसु पूछेइ, सीतल वचन संबोधन देइ ॥४४॥

माता मेरी जाणौ बात, सुभ भर ग्रसुभ करम कै साथि।
कातर भूलि चित्त मति करै, पाप र पुन्य भोगया सरै ॥४५॥

वस्तुबन्ध

कंत क्रोध कीयो घणौ, कमलश्री बहु दुख पायो।
हसि हसि कर्म जु बंधिया, पूर्व पाप तसु उदै ग्राइयो ॥

दुख सुख मनि ग्रावै घणो, चित्त करै ग्रभिमान।
पुत्र सहृत सारह सुंदरी, रहै पिता कै थानि ॥

धनदत्त सेठ

बसै नग्र बाण्यो धनदत्त, दया दान ग्रति कोमल चित्त।
मत मिथ्यात सबै परिहरै, जैन धर्म को निहचो करै ॥४६॥

तिया मनोहर सील सुजाणि, गुण लावण्य रूप की खानि।
सकति सहृति बहु विधि दे दान, देव सास्त्र गुरु राखै मान ॥४७॥

वणिक विणाणी भोगै भोग, पुत्री भई कर्म संजोग।
पुन्यो चंद्र बण्यौ मुख तास, नैणा सोभै कमल विकास ॥४८॥

सजन लोग देखि तस रूप, सुर कन्या थे ग्रधिक ग्रनूप।
जिणवर थांन महोछा कीयो, तहि कौ नांव सरूपां दियो ॥४९॥

दूंज चद्र जिम बधै कुमारि, देखि रूप तसु चित्त विचारि।
वर व्योहार सुपुत्री भई, निस वासरि सहु निद्रा गई ॥५०॥

मंत्री धनपति को ग्राइयो, वणिवर धनदतस्यौ बीनयो।
पुत्री तणी करी जाचना, मान बडाई दीन्हा घणा ॥५१॥

स्वरूपा के साथ धनपति सेठ का विवाह

दुवै बराबरी कुल ग्राचार, करौ बिवाहु न लावो वार।
बात सुणी सहु मंत्री तणी, धनपति जोगि दई लक्षणी ॥५२॥

सेना सेर सु मंत्री गयो, धनदति वणिस्यौ बिनवो।
ब्याहु तणा होई मंगलचार, कन्या बर नौ बनौ बहुत सिंगार ।।५३।।

मंडप वेदी करें विकास, कनक कलस मेल्हा चहुपासि।
वर कन्या नैं भवो समान, चोवा चदन फोकल पान ।।५४।।

भई नफोरी नाद निसाण, बंदी जन बहु करैं बखाण।
धनपति ब्याहु पहुंतो जहां, कवीर सरूप मानक तहां ।।५५।।

चौरी मांझि विप्र आइयो, लगन महुरत्त सुभ साधियो।
कन्या बर का जोड्या हाथ, मेल्हा पान सुपारी काथ ।।५६।।

भावारि चारि फिरायो सुभ साहु, अग्नि साखि दे भयो विवाहु।
धनदत्त देइ दाईजौ घणौ, हाथ छुडायो पुत्री तणौ ।।५७।।

भयो ब्याहु बहु मंगलचार, दान मान जौणार सुचार।
जानी सहु संतोषिया समान, बस्त्र पटबर फोफल पान ।।५८।।

साथि सरूपा धनपति लेइ, आयो घरि दान बहु देइ।
सुख पायो बहु आनद भयो, कमलश्री नैं बीसरि गयो ।।५९।।

भोगवि भोग देव समान, भोजन बस्त्र सुपारी पान।
सुख सेथी केइ दिन गयो, गर्भ सरूपा जोगैं रह्यो ।।६०।।

बन्धुदत्त का जन्म

जब पुरा हुवा नवमास, भयो पुत्र अति करै विकास।
बालक जन्म महोछो कीओ, बहुत दान बंदी जन दीयो ।।६१।।

कीयो महोछो जिणवर थान, देव सास्त्र गुर दीन्हौ मान।
गीत नाद अति मंगलचार, बंधूदत्त तसु नाम कुमार ।।६२।।

अन्न पान रस पोखै बाल, गुण चतुराइ बहुत बिसाल।
बालक पंडित आगै पढियो, गुरू को गुणाहू अति पढियो ।।६३।।

साथि मित्री बधूदत्त कुमार, बन क्रीडा करि बाल बिचारि।
बोल्यो मित्र सेठ का नंद, मित्र मनोहर मनि आनंद ।।६४।।

रत्नदीप जा जे व्यापारि, द्रव्य विढजे अधिक अपार।
दान पुन्य कीजे इह लोइ, मुनिष जन्म तस सफलो होइ ॥६५॥

पिता तणी लखमी भोगवं, तहि का दोष कहो को कहै।
लखमी पिता मात सम जाणि, सेवत लहै दुख की खानि ॥६६॥

मु जो आपणी बढवै दाम, तहि को सरं सबहि काम।
खरचै हरत परत सुख लेइ, मान बडाइ सहु कोइ देइ ॥६७॥

उद्दिम बिना न लक्ष्मी सार, तहि थे उद्दिम करं कुमार।
लक्ष्मी जहाँ सुद्ध व्योहार, लखमी जहाँ सत्य आचार ॥६८॥

सति की लीखमी विदवै खाई, तिहि का घर थे कहै न जाई।
लखमी सदा सत्य को दासि, राति दिवस तिष्टं तहि पासी ॥६९॥

बात हमारी हियडं धरौ, रत्न दीप जोमं गम करौ।
सुण्या वचन सहु मंत्री तणा, मन मै आचिरज पायो घणो ॥७०॥

भली बात तुम्ह कहा विचारि, उद्दिम करं मिलि चारि।
बधूदत्त मित्रीह करी बात, आए घरी पिता जाहा मात ॥७१॥

बधूदत्त पिता पं गयो, नमस्कार करि सो बोलियो।
बीनती सुणौ हमारी बात, तुमस्यों कहा चित की बात ॥७२॥

झूठ बोलि जे विढवो दाम, ते सहु करं अजुगतो काम।
मन मै हरिषं मुढ गुवार, तहि को अपजस जानि संसार ॥७३॥

बणिक पुत्र माडं व्यापार, खेती करसण करं गवार ॥७४॥

बन्धुदत्त द्वारा विदेश यात्रा का प्रस्ताव

मेरा विणज करण को भाउ, रत्नदीप प्रोहण चडि जाउ।
आणौ द्रव्य विणज करि घणौं, दान पुन्य खरचो आपणो ॥७५॥

पूंजी प्रोहण दीजे तात, बणिवर चालै हमारे साथि।
बडो पुत्र होइ विढवै दाम, मात पिता ले जिण का नाम ॥७६॥

पिता का परामर्श

संभलि सेठ पुत्र की बात, हरिष्यो चित विकास्यौ गात।
हौ पुत्र तुम्ह कुल आधार, थारो कहिबा की ब्यौहार ॥७७॥

सीत बात दुख बाहरि घणा, चोरा डरिप हरै नागणी।
नरकति सब बराबरि कहारै, तहि थे थारी कुगती न हो ॥७८॥

आगै सागर महा विषाद, मगरमछ भैभीति अगाध।
हम तौ बात बड़ी पै सुणी, जाइ न थोडी पुन्य कीधणी ॥७९॥

कष्ट कष्ट करि लेवै पार, बस्त न आवै लहै लगार।
लेइ बस्त पाछे बाहुडै, कम्मं जोग प्रोहण खड भडै ॥८०॥

लीन्यो रति का सुख विलास, घरि बैठा सुख भुंजौ तास।
सीख हमारी हियडै धरो, दान पुन्य धरि बैठा करो ॥८१॥

बन्धुदत्त का उत्तर

बधुदंत हसि बोल्यो बात, वीनती एक सुणी हो तात।
बाप तणी मै लखमी सुणी, लोगा मात बराबरि गिणी ॥८२॥

अब हम ऊपरि करहु पसाउ, रत्नदीप नैं भेरो भाउ।
धनपति सुणी पुत्र को स्वाद, मन माहे पायो अहलाद ॥८३॥

तेरा वचन सही परमाण, लेहु किराण बस्त निधान।
वणिक पुत्र जहाँ पंचसै भया, बंधुदत्त की साथे दिया ॥८४॥

राजा आगै चाली बात, बंधुदंत व्यापारा जात।
राजा बोलै मन मै जोई, वणिवर पुत्र कुलाक्रम होय ॥८५॥

बन्धुदत्त की राजा से भेंट

धनपति बंधुदत्त ले गयो, राजा आगै ठाढौ भयो।
कीयो जुहार भेंट ले धरी, हाथ जोडिउ बनती करी ॥८६॥

राजा जी हम आग्या होइ, रत्नदीप जावै सहु कोइ।
राजा मन मैं कीयो विचार, कीया सेठि बंधुदत्त कुमार ॥८७॥

बीडा बसत्र दीया करि भाउ , वणिवर मध्यि सारथ बाहु ।
मत्र माँझि पट है बाजियो , बंधुदत्त सागरगम कीयो ।।८८।।

जहि को मन चालण को होइ , लेइ बसत्र चालैं सहु कोई ।
सुणि बात मन हरिखो भयो , वाण्या बहुत किराणा लीयो ।।८९।।

भविष्यदत्त द्वारा माता के सामने विदेश यात्रा का प्रस्ताव

भवसदंत सहु ब्यौरा सुण्यौ , वेगा जाय मातास्यौ भणी ।
हमनं दुबो दीजे मात , चालौं बधुदत्त का साथि ।।९०।।

मोहि दीप देखण को भाउ , साथि चालै पंच सौ साहु ।
मनुषि जन्म संसारा आइ , ताकी बस्तु देखिजे माई ।।९१।।

कमलश्री के विचार

पुत्र वचन सुणि कमलश्री , कहै बात सा मन मैं डरी ।
हियडै पुत्र बिचारो बात , बधुदंत तुम ऐको तात ।।९२।।

दुष्ट भाउ तुम उपरि करैं , बधुदंत्त संग मति फिरैं ।
तुमनै बैरी करि करि गिणै , यह तो बात पुत्र नवि बणै ।।९३।।

दोहडा— बैरी विसहर सारिखो, तिहिं नीडै मत जाई ।
बैरी मारै डावदे, विसहर चंपै खाई ।।९४।।

बैरी बिसहर अब डसैं, उषध करैं महंत ।
बिसहर मंत्र ऊतरै, बैरी तंत न मत ।।९५।।

बैरी बट पाडो बागुस्यो, नाहर डाइणि चाड ।
ऐना होई न आपणा, निश्चै करै विगाड ।।९६।।

चौपई— कमलश्री सांभली बात , भवसदंत्त बोल्यो सुणि मात ।
जे कोइस्यौं करै उठाउ, तब सं बैरी चालै धाउ ।।९७।।

सुध नीति मारग ब्योहरै, तहि को दुरजन कायौं करै ।
जो छै साथि पचसै साहु ,मुंठ सांच को करसी न्याउ ।।९८।।

होसी सही बुरा को बुरो, कहूं बात को डर मत करो।
भलै भलाइ होसी मात, देखि दीप आवु कुसलात ॥९९॥

भविष्यदत्त द्वारा विदेश-प्रस्थान

नमसकरि माता नै करि चाल्यो, तक्षण बंधुदत्त नै मिल्यौ।
भासी लघु भाईस्यों बात, हम पणि चाला तुम्हारै साथि ॥१००॥

बंधुदत्त मनि आनंद भयो, भाइ तणा चरण बंदियो।
अब बल हम हुते अनाथ, तुम चालता हम बहुत सुनाथ ॥१०१॥

तुम सहु लाज गाज का धणी, स्वामी खिजमत करिस्यां घणी।
तुम सहु टाडा का प्रधान, मेरै पुज्य पिता को थानि ॥१०२॥

बन्धुदत्त को माता द्वारा सिखाना

ऐसहु बात सुणी रूपणी, सुत नै सीख देइ पापिणी।
बडो पुत्र इहु धनपति तणौ, लैसी द्रव्य सबै आपणो ॥१०३॥

अवसदंत को करसी स्वास, जहिथें होइ जीव को नास।
घणी बात को करे पसार, बैरी को कीजे संघार ॥१०४॥

विदेश यात्रा पर प्रस्थान

सुण्या वचन जे माता कह्यो, मन मै दुष्टाई करि रह्यो।
लीयो महुरत तिथि सुभवार, चाल्यो दीप नै बंधुदत्त कुमार ॥१०५॥

दही दो वणकि आवल दीया, सुगन सबै मन बछित भया।
पहुचावण चाल्या सहु लोग, दीयो नारेल बधुदत्त जोग ॥१०६॥

वणिवर चाल्या पंचसै साथ, सजन लोग मिल्या भरि बाथ।
मिल्यो पुत्र नै सेठ घरि गयो, अतर तर परवत बहु भयो ॥१०७॥

लंघी नदी बाहाला खल, वनै पर्वत दीठा असराल।
चले बहुत दिवस वर वीर, कर्म जोग पकडी जल तीर ॥१०८॥

कोइ दिन लीयो विसराम, सुखस्यौं समद तटि ठाम।
लग्न महुरत ले सुभवार, इष्टदेव की पूजा सार ॥१०९॥

दाम दिया धीवर नै घणा, खडे करे प्रोहण आपणा।
धीवर मन मै हरिष्यो भयो, वणिक वस्त प्रोहण मैं दियो ॥११०॥

मगरधुज बंद तक्षणा, सुभट वलाउलानी घणा।
नाम पच परमेष्टी लीया, समद मध्य प्रोहण चालिया ॥१११॥

कर्म्म जोगि बाजियो कुबाउ, मोगर रालि रह्या तहि ठाम।
सुभ संजोग बहुत दिन गयो, दुष्ट सुभाइ पवन बाजियो ॥११२॥

लीयो मुदगर वेगि उचाइ, चाल्यो पोत पवन कै भाइ।
सबही के मन हरिक्ष्यो भयो, आगे मदनदीप देखियो ॥११३॥

मदन द्वीप में आगमन

षड लाकडी तहाँ उत्तम नीर, वृक्ष जाति फल गहर गंभीर।
देख्यौ थानक सोभा भली, सब ही मन की पुजै रली ॥११४॥

वणिकपुत्र सब ही उतरे, मागै पाणी बासण भरे।
मीठा फल लीया भरि पूरि, षड लाकडी बहु लीया ठूर ॥११५॥

भवसदत्त फल लेवा गयो, बधुदत्त पापी देखियो।
बात विचारी माता तणी, मन मैं कुमति उपजी घणी ॥११६॥

लोग बुलाया बडहर तणा, बंधी धुजा वेगि तक्ष्णा।
वणिक पुत्र तब बोल्या एव, भवसदंत नै आवा देइ ॥११७॥

बोल्यो पापी नेत्र चढाई, भवसदत्त हमनैं न सुहाइ।
पापी नै नवि लेस्या साथि, परतक्ष सत्रु मारै साथि ॥११८॥

भविष्यदत्त को वन में छोड़कर आगे बढ़ना

भवसदंत वन मै छाडियो, पापी प्रोहण ले चालियो।
सेठ पाँचसै आंसु भरै, असा काम नीच नवि करै ॥११९॥

भवसदत्त फल ले आइयो, देखउ पोत न दुख पाइयो।
मन मै हीं सोक करै कुमान, कही विधाता भूल्यो थान ॥१२०॥

ग्रोहण दूरि जात देखिया, कर उचौ करि हेला दिया।
मनि पछितावा करी पुकार, हो फल लेबा गयौ बंवार ॥१२१॥

भविष्यदत्त द्वारा पश्चाताप करना

झुमस्यौ माता कही थी बात, दुष्टि पापी को न करसी साथि।
माता वचन अंग्यूण्या सोई, तिहि का फल लागा मोहि ॥१२२॥

अथवा कर्म हमारा दोस, जीवडा मन मै न करी रोस।
जेसौ कर्म उपावै कोइ, तैसो लाभ तिहीं नइ होइ ॥१२३॥

वन भैभीत अधिक असराल, सुवर संबर रोझनि माल।
चीता सिंघ दहाडा घणा, बांदर रीछ महिष माकणा ॥१२४॥

हस्ती जुथ फिरै असराल, सारदूल अष्टापद बाल।
अजिगर सर्प्प हरण संचरै, भवसदंत तिहि वन मैं फिरै ॥१२५॥

मुरछी आई भूमि गिरि पडै, चेत उसास्व बहु तडफडै।
ऊँचा नीचा लेई उसास, सरणाइ कोइ नवि तास ॥१२६॥

झांखत झांखत करै दुख घणौ, दीठो थांनक पाणी तणो।
वृख असोक सीला ठाम, भवसदंत लीयो विसराम ॥१२७॥

छांणि नीर दूनै करि लीये, हस्त पाइ मुख प्रखालियो।
नाम पच परमेष्टी लीया, अतिथ अभागि तनौं फल मेलिया ॥१२८॥

पाछै फल को कीयौ आहार, जल आचमन लीयो कुमार।
दिन गत गयो आथयो भाण, पथी सबद करै असयान ॥१२९॥

वस्तुबन्ध

भाई वन मैं छाडियो, भवसदत्त बहु दुख पाइयो।
महा अरण डरावणौ, पूर्व कर्म तसु उदै आइ ॥

पच परम गुर हीये धरि तिही लीयौ जोग अभिनास।
वृख तले निद्रा भइ भयो भानु परगास ॥१३०॥

चौपई— गई रैनि दिणिगर ऊगियो, जै जै कार भवसदंत कीयो।
हाथ पाइ मुख प्रखालियो, नाम पंच परमेष्टी लीयो ॥१३१॥

उदिम करि चालियो कुमार, पंथ पुराणी दीठौ सार।
मन माहै सो चिंता करै, गगनदेव विद्याधर फिरै ॥१३२॥

व्यापार जे आवै लोग, ते चढि जाइ पोत संजोग।
भवसदंत कीयौ दृढ चित्त, चाल्यो बेगि पुराणौ पंथ ॥१३३॥

मदन द्वीप का वर्णन

आगै पर्वत देखि उतग, उपरि सोभा कोटि सुचंग।
आगे गुफा देखि इक भली, तिहि मै बाट मनोहर चली ॥१३४॥

चालत चालत आघो गयो, आगै उतिम वन देखियो।
कुवा बावडी पुहे करताल, एक क्षेत्र देखि सुकमाल ॥१३५॥

फुलत फसत देखि बनराइ, भयो हरिष अति अगि न माइ।
छत्री मडप देखी चोवगान, बैसक महा मनोहर थान ॥१३६॥

गढ आगै देख्यो निर्वास, खाइ कोट बण्या चहुंपासि।
खोलि कपाट भीतर गयो, मानिख नग्र सुनो देखियो ॥१३७॥

देख्या मंदिर पौलि पगार, धन कण भरि तहाँ हाट बाजार।
बस्त्र पदारथ बहुली जोई, सूनौ मनिक्षा[1] न दीसै कोइ ॥१३८॥

फिरत फिरत सो आघो गयो, राजा के मंदिर देखियो।
महा सिंघासण सोना तणौ, छत्र चमर देख्या अति घणौ ॥१३९॥

द्रव्य तणी दीठा भडार, बस्तकपुर आभरण अपार।
सज्या थान मनोहर सुध, चोवा चदन बास सुगध ॥१४०॥

जिन मन्दिर

सोवन कलस सिखर सोभति, उपरि महाधूजा हलकंत।
दीठा बहुत अन का गरा, हस्ती बाजि पाइगा खरा ॥१४१॥

---

१. मनुष्य।

देखित मालो आयो खडिउ, चंद्रप्रभु मंदिर दिठि पडिउ ।
महा सिखर बहुरत्न जडिउ, आणि विश्रासा आपण घडिउ ॥१४२॥

चौरी मंडप बण्या सुचंग, चदवा तोरण निर्मल रंग ।
सोवन थंभ सभा का थान, सोभा जैसी सुर्ग बीमान ॥१४३॥

देखी बावडी उत्तम नीर, हाथ पाइ मुख धोये नीर ।
पंथ सोधना करै कुमार, पंच हुतौ मध्य उघाड्यो द्वार ॥१४४॥

जिन स्तवन एवं पूजा

जय जयकार कीयो जगनाथ, नम्या चरण धरि मस्तकि हाथ ।
दीन्ही तीनि जु परदक्षणा, गुण ग्राम भास्या जिनतणा ॥१४५॥

जै जै स्वामी जग आधार, भव संसार उतारै पार ।
तुम छो सरणाइ साधार, मुझ ससार उतारो पार ॥१४६॥

मूल्या पंथ दिखावण हार, तुम छौ मूकति तणा दातार ।
....॥१४७॥

चरण जिणेसुर पुजा करै, सुग्र अपछरा निहूचै वरै ।
विनती सुणै हमारी नाथ, कुमती कुसात्र निरोधो साथ ॥१४८॥

करी वदना सरसी गय धोवति वसत्र सनपन कीयो ।
आगै द्रव्य एकठा कीया, चंद्रप्रभ पूजा चालिया ॥१४९॥

बघा जाई जिणेस्वर देव, सनपन चरण पधारचा एव ।
पाछै पुजा रचि विस्तार, सोवन झारी नीर सुचार ॥१५०॥

महागंग जल माझि कपूर, सर्व ऊषध मिलै हूरि ।
फासु निर्मल महा सुवारि, जिनपद आगै दीन्ही धार ॥१५१॥

कुंकम चदन घसि बांवनौ, मझि कपूर मिलाये घणौ ।
वास सुगधक चोली भरी, जिणवर चरण चरचा करी ॥१५२॥

गरडोराइ भोग सुबास, सोमै दुतिया चंद्र उजास ।
अखित वास भवर ले गुंज, जिणपद आगै कीयो पुंज ॥१५३॥

चंपौ जुही पाडल जाइ, बोलश्री करणौ मही काइ।
जास सुगंध भमर ले बास, जिणपद आगै पोप सुबास ॥१५४॥

नालिकेर का कान्हाठुर, मिश्री दाख बिदाम खिजुरी।
सोवन थाल हाथि करि लीयो, जिणपद आगै नेवज दीयो ॥१५५॥

भीमसेणि कपूर सुबास, भई आरती बहुत उजास।
रत्न खिचित आरती लीयो, जिण चरण आगै फेरियो ॥१५६॥

अगर महा किसनागर सार, चंदन सुभ बावनौ तुषार।
रत्न धोपाईणौ भरि लेईयो, जिण चरण आगै फेरियो ॥१५७॥

नालिकेरि पुंगी दाडिमी, मातुलिंग नीबू नारिंगी।
नैणा देख विगास अपार, जिण चरण आगै विसतार ॥१५८॥

जल चदन अक्षत सुभमाल, नेवज दीप धूप विसाल।
उपरि नालिकेर मेल्हिया, जिण चरण आगै फेरिया ॥१५९॥

भवसंदत करि पुजा भली। पूगी सब ही मन की रली।
दीठौ मडप उतिम ठाम, सूतौ तहां लियौ विश्राम ॥१६०॥

पथ श्रम बहु निद्रा भई, सुणहु कथा जे आगै भई।
पूर्व विदेह सु सोभामली, जसोधर तिष्टै केवली ॥१६१॥

सुरनर फणि तसु आया सेव, नमस्कार करि बैठा एव।
अच्यत इद्र तहि जोइया हाथ प्रसन एक बुझै जिननाथ ॥१६२॥

अचुतेन्द्र द्वारा प्रश्न

पहलौ धनमित्र (मित्र) मुझ तणौ, रहै कहा सो थानक भणौ।
केवली भणै इद्र सुणि बात, तहिकौ कहौ सबै विरतांत ॥१६३॥

केवली भगवान द्वारा उत्तर

क्षेत्र भरथ कुर जंगल देस, हस्तनागपुर बसै असेस।
धनपति सेठ तणौ तहा बास, भवसदत नंदन छै तास ॥१६४॥

प्रोगण चढिउ करण व्यापार, मदन दीप दीठो अतिसार।
बेर भाव लघु भाइ कीयो, भिन्न भिन्न कै भाई को जीयो ॥१६५॥

पंथ पुराणो देख्यो बाल, देख्यो तीलकपुर महा विसाल।
चंद्र प्रभ को थानक जहाँ, सीतल मंडप सूतो तहां ॥१६६॥

कन्या रूमावसाण परिणषी, द्वादस वृख तहा तिष्टिसी।
कामणि संपति बस्त निधान, ले पहुच सी पिता कै थानि ॥१६७॥

राजादेसी बहु मनमान, अर्द्धराज तसु कन्यादान।
अंति कालि सो संजम लेइसी, तप कर सुभ थांनक पहुंचसी ॥१६८॥

पूर्व भव के मित्र द्वारा सहायता

सुणी बात सुरपति सुख भयो, नमस्कार करि सो चालियो।
भवसदत्त सूतो तहां गयो, देखत मन मैं बहु सुख भयो ॥१६९॥

मन मैं इन्द्र बिचारै बात, सुतो नही जगाउं भ्रात।
षडही डलो हाथि करि लीयो, अक्षर भीति लेख लेखियो ॥१७०॥

उद्दिम करि जागी हो मित, सावधान होइ कैचित्त।
बेगौं उतर दिसनै जाहु, मन्दिरि सोभा बहुत उछाहु ॥१७१॥

पच भूमि उत्तंग अवास। कन्या एक रहै तहां बास।
सा भवषाणरुव तसु नाम, बाणी सबै सामोद्रीक ठाम ॥१७२॥

परणौ भोग कोतोहल करो, संका को मन मै मत करो।
पुर्व पुन्य आयो तुम तणों, थोडो लिख्यो आणि जो घणों ॥१७३॥

एतो इंद्र लिखयो लेख सभाय[1], माणिभद्र में दीन्ही साख।
तिया संपदा सहित कुमार, रच्या बीमाण बहुत विसतार ॥१७४॥

---

१. क प्रति–एतो इंद्र लिखयो लेख सभाय।

कुरजंगल हथणपुर नाम , छाडिउ मात पिता को ठाम ।
माणिभद्र की बध्यो बाह , इंद्र सुरगि गयो बहुत उछाहु ।।१७५।।

निद्रा तजि कुमर जागियो, तंक्षण भीत ह्रिसौं चित गयौ ।
मन मैं अचिरज पायो घणौ , योहतौ लेख तुरत ही तणौ ।।१७६।।

भवसदत्त नौ भयो गुमान , आयो कोण पुरुष इहि थान ।
वाचै लेख बहुत निरताइ , तिम तिम मन कौ सांसौ जाइ ।।१७७।।

अभिप्राय लेख को लियो , तंक्षण सुदरि मन्दिर गयो ।
भूमि पचमी चढउ कुमार, धामै जड्यो देखियो द्वार ।।१७८।।

भविष्यानुरूपा में भेंट

भौसदंत्त बोलियो सुजाण , खोलि कपाट रूपमोसाण ।
मन माहै वत करो बिचार , हौ आयौ तेरो भरतार ।।१७९।।

सुणी बात मानियो गुमान , आयौ पुरिष कोण इहि थान ।
मन मैं चिंता उपनी धणी , सब सरीर चाली कापिणी ।।१८०।।

बन देवी कहै तसु जाग , पुत्री छोडि हीया को सोग ।
सुभ साता आइ तुम भली , ती थे जुगति कत की मिली ।।१८१।।

कवरि बचन सुणि देवी तणा , जुगल कपाट खोलि तंक्षिण ।
भवसदंत्त भितरि चालियो , साच बचन तहिस्यों ऊचारियो ।।१८२।।

सिंघासण दीन्हौ सुभठाम , थामा अंतरि ठाढी जाय ।
देखि रूप मन भयो विकास , सुर्ग देव मुझ आयो पास ।।१८३।।

अथवा देव जोतिगी कोइ , अैसा रूप मनिक्ष नवि तोइ ।।
कोइहु बन देवता सुचंग , दीसै सोभा निर्मल अंग ।।१८४।।

सकलप विकलप मन मैं होइ , को इहु कामदेव छै कोई ।।
भवसदत्त देखि तस रूप , सुर कन्या थे अधिक अनुप ।।१८५।।

कोइ याह सुर्ग अपछरा कोइ, मांग कुमारि परतखि होइ।
अन देवी तिष्टै इहि थान, भवसदंत मनि भये गुमान ॥१८६॥

देवी नैण न मटकै कोइ, तहि को अंग पसेव न होइ।
भवस्यो भूमि लगै या घणी, तहि ये याह सही मुनिखणी ॥१८७॥

भवसदंत बोलियो बिचारि, झेगो देहि आचमन कुमारि।
मन मैं संका करो न कोइ, विधना लिख्यो न मेटै कोइ ॥१८८॥

सुंदरि भणै सुणो हो नाथ, हम तुम बरसण नो तन[1] बात।
ऐसो कुल कन्या को लाज, पहली ही किम छोडो लाज ॥१८९॥

ले अगोट आचमन दियो, भवसदत मनि हरखो भयो।
उपरा उपरी देइ सनमान, सुखस्यो तिष्टै उत्तिम थान ॥१९०॥

सुंदरि मनि चिंता उपनी, कीजे भक्ति पाहुणा तणी।
भोजन बिंजन महा रसाल, सनान सुगंधी वस्त्र सुकमाल ॥१९१॥

बोवति पट्ट[2] कूली को सार, जिणवर पूजा करै कुमार।
पाछै आयो सुंदरि थान, पाव पखालि बहु दीनों मांन ॥१९२॥

गादी वे इकतीफा[3] तणी, सोवन चौकी सोभा घणी।
सोवन थाल कचोला दिया, निर्मल पांणी प्रखालिया ॥१९३॥

घेवर पचधारो लापसी, जहि नै जीमत अति मन खुसी।
उज्जल बहुत मिठाइ भली, जहि नै जीमत अति मनरली ॥१९४॥

खाटा तोरइ बिंजन भांति, मेल्या बुहुत राइता जाति।
मुग मंगोरा[4] खानी दालि, भात पदस्यो सुगधी सालि ॥१९५॥

---

१. तम क प्रति।
२. पटकुल—ख प्रति।
३. झीका क प्रति।
४. मंडोरा ख प्रति।

सुरहि घ्रित महा[1] निरदोष, जिमत होइ बहुत संतोष ।
सिखरणि दही घोल बहु खीर, भवसदंत्त जिमौ बरवीर ।।१९६।।

दीयो आचमन बीडा पान, चोवा चंदन बास निधान ।
सोझि पालिको थानक सार, समाधान करि दीयो अहार ।।१९७।।

पाछे आपरण भोजन कीयो, उस्लिम नीर आचमन लीयो ।
फोफल पान सुगंध चढाइ, भवसदंत्त नखि बैठो जाई ।।१९८।।

वस्तुबन्ध

तिलक पटण देखि सुविसाल, चद्रप्रभ जिन पूजा कीन्ही ।[2]
पूर्व मित्रेसुर आइयो, लिखो लेख सुभ सीख दीन्ही ।।[3]
सुभ साता आइ उठै, कन्या मिली सुजाणि ।
बहु बिबेक गुण सील विढ, महा रूप की खानि ।।१९९।।

चौपई— कवर भणै तुम सुंदरि सुणौ, भासौ[4] मुझ संसौ मन तणौ ।।
उजड बसे नग्र कौण संजोग, बस्त बहुत नखि दीसै लोग ।।२००।।

भविष्यानुरूपा का परिचय

बोलै सुंदरि सुणौ कुमार, कहौ पाछिलो सहु व्यौहार ।।
मदन दीप जाणै सहु कोइ, इहु तिलकपुर पटण होइ ।।२०१।।

राउ असोन नग्ररी को नाथ, दुर्जन नर को करै निपात ।
बणिवर बसै नाम भगवंत, जैनिधर्म्म विढ राखै चित्त ।।२०२।।

ताकै नागसेणा कामणी, भगति देव गुरु श्रावक तणी ।
हुँ तस पुत्री महा सरूप, नाम दियौ भौसाणह[5] रूप ।।२०३।।

---

१. क प्रति सोहा ।
२ ख प्रति कीनी ।
३. ग प्रति कीनी ।
४ क एवं ग प्रति भानौ ।
५. ख प्रति भौसानसरूव ।

असनवेग इक[1] विंतर दुष्ट, दया रहित अति महा निकष्ट ।
मध्र लोग सागर मैं बोयो, पापी तणौ न कसबयो हीयो ।।२०४।।

थारा पुण्य तणो परभाउ, हौं राखी विंतर करि भाउ ।
सहु समबध पाछिलो जाणि, व्यंतर सहित रहौ इहि थान ।।२०५।।

स्वामी हमस्यो करो बखाण, कौंण देस पट्टण तुम थान ।
कौण नाम तुम पित्ता रु माय, कहो बात हम संसै जाइ ।।२०६।।

भविष्यदत्त का परिचय

भवसदंत्त बोल्यो सुनि नारि, कहौं बात सहु मनि अवधारि ।
भरथ खेत्र कुरजंगल देस, हथणापुर भूपाल नरेस ।।२०७।।

धनपति सेठ बसै तंहि ठाम, तासु तीया कमलश्री नाम ।
भवसदंत्त हो तहि को बाल, सुख मैं जात न जाणै काल ।।२०८।।

दूजा मात सरूपणि पुत्त, पंडित नाम दियो बंधुदंत्त ।
प्रोहण पूरि दीपनै चल्यो, हो पणि साथि तासु कै मिल्यो ।।२०९।।

सो पापी मति हीणो भयो, मदन दीप मुझ छाँडिव गयो ।
कर्म जोगि पट्टण पावियो, इहि विधि तुम थानकि आइयो ।।२१०।।

सुंदरि सुणी कवर की बात, हरिख्यो चित्त विगास्यो गात ।
जाण्यो सबै नांउ व्योहार, दोउ बराबर कुल आचांर ।।२११।।

भविष्यानुरूपा का प्रस्ताव

बोली कामिणी सुणो कुमार, करहु हमारं अगीकार ।
भोग बिना जेइ दिन जाइ, ते दिन वइ न लेखै लाइ ।।२१२।।

मनुक्ष जनम फल कीजे सार, दीसै सहु संसार असार ।
भोगि भेद नवि जाणै कोइ, तेनर पसू बराबरि होइ ।।२१३।।

---

१. क प्रति इव ।

सुणी बात बोलियो कुमार, सुणि कामिनि वृत्त कौ व्योहार ।
दान अदत्ता लीजे कोइ, श्रावक जनम अविर्था होइ ।।२१४।।

भविष्यदत्त का उत्तर

हम जिणवर व्रत चित्तां धरा, दान अदत्ता संग न करा ।
गुरु मुक्त अडिग आखड़ी दइ, मन बच काया मानिब लइ ।।२१५।।

जो नर दान अदत्ता न लेइ, तहि की कीर्ति इन्द्र करेइ ।
दान अदत्ता कीयो तिह्या संग, सत्य घोष मरि भयो भुजंग ।।२१६।।

जौं बितर तुझ देसी मोहि, भोग विलास सवै बिधि होइ ।
वचन हमारा जाणौ सार, श्रावक तणौ कह्यो आचार ।।२१७।।

असनवेग का आगमन

तौ लग असनवेगि आइयो, बहुत क्रोध आडंबर कियो ।
कौण पुरुष आयो मुझ थानि, तहाँ पापी कौ घालौ घाण ।।२१८।।

देव[1] दान सब मुझ तै डरे, मेरा नग्र मैं को न सचरै ।
आवै बहुत मनिषि की गंधि, सागर त्तहि नै रालौं बधि ।।२१९।।

भवसवंत्त उठीयो कलिकारि, आर दे वीढ कहि बात विचारि ।
घणौ कहा कीजे झडाल,[2] आयो सही तुहारो काल ।।२२०।।

भवसवंत्त नै बहु बल भयो, ठोकि कंध सो सनमुख भयो ।
असनिवेगि देखियो कुमार, क्रोध सबै न्हाठो तहि बार ।।२२१।।

दीयो असुर अवधि अब लोइ, मेरो मित्र पूर्बलौ होइ ।
बितर बोलै सुणि हो मित्त, कहौं बात किम करो चित ।।२२२।।

---

१. क ख प्रति— देव दाणा-मुझथी डरे ।
२. ख प्रति – ओंजाल ।

ज्यों सन्यासी तस घर मित्त, सेव हमारी करी बहुत।
गुण तुम तणा चित्त मुझ रह्या, तुम दीठा हमि बहुत सुख लह्या ॥२२३॥

मन वांछित वर मांगो वीर, ते सहु देस्यौ गहर गहीर।
बोलो सुभट बहुत दे मान, क्यों हमनै दीन्हो वरदान ॥२२४॥

कन्या रत्न देहु हम जोग, हम तुम मिल्या कर्म संजोग।
बितर भणै न करो विवाद, मो तुमनै कीमो परसाद ॥२२५॥

बन्धुदत्त और भविष्यानुरूपा का विवाह

व्याहु तणी सामगरी करै, नग्र तणी बहु सोभा धरै।
करीनि कुर्वण बहु विसथार, चौरी मंडप रच्या सोभार ॥२२६॥

गावै अपघरा करि बहु कोड, वर कन्या कै बांध्यो मौड।
साक्ष[2] विप्र वैसांदर भयो, भवसदंत तीया कर गहियो ॥२२७॥

चौथो फेरो करायो कुमार, हाथ छुडावण को प्राचार।
बितरि झारी पाणी लीयो, भवसदंत कै करि मेल्हीयो ॥२२८॥

कन्या नग्र दीयो सहु साज, दीनौ मदन दीप को राज।
वस्त पदारथ भरित भंडार, मोती माणिक सोनों सार ॥२२९॥

बिनो भगीन गुण भाख्या घणा, भवसदंत सेवग तुम तणा।
नमसकार करि दीनी मान, बितर गयो प्रापणै थान ॥२३०॥

भवसदंत सुख सेवो घणो, पूर्व पून्य संच्यो आपणों।
तीया सहित वन क्रीडा करै, देव सासत्र गुरु निश्चै धरै ॥२३१॥

इन्द्रपुरी जिम भुंजै भोग, पीड़ा सुख न जाणै रोग।
भवसदंत इहि विधि सुकमाल, सुख मैं जात न जाणै काल ॥२३२॥

---

१. क ख कोव।

२. ख यति सास्त्र।

वस्तुबन्ध

कमलश्री उरि उपणौ, हस्तनागपुर जन्म पाइयो ।
माता बचन बीसरियो, सत्रु साथि व्यापारि आइयो ।।
मदन दीप मैं छाडियो, भाइ गयो पुलाइ[1] ।
कामनि बहु संपति लही, साता उदै सुभाइ ।।२३३।।

कमलश्री की दशा

चोपई— कमलश्री घरि बहु दुख करै, पुत्र वियोग चित्त मनि धरै ।
ससुर पाल रालै बिलराइ, घड़ी इक मन रहै न ठाइ ।।२३४।।

पुत्र दुख माता दिन ह रात, दिवस राति सीझत ही जात ।
सहु समझावै पुर का आइ, उपरा उपरी कहै सुभाइ ।।२३५।।

नग्र कामिनी बैसे आइ, उपरा उपरी कहै सुभाइ ।
माता पुत्र विछोहो कीयो, तहि को पांप उदै आइयो ।।२३६।।

एक कामिनी कहै हंसति, पूर्ब न जाण्यो जिण अरहत ।
कमलश्री बहु पावै दुख, दीठा नही पुत्र का सुख ।।२३७।।

बोलै एक गालि करि देइ, बावै जिसा तिसा फल लेइ ।
मन बच काया दान न दीयो, तहि थि पुत्र विछोरा भयो ।।२३८।।

कमलश्री को बोली मात, हे पुत्री मेरी सुण बात ।
चलौबो[1] अजिका के ठाम, घडि च्यारि लीयो विश्राम ।।२३९।।

कमलश्री का आर्यिका के पास जाना

कमलश्री मनि हरषी भइ, मात सहित अजिका पै गइ ।
भाव भगति बहु बधा पाइ बैठी अजिका आगै आइ ।।२४०।।

---

१ क ग प्रति - पुलाइ ।

१. चालिजो ।

कुसल समाधि बुझी ब्योहार, जैसी श्रावग अति प्राचार ।
कमलश्री दे मस्तकि हाथ, अर्जिका सेवो बुझै बात ।।२४१।।

माता मोहि कर्म संजोग, पाजे दुख पुत्र हि जोग ।
राति दिवस झीखत ही जाइ, चित्त एक क्षण रहे न ठाइ ।।२४२।।

बोली अर्जिका सुणो कुमारि, दुख सुख दुवे मिश्र संसारि ।
कबही होइ सुभ संजोग, कब ही तिहि को होइ वियोग ।।२४३।।

सगर चक्रधर अति बलिचंड, सहु धरती भुंजे छहखंड :
साठि सहस्र सुत तहिकै हुवा, एक बार सगला ही मुवा ।।२४४।।

कबही नर सुख लीला करै, कबही भीख मांगतौ फिरै ।
कबही जीबीड़ो खाइ कपुर, कबही न लहै खलि को चूर ।।२४५।।

पुन्य पाप तरु जेमा बोवै, तहिका तैसा फल भोगवै ।
झुठा जीव पसारा करै, करम फिरावै तैसे फिरै ।।२४६।।

पुत्री मन मैं न करी सोग, मिलसी पुत्र कर्म संजोग ।
मन मैं दुख न कीजे कोइ, भावी[1] लिखो न मेटै कोइ ।।२४७।।

कमलश्री अर्जिकास्यौं भणै, बीनती एक हमारी सुणी ।
व्रत धर्म का दिउ[2] उपदेस, मिलै पुत्र सहु जाइ कलेस ।।२४८।।

श्रुत पंचमी का व्रत

सुव्रत अर्जिका कहै विचारि, व्रत उपदेस सुणौं कुमारि ।
श्रुत पञ्चमी तणो व्रतसार, तहिको कीजे अंगीकार ।।२४९।।

तब कमलश्री बोली एव, व्रत पंचमी को कहिए भेव ।
कौण मास दिन कहि विधि होइ, तहि को उत्तर दीजे मोहि ।।२५०।।

---

१. क, ग—भयी ।

२. क ग प्रति—जैनधर्म दिठ उपदेश ।

भणै अर्जिका सुंदरि सुणौ, कहौ निथार(ध) सद्यौ व्रत तणौ ।
कातिग फागुन सुभ आषाढ, सुदि पाचैं उपवास सु पाठ ॥२५१॥

चौथि ऊजाली करै सनान, धोवति पहरि जाइ जिण थान ।
जिण चोबीस न्हावण करेइ, आठ द्रव्य सुभ पूजा लेइ ॥२५२॥

देव सास्त्र गुरु पूजैं पाइ, भगति बंदना करि घरि आइ ।
पाछैं पात्रां देइ दान, मिष्ट मनोहर भोजन पान ॥२५३॥

एक भगति सुभ करै आहार, पाछैं सबही करैं निवार ।
राति भूमि सुभ सज्या करै, नाम जिणेसुर मन मैं धरै ॥२५४॥

देव सास्त्र गुरु आन्या लेइ, श्रुत पाचैं उपवास करेइ ॥
होइ पचमी को परभात, पुरुष सलाखा की सुणि बात ॥२५५॥

पोसौ सामाइक दिन गमै, अर्थ पुराण मध्य मन रमैं ।
सहि दिन बैरी मित्र समानि, सौनौ तिणौ बराबरि जानि ॥२५६॥

करि जाग्रण गमै सुभ राति[१] करै सनान उदै परभति ।
जिणवर न्हावण पूजा विधि करै, पाछै आइ घरि गम करैं ॥२५७॥

देइ पात्र जोगं आहार, समाधान बात व्योहार ।
पाछैं एक भगति पारणौ, निर्मल मन राखै आपणो ॥२५८॥

सेत पचमी को दिन सार, पंचमी[१] भाग करै विस्तार ।
पूरैं व्रत उद्यापन करै, महाभिषेक पूजा विस्तरैं ॥२५९॥

फल फूल नेवज चदना, अगर कपूर मनोहर घणा ।
झालर कलस भेरि कसाल, चदवा तोरण ध्वजा विसाल ॥२६०॥

जिणवर भवणि महोछा करै, श्रुत सास्त्र पूजा विस्तरै ।
देइ जतीनैं सास्त्र लिखाइ, पाट्ट बधन निर्मल भाइ ॥२६१॥

---

१. क ग—गति ।
१. क पोसहि ख प्रति पोसवि ।

गुर चरणा करि पूजा सार, बहुं विधि संघ जोग आहार।
जिथा जोगि वस्त्र सुभ दान, चोवा चदन फोफल पान ॥२६२॥

उद्यापन की सकति न होइ, दूणी व्रत करें सहु कोइ।
जैसी सकति तसो विस्तार, उषध[1] सास्त्र अभै आहार ॥२६३॥

भाव सुध अहि विधि व्रत करै, सो नर मुकति कामनी सुख लहै।
पीड़ा दुख न व्यापै रोग, मिलै पुत्र सहु जाइ विजोग ॥२६४॥

सुणी बात अर्जिका तणी, उपनी अंगि सीलाइ घणी।
नमस्कार करि बारम्बार, कीयो व्रत को अंगीकार ॥२६५॥

पूजा दान सहित व्रत सार, करि उपवास बीनती च्यारि ॥
दुखी दलिद्री देहु दान, व्रत पंचमी को बहु मान ॥२६६॥

आर्यिका को साथ लेकर मुनि के पास जाना

इहि विधि काल गमै सुंदरि, पुत्र तणी बहुं चिंता भणी ॥
एक दिन ले अर्जिका साथि, गइ जिणालै जाहा जगनाथ ॥२६७॥

जिणवर बिंब बद्या बहु भाइ, अर्जिका सहित मुनिवर पै जाइ।
करी बंदना मस्तकि हाथि, विनती एक सुणो मुनिनाथ ॥२६८॥

कमलश्री सुत दीपां गयो, तहिकी बहुडि न सोधौ लह्यो।
पुत्र विजोग बहुत अकुलाइ, रात्रि दिवस मन रहै न ठाइ ॥२६९॥

स्वामी तुम्हे अवधि का जाण, बचन तुम्हारा महा प्रमाण।
भवसदत्त छै कोणौं थानि, हानि[2] वृद्धि तसु करो नखाण ॥२७०॥

मुनि का वचन

मुनिवर भणै अवधि कै भाइ, सुणौ बात मन राखौ ठाइ ॥
मदन दीप पहुतो कुसलात, पट तिलक महा विख्यात ॥२७१॥

---

१. उखद ख प्रति।

२. क ज प्रति श्री हीनि बुद्धि।

सुकर्म जोगि तहां बालक गयो, सुंदरि एक तहां मेलो भयो ।।
नगर सहित बहु संपति लही, सत्य बचन तुम जाणो सही ।।२७२।।

सुखस्यौ बारा बरस तहां रहै, बस्न पदारथ बहु विधि लहै ।
रुति[1] बसत मास वैसाख, पाचै दिवस उजालो पाख ।।२७३।।

रानि पाछिली निश्चौ जाणि, मपति कामिणि बहुत सुजाणि ।
कुसल खेम तुम मिलिसी आइ, सोक तुम्हारा मन को जाइ ।।२७४।।

मुनिवर बचन सुण्या मन लाइ, भयो हरष अति अग न माइ ।
मुनिवर अर्जिका बद्या बहु भाइ, कमलश्री पहुती निज ठाइ ।।२७५।।

वस्तुबन्ध

प्रीतम पुत्र विजोग अति, कमलश्री बहु दुख पाइयो ।
पूर्व कर्म कुमाइयो, पाछै सुंदरि उदै आइयो ।।
बचन सुण्या मुनिवर तणा, उपनौ हरष अपार ।
भवसदत्त जहि दीप छै, तहि कौ मुणौ विचार ।।२७६।।

चौपई — कमलश्री दिन गिणती जाइ, बरस मास वह रैं मनलाई ।
या तौ कथा हथणापुरि रही, कहौ कथा जो तिलकपुर भई ।।२७७।।

भविष्यानुरूपा का प्रश्न

एकै दिन भौसाणहु सत, बात पाछिली भासौ कत ।
पहली बात जके तुम कही, ते सहु स्वामी वीसरि गई ।।२७८।।

कौण देस नग्र तुम तात, आया इहा कौण के साथि ।।
सहु विरतात कहै आपणो, जिम ससौ भाजै मन तणो ।।२७९।।

भविष्यदत्त द्वारा मन में पश्चात्ताप करना

भवसदत्त सुणि कामणि बात, पायो दुख पसीनो गात ।
हौं पापी तसु कीयो बिस्वास, माता की नवि पूरइ आस ।।२८०।।

---

१. क ग प्रति रति ।

सींचै माली तरु बहु भाइ, तिस का पाछे सो फलु खाइ।
बहु उपगार कीयौ मुझ मात, सो[1] तिहि की बिसरि गयो बात ॥२८१॥

बारह बर्ष भोग मैं गया, मात पिता सहु बिसरि गया।
धन सपति सोइ जगि सार, कीजै सजन तातैं उपगार ॥२८२॥

हो पापी मति हीणो भयो, मात पिता न बि सोधौ कीयौ।
कोइ किसकौ सगो न होइ, स्वारथ आप करैं सहु कोइ ॥२८३॥

पावैं द्रब्य तही कौ सार, जो पर जोग्य करैं उपगार।
जिणवर थानि पतिष्टा करेइ, दान च्यारि तिहुं पात्रां देइ ॥२८४॥

उदिम करिबि ईहा थे चलौ, सम्पति ले माता नैं मिलौ।
भवसदत्त मनि सोची बात, कामिणीस्यौ भासैं बिरतात ॥२८५॥

भविष्यदत्त द्वारा अपना परिचय देना

सहु सनबध सुणौं कामिणी, बिधिस्यौं बात कहौं आपणी।
भरथ क्षेत्र हथणापुर थान, धनपति सेठ द्रव्य को निधान ॥२८६॥

कमलश्री तिहि कौ कामिनी, भगति देव गुर सास्त्रां तणी।
भवसदत्त है तहि कौ लाल, सुख मैं जात न जाणौ काल ॥२८८॥

दुजी तीया सेठि कै जाणि, रूपणि नाम रूप की खानि।
बधुदत्त तहि कौ जाईयो, रत्नद्वीप विणिज हो चालियो ॥२८८॥

हम पणि तासु साथि गम कीयो, मदन दीप साथि ही आइयो।
बधुदत्त करि कूड कुभाव, छाड्यो मदन दीप बन ठाउ ॥२८९॥

पापी आपण गयो पलाहि, छाडि[1] गयौ मुझ वुस बन माहि।
कर्म जोगि जुनौं पंथ लहयौ, पुन्य उदैं तुम मेलो भयो ॥२९०॥

इहु बरतांत हमारो जाणि, कर्म जोगि आयौ इहि थान।
कामनि उद्दिम कीजे कोइ, जहि थे हथणापुरि गम होइ ॥२९१॥

---

१. ख प्रति —छाडिउ हो उद बासना माहि।

उद्दिम सगली बातां सार, उदिम थे पावै सिवद्वार ।
उद्दिम करै कर्म फल होइ, बावै जिसा तसु फल जोइ ।।२९२।।

उद्दिम करता हसै न कोइ, उद्दिम करता सुगति होइ ।
उद्दिम करि जे चारित्र धरै, तोडै कर्म सिद्ध संचरै ।।२९३।।

सगली बाता उद्दिम भलौ, संपति लेइ जल तीरा चलौ ।
पथी प्रोहण आवत जात, हथणापुर जाजे तहि साथि ।।२९४।।

कामिनी सुणी कंत की बात, मान्यौ बचन विकास्यौ गात ।
चालौ पथ जहा सागर तीर, दाख बेलि बन गहर गंभीर ।।२९५।।

मडप दाख सु महा उत्तग, बधी धुजा सुभ अधिक सुचग ।
नग्र मध्य जे वस्त निधान, आण्यौ सहु मडप कै थान ।।२९६।।

मोती माणिक बहुत कपूर, चदन किस्नागर की चूर ।
जाति जाति का मेवा घणा, ढीगलो आणि किया तहि तणा ।।२९७।।

भवसदत्तरू उभौसाण, सुखस्यो सै तिष्ठौ[1] मंडप थान ।।
भुंजै भोग सही मन तणा, सुर्ग देव जिम देवांगना ।।२९८।।

बन्धुदत्त के जहाज का आगमन

रहिता तहा केइ दिन गया, बंधुदत्त प्रोहण आइया ।
दमडी एक न पूंजी रहयो, पाप जोग सगलौ खोइयो ।।२९९।।

फटा वस्त्र अति बुरा हाल, दुर्बल अस्ति उतरी खाल ।
बधुदत्त दूरि थे जोइ जलधि तीर धुजी लहकाइ ।।३००।।

वाण्या वास्यौं करै वखाण, देख्यो जाइ कौण तहि थान ।
नाव वैसि वाण्या चालिया, भवसदत्त कै थानकि गया ।।३०१।।

मन माहै आलोचै कोइ, ईहु को देव देवांगना होइ ।
नम्या चरण धरती धरि सीस, गौवरि महेस विसवावीस ।।३०२।।

---

१ क ग प्रति — निवसै ।

सकलप विकलप बाण्या करै, उद बस बन मैं किम संचरै।
तब लग वेगि पोत आइयो, बंधुदत्त उतरि देखियो ॥३०३॥

सो अति मन मैं करै विचार, इह देवी इहु नाग कुमार।
बन मांहि बन क्रीडा करै, दुष्ट जीव की सक न धरै ॥३०४॥

कै नाराइण लिखमी होइ, असौ रूप न दीसै कोइ।
इहि परतखि गोरज्या महेस, चंद्र सहित जिम सोभै सेस ॥३०५॥

बाण्या सहित विनौ बहु कीया, भवसदत्त का पग बंदिया।
कमलश्री सुत जाणी बात, इहु तौ बंधुदत्त कौ साथ ॥३०६॥

भविष्यदत्त बंधुदत्त का मिलन

ले[1] आलिंगन बारबार, मिल्या भाइ हरष अपार।
कुसलखेम बूझी सहु सार, जैसो सजन कौ ब्यौहार ॥३०७॥

हौ स्वामी मति हीणौ भयो, तु एकाकी बन मैं छांडियो॥
असी नवि कोइ करै न बात, खिमा करौ हम उपरि भ्रात ॥३०८॥

पाछै हौं पछितायो घणौ, जाण्यौ ध्रिग जनम आपणौ।
तुम बिजोग उपनौ बहु सोग, विष सम छोडिये सब ही भोग ॥३०९॥

राति दिवसि मुझ खीजत गयो विढती कौडी एक न लहयो।
असा मन मैं उपनी बात, जै हौ घरि जास्यो कुसलात ॥३१०।

मात पिता बुझौ करी मान, भवसदत्त छाडिउ कहि थान।
मुझ नै उतर न आसी कोइ, बदन सहीस्योकालौ होइ ॥३११

मेरो दुस्ट बज्र कौ हीयो, मैं एकाकी बन मैं छाडियो।
पुन्य घडी अब आइ भ्रात, जावत दुवै मिल्या कुसलात ॥३१२॥

भ्रात बचन मुझ आगै भणौ, जिम भाजै संसौ मन तणौं।
कौण नग्र ही छै बिसाल, कन्या रत्न लही सुकमाल ॥३१३॥

---

1. क ग प्रति लीया नारेच।

बस्त अनोपम ल्याया सार, तिहि को स्वामी करो विचार ।
दुर्जन सुणी हीयो अति हणे, सजन सुने सुकीरति भणै ।।३१४।।

भविष्यदत्त का उत्तर

भवसदत्त सुणि भाई बात, हसि बोल्यौ सुणि हो तु भ्रात ।
सुभ अर असुभ उपायो होइ, तिहि का फल नर भुजे सोइ ।।३१५।।

कर्म बिना नबि कोय सार, कर्म बिना नवि लहै लगार ।
जैसो कर्म उदै होय आइ, तैसो ताहा बाधि ले जाय ।।३१६।।

हम पूर्व सुकृत सग्रह्यौ, भलौ बस्त को मेला भयो ।
सुख दुख दाता को नवि जान, दीसै सहु कर्म विनाण ।।३१७।।

सुख दुख दाता कोई नही, भावी को नवि मेटै सही ।
चहुगति मध्य जीव सचरै, पाप पुन्य ते साथि हि फिरै ।।३१८।।

लाधो बस्त न करीजे हरष, गई बस्त को न करो दुख ।
दहु बात मध्यस्थु जु रहै, तिहि को सुजस इन्द्र वर्णवै ।।३१९।।

कामणि जोगे दुवो दीयो, बधुदत्त नै भोजन कीयो ।
बाण्या सहित करी ज्योणार, पान सुपारी बस्त्र अपार ।।३२०।।

सब दालिद्र तसु राल्यो चूरि, प्रोहण बसत्र दिया भरपूरि ।
भवसदत्त मनि नही गुमान, बधुदत्तनै दीनो मान ।।३२१।।

वस्तुबंध

भलो दीठो तिलकपुर थान, भवसदत्त बहु भोग कीन्हा ।
चन्द्रप्रभ जिन पूजा कीनी, तिया द्रव्य सहु साथि लीनो ।।
सागर तटि तहि थिति करै, भाइ मिलियो आइ ।
अवर कथा आगै भइ, सबै सुणो मन लाइ ।।३२२।।

चौपई — भवसदत्त बोल्यो सुणि भ्रात, भली भई आयो कुसलात ।
बचन कही तुम आगै भलो, तीया सहित हमनै ले चलो ।।३२३।।

द्वादस बर्ष भोग मैं गया, मात पितान की सुधि न लहया ।
अब हमनैं इहु दीजे दान. ले चालहु हथणापुर थान ।।३२४।।

बधुदत्त सुणि भाई बात, हरषो चित विकास्यौ गात ।
स्वामी हौं सेवग तुम तणौ, भगति बदना करिस्यौं घणौ ।।३२५।।

भविष्यदत्त एवं भविष्यानुरूपा का जहाज में चढ़ना

भवसदत्त को दूवैं लीयो, सहु संमदाउ पोत मैं दीयो ।
सागर तीर प्रोहण खडो, भवसदंत तिया साथिहि चढौ ।।३२६।।

भवसदत्तस्यौं भासै तिया, बस्त दोइ बीसरि आइया ।
नागसेज्जा काममूदडी, रही दाख मडप तलि पडी ।।३२७।।

भविष्यदत्त का पुन: द्वीप में जाना

वेगि जाहु ले आवो कंत, जहि विण क्षण एक रहै न चित ।
मान्यो बचन तिया जे कह्यो, भवसदत्त तहां उत्तरि गयो ।।३२८।।

बन्धुदत्त द्वारा पुनः विश्वासघात

बधुदत्त बहु कुड कुमाइ, तक्षण प्रोहण दीयो चलाइ ।
पापी सोची माही बात, दूजा कीयो विश्वासघात ।।३२९।।

सज्या नागमूदडी लीयो, भवसदंत तहि थानकि गयो ।
दिठि न पडै तहां प्रोहण थांन, भयो कुमारि मन मांहि गुमान ।।३३०।।

हो विधिना अति अचिरज भयो, प्रोहण थानक बीसरि गयो ।
सागर तीर फिरिउ तम्हि थान, दीसै नही पोत सहिनाण ।।३३१।।

उचौ चढि देखै निरताइ, प्रोहण चालै सागर मांहि ।
उचौ कर करि सबद कराइ, प्रोहण चाल्या तीरजि माइ ।।३३२।।

भविष्यदत्त का मूच्छित होना

चित्त एक क्षण रहै न धीर, मूरछा आइ पड़ी उरवीर ।
सरण नवि दीसै कोइ, पडियो भूमि मरौ जिम होइ ।।३३३।।

सीतल बाइ सरीर लागीयो, गइ मूर्छा उट्ठि जागियो ।
राख बोलि को मंडप जांहा, ब्याल्यो भवसदत्त गयो तांहा ॥३३४॥

देखि कवर तहां सूनो थान, मन मैं दुख करै असमान ।
मोह अडिउ बोलै बाउलो, आउ कामनी वेगी मिलो ॥३३५॥

तहि थे चाली कमलश्री बाल, पसु जाति दीठा विकराल ।
हरण रोझ सूवर सावरा, भैसा रीछ महिष अति बुरा ॥३३६॥

त्याहस्यो तणो विनो करि घणो, कहै सदेसो कार्मिण तणो ।
चाल्यो वेगि नग्र मैं गयो, तहा सूनो थानक देखियो ॥ ३३७॥

करता सोग गावता गीत, ते थानक दीठा भैभीत ।
कामिणि धन ते विधना दीयो, पाछै सुपनो सो करि गयो ॥३३८॥

सुमरै सुख कामिणी तणा, तिम तिम दुख उपजै अति घणा ।
फिरि फिर सबै नग्र देखियो, चद्रप्रभ जिण मन्दिर गयो ॥३३९॥

सोग सबै छाडिउ तहिवार, जिणवर चरणा कीयो जुहार ।
गुणग्राम भास्या बहु भाइ, जिहि थे पाप कर्म क्षो जाइ ॥३४०॥

दोहड़ा हियडा सवर घीयडी, दुख न करी अतीव ।
कर्म नचावै जिम नचै, तिम तिम नाचै जीव ॥३४१॥

सुख दुख जामण मरण अति, जहि थानकि जो होइ ।
घडी महूरत एक क्षण, राख सकै नही कोइ ॥३४२॥

चौपई भवसदत्त जिणवर के थान, भासै कथा रूप भौसाण ।
कंत विजोग बहुत दुख करै, असुर धार नेत्रा थे झरै ॥३४३॥

बधुदत्तस्यो बोलै गालि, रे पापी फिरि मुख दिखालि ।
भाई नै बहु सकट धरै, असा कर्म नीच नवि करै ॥३४४॥

भविष्यदत्त द्वारा चिन्तन

करै विसासघात ज कोई, नरक तणा दुख भुंजै सोइ ।
पापी नै नवि आई दया, हरत परत तुझ तज्यो गया ॥३४५॥

कै हूँ विधना कीना दुखी, पापी राकसि कांई न भखी ।
कामिणि कंत बिछोहो कीयो, सो पाप मुझ उदै आइयो ।।३४६।।

कै अवगान्यो जिणवर देव, कै मिथाती गुरु की सेव ।
कै कुदान दीना बहु दाति, कै मैं भोजन कीनौ राति ।।३४७।।

पूर्व कंत परायो लीयो, तिहि विधना मेरो छीनियो ।
माता पुत्र विछोहो कोइ, विधना सजा लगाई मोहि ।।३४८।।

सहु आभरण दीन्हा टालि, तजौ तबोल पान सहु फालि ।
कहै कंत को सोधो कोइ, वस्त्र कनक सहु मुकतौ होइ ।।३४९।।

बन्धुदत्त की निर्लज्जता

बंधुदत्त कुण छोडी लाज, जाणीं नही काज अकाज ।
पापी कै मन रहै न ठाइ, भावज कै नखि बैठो आइ ।।३५०।।

जिम कूकर परकावै पूंछ, भावज हाथ लगावै मुंछ ।
हे कामिणि करि दया पसाव, राखौ बोल हमारौ भाउ ।।३५१।।

भविष्यानुरुपा का विरोध

सुणि बोली कुलवंती नारि, रे पापी कहि बात विचारि ।
बडा भ्रात की कामिणी होइ, माता जसी गिणै सहु कोइ ।।३५२।।

कर्म इसा न करै कुल बाल, भावज घरै डूम चिंडालु ।
रे मूरख मन राखी ठाइ, पाप उपाइ नरक गति जाइ ।।३५३।।

पापी मद को अन्धौभयो, मानै नही भाउज को कह्यो ।
जिम पापी भूंडो मन करै, तिम तिम पोत अधो संचरै ।।३५४।।

सतवंती को सील सुभाइ, बुडै पोत वणिक बिललाइ ।
उछलै पवन झकोलै नीर, बूडै बाण्या बस्त गहीर ।।३५५।।

रिसि करि बाण्या बोलै बात, तुम पापी सहु बोल्यो साथ ।
पाकडि हाथ दूरि ले कीयो, वचन कहि बहु निर्भंटियो ।।३५६।।

भौसाण-रूपस्यौं बिनती करै, तुम कोप साथा सब मरै ।
तुम सतवंती निर्मल भाउ, हम उपरि करि छमा पसाव ।।३५७।।

जे पछिम दिस ऊगै भान, को नबिभानै सील निधान ।
माता संक चित्ति मत करौ, होसी सही बुरा कौ बुरौ ।।३५८।।

बण्यक पुत्र सहु रख्या करै, बंधुदत्त नवि नख संचरै ।
भवसदंत्त त्रिया क्षमा कराइ, तिम तिम प्रोहण चाल्या जाइ ।।३५९।।

सती करै मन माहै चित, मुझ बिजोग मरिसी सुत कंत ।
हौं पणि मरिस्यौं तासु बिजोग, असौ भयो कर्म संजोग ।।३६०।।

भविष्यानुरुपा को स्वप्न

रैणि समै सूती सत भाइ, सुपनो कह्यौ देवता आइ ।
हे सुंदरि तुम न करौ चिंत, मास एक मिलिसी तुझ कंत ।।३६१।।

सुपनौ सुभ कामिणी देखियो, सुभ मन धीर आपणो कीयो ।
मिलिसी कंत मास जे आइ, प्राण हमारा रहसी ठाइ ।।३६२।।

जहाज का समुद्र तट पर आगमन

चलत चलत केइ दिन गयो, प्रोहण सुभद तीर लागियो ।
बणिक उतरै प्रोहण भार, वस्त किराणा चीर भंडार ।।३६३।।

बालदि भरी बस्त बहु सार, बधुदत्तास्यौं वणिक कुमार ।
रली रंग सब ही मनि भया, हथणापुरि तंक्षण पहुचिया ।।३६४।।

बन्धुदत्त एवं धनपति सेठ का मिलन

पहुता नग्रि बधाई हार, बंधुदत्त आगम व्यौहार ।
सुणी बात धनपति सुख भयो, ले बाजा बहु सामहु गयो ।।३६५।।

भेटि पुत्र बहु भयो उछाह, बाज्या बहु नीसाण घाव ।
बणिक पुत्र बहु भयो उछाह, पुत्र नग्र में ल्यायो साहु ।।३६६।।

सजन लोग बहु संतोषिया, दुर्जन का मन काला भया।
दिया तंबोल सेठ बहु भाइ, कामणि गीत बधावा थाइ ॥३६७॥

चाल्या था जे वाण्या साथि, कमलश्री तसु बूझै बात।
बंधुदत्त को बहु डरै करै, समाचार नवि को उचरै ॥३६८॥

कमलश्री का पुनः आर्यिका के पास जाना

कमलश्री मनि भयो गुमान, गव बेगि अजिका कै थानि।
नेत्र असरपात बहु करै, पुत्र विजोग दुख अति करै ॥३६९॥

नमसकार करि बूझै बात, पुत्र हमारो न आयो मात।
दाझै देह अधिक अकुलाइ, समाचार कोन कहै माय ॥३७०॥

अजिका बोली सुणि सुंदरि, बेटा को तु ना डर करी।
मुनिवर अवधि दिवस जो कही, पुत्र तुम्हारो आसी सही ॥३७१॥

पछिम दिस जै उगै भाण, मुनिवर झूठ न करै बखांण।
कर्म जोगी परबत पणि फिरै, मुनिवर मुख झूठ न नीसरै ॥३७२॥

अजिका बचन लह्यो संतोष, जैसो मुनिवर पायो मोख।
सुणी बात जे अजिका कही, कमलश्री निज थानकि गई ॥३७३॥

बंधुदत्त मिलिबा आइयो, कमलश्री का पद बंदियो।
कुसल खेम सहु बूझी सार, जैसो पुत्र मात व्यौहार ॥३७४॥

कमलश्री बूझै दे मान, भवसदंत छाडिउ कहि थान।
समाचार सुत साचा भणो, जिम संसो भाजै मन तणो ॥३७५॥

बंधुदत्त बोल्यो सुणि माइ, कुसल क्षेम तिष्टै तहि ठाइ।
धन संपति तहि बहुली लही, बेगौ तुमसं मिलसी सही ॥३७६॥

हमनै जैसो देखौ इहां, तैसो सुत नै जांणो तहा।
कमलश्री सुणि बहु सुख भयो, बंधुदत्त निज मन्दिर गयो ॥३७७॥

अन्तिम पाठ

मूलसंघ सारद सुभ गछि, छोडि चारि कषाइ निरमंछि।
अनंतकीर्त्ति मुनि गुणह निधान, तास तणौ सिषि कीयो बखाण ॥१५॥

वरह्म राइमल थोडि बुधि, अखर पद की न लहै सुधि।
जैसी मति दीनौ अंकास, ब्रत पंचमी कौ प्रगास ॥१६॥

ब्रत पचमी जै को करै, केवल उसमतहि नै फुरै।
जै याह कथा सुणै दे कान, काल लहवि पावै निर्वाण ॥१७॥

सोलाहसै तेतीसा सार, कातिग सुदि चौदसि सनिवार।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि सुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै रोग ॥१८॥

देस ढूंढाहड सोभा घणी, पूजै तहां अली मन तणी।
निर्मल तलै नदी बहु फिरि, सुबस बसै बहुत सांगानेरि ॥१९॥

चहुं दिसि भलो वण्यो बाजार, भरे पटोला मोती हार।
भवण उत्तंग जिणेसुर तणा सौभै चंदवो तोरण घणा ॥२०॥

राजा राज करै भगवतदास, राजकवर सेवै बहु तास।
परजा लोग सुखी सुख वास, दुखी दलिद्री पूरै आस ॥२१॥

श्रावक लोक बसै धनवत, पूजा करै जपै अरहंत।
उपरा उपरी वैर न कास, जिम इंद्र सुर्ग सुखवास ॥२२॥

आखर मात ज भूलौ होइ, पंडित जन सहु क्षमिज्यो मोहि।
अति अयाण मति थोडी भई, कथा पचमी व्रत की कही ॥२३॥

बार बार नवि भणौ पसार, जग मै जीव दया व्रत सार।
जो नर जीव दया कौ पाल, रोग सोग नवि व्यापै काल ॥२४॥

इति श्री भवसदंत चउपइ[1] संपूर्ण।

---

1. क प्रति कथा।

परमहंस चौपई

रचना काल सं० १६३६

ज्येष्ठ कृष्ण १३ शनिवार

रचना स्थान तक्षकगढ (टोडारायसिंह)

प्रारम्भ

दोहा— परमहंस भती गुण निलो, जो बंदे बहु भाइ
तीह को परगाह बरणऊ, सुनहु भविक मन लाई ॥२६॥

जांहि समरन टूटै सब कष्ट, करम तथा बहु भार ।
चहुं गत मध्य फीरे नहीं, ऊतरै भव जल पार ॥२७॥

चौपई— परमहंस राजा सुभ काज, धरै चतुसटय लखमी राज ।
नीसचय तीन लोक परमाण, जीम सोवरण पती गुन आण ॥२८॥

देहालो सियालो जीसो, दीलुहू मधि रहछै तीसो ।
भोर अपूर चती ढूंढन जाई, घर घर भीतर रह्यो समाई ॥२९॥

परमहंस कै स्त्री चेतना, नीरमल गुन भति सोभै घना ।
तीह की महीमां जाई न कही, परमहंस न भति बालही ॥३०॥

पुत्र च्यार सोभै भति घना, सुख सत्ता बोध चेतना ।
परमहंस सुख भुंजै एव, सकलप विकलप रहतसुं देव ॥३१॥

फिरत फिरत मया तिहा गई, परमहंस सु भेंटा भई ।
मया भण विनो कर घनो, स्वामी सुजस सुन्यो तुम तणो ॥३२॥

कीरत पसरी तीनुं लोक, गुन भनंत तुम हरष न सोक ।
सुघ सुभाव तुम्हारो रूप, निराकार सुख तीसट भूप ॥३३॥

सुन स्वामी मेरी बीनती, बहु कांमणी तिन में हूं सती ।
हरि हर ब्रह्मा ढूंढै मोह, तप जप सील छोड दे सोह ॥३४॥

स्वामि हुं भती चतुर सुजांन, पुरष कुपुरष कही परमान ।
लोभी ह्वै कर बुझै बात, करै बीसास पछे तसु घात ॥३५॥

मैं माया बहु जग धंधियो, ठाई सहुत कोई न बीगयो ।
मैं हीवडा में देख विमास, भाई स्वामी तुम्हारै पास ॥३६॥

हाथ जोड बीनती करूं घड़ी, हम तो दइग लई ग्रापडी ।
कै तो परमहंस ने वरूं, नहीं तर अकत कवारी मरूं ॥३७॥

खोटी बसत जु दीजे राल, जीह थें पाछें आव गाल ।
खरी बसत को कीजे अंगीकार, तिहे ते सुजसा लहै ससार ॥३८॥

परमहस माया सुन बैंन, उपनो हरष विकासे नैंन ।
ईह सम भोग भोगउ घणो, सफल जमारो तो हम तणो ॥३९॥

परमहस तब कियो विचार, माया कुं कर अंगीकार ।
पटरांणी राखी कर भाव, परमहस कै मन अती चाव ॥४०॥

दसुं प्रांण सुत माया तणां, त्यांका भेद भाव छै घणां ।
कर कलोल आपनै रंग, जिम अटवी कर फिरै सुचग ॥४१ ॥

स्पर्सना रसन घ्रान चक्षु कान, त्यांह का विषै अधिकह बांन ।
पिता तणी नवी मानै आन, फिरै सु इच्छा थांन कुथांन ॥४२॥

मन पापी जु पाप चितयो, पिता बांधि तब बंदि महि दयो ।
परमहंस सबही राम भयो, सकल तिषाई मुरख हब गयो ॥४३॥

राजा मन जु राज भोगवै, इंद्री सहीत जोर-अती हवै ।
राजकुंवर परणी दव नारी, परवृत्यरु निरवत्य कुमारी ॥४४ ॥

आई कुमरि जहें वंदीखान, परमहस दुख देखे जान ।
सकल दरसन चारीत वरनै, तिह का दुख बरणवं कुन ॥४५॥

मन की तीया प्रवृत्य गहीर, मोह पुत्र जायो वरवीर
तीन लोक मे तीह की गाज, सत्तर कोडा कोडी साज ॥४६ ॥

सो मोह सगलो ससार, धन कुटब माड्यो पसार ।
गमि चार में फिरावै सोई, घालै जाल न निकसै कोई ॥४७॥

दुजी कामनी सो मन तणी । निरवृत्य नारी सुलखणी ।
तीह कै पुत्र भयो अती धीर, नांव बिवेक सुगुनह गहीर ॥४८ ॥

भाव मीत मारग व्यौहार, खोटो खरो परीस्या करै ।
देव सास्त्र गुरु जानै मरम, श्रावक यती तणो सहु धरम ।।४६।।

सब जीवन कुं दे उपदेस, जिह थे नासै रोग कलेस ।
कहु विवेक सु बात विचार, सुलहु इछा सुख संसार ।।५०।।

वस्तुबंध—परमहंस वंदु प्रथम, जिह सुमरण सहु पाप नासै ।
दंसन णाण गुनशीलो, दिष्ट केवल अरथ भासै ।।
हिए विचार तिहें कीयो, कर माया सुसंग ।।
तिह के मन सुत उपनो. चंचल अधिक सुचंग ।।५१।।

दोहा— मन कै दव सुत उपना, मोह विवेक सुजांण ।
मोह प्रजा कुं पीडवै, विवेक भलो गुण जान ।।५२।।

चौपई— मन राजा अब बेटो वहै, माया जोग देखन सहै ।
च्यारु पुत्र चेतना तनां, छांड गया नीसचैय पाटणां ।।५३।।

जाणै सब कुटंब कुसंग, माया तणो उछाह सुचग ।
मन बेटो दीठो बलवत, मन मोह माया विहसत ।।५४।।

सोक दुवै माया चेतना मोसा मसका सोक्या तनां ।
उपरा उपरी करै विरुध .... ।।५५।।

बेटा पास गई चेतना, परमहंस छोडी तखिणा ।
कोई किसका छिद्रन कहै, पुत्र सहित सुखी सो रहै ।।५६।।

माया मनसुं कहै हसत सुनो बात मेरी गुनवंत ।
थारो पुत्र विवेक कुमार, करसी घर में यकोकार ।।५७।।

सीख हमारी करज्यो एह, वेगो बंदी षान इहु देह ।
दुसट भाव ईह दीसै घणो, मान्यो सही बचन तुम तनो ।।५८।।

सुनी बात तब माता तणी, तब बहुत संका उपनी ।
मन प्रपंच मांडियो अनेक, तखीन बांध्यो साधु विवेक ।।५९।।

तब निवृत्य सु बहु दुषभरी, परमहंस सुं बीनती करी ।
सुसरा मेरो पुत्र छुडाई, दोष बिना बंध्यो मनराई ।।६०।।

परमहंस जंपै सुन बहु, एह परपंच माया का सहु ।
निसचै पटन छै चेतनां, तिह कै पास जाहु तंषीनां ॥६१॥

व्योरो बात हमारी कही, थारो पुत्र छुडावै सही ।
तब नीवृत्य गई तषीना, निसचै पटन जहां चेतनां ॥६२॥

सासु तना बदीया पाई, बात कही दुख की नीरताई ।
राजा मन बध्यो मुझ नंद, कवर विबेक अधिक गुनवंत ॥६३॥

परमहंस तुम पै मोकली, कीज्यो बात होई सो भली ।
हमनै मात करो उपगार, छूटै जिम विवेक कुमार ॥६४॥

सुनी बात जु निवृत्त्य तनी, अती चेतना दया उपनी ।
निवृत्य सेती कह सु भाई, पुत्र छुडाई करो उपाई ॥६५॥

प्रव्रति को अती हरष्यो हीयो, मेरो राज निकंटक भयो ।
मन राजा सु कह हसंत, मेरी बात सुनो गुणवंत ॥६६॥

मोह पुत्र थारो वर वीर, माता पिता को सेवक धीर ।
स्वामी देइ मोहनै राज, सीरो सब तुम्हारो काज ॥६७॥

मन राजा प्रवृत्य वस भयो, राल्यो नहीं त्रीया को कयो ।
राज विभूति तनो सहु साज, मोह बुला दीयो तिही राज ॥६८॥

पाप नगरी का वर्णन

मोह राव ठकुराई करै, दुरजन कोई धीर न धरै ॥
तिह को अधिक तेज आताप, जाउ नगरी बसावै पाप ॥६९॥

पुरी अग्यान कोट चहु पास, त्रिसना षाई सोभै तास ।
च्यारू गति दरवाजा वण्यां, दीसै तिहां विषवन घणां ॥७०॥

जेता बहुत असुध वर णाम, उंचा मंदीर दीसे ठाम ।
कुआचार तणो चहुं वास, कोई कीसही को न वीसास ॥७१॥

मिथ्या दरसन मंत्री तास, सेवक आठ करम को वास ।
क्रोध मान डंभ परपंच, लोभ सहुत तिहा नीवसै पंच ॥७२॥

पंद्रह प्रमाद मंत्र तसु तणां, तिह सु मोह करै रंग घनां ।
रात दीवस ते सेवा करै, मोह तनी बहु रख्या करै ॥७३॥

सातों विसन सुभ गती राज, आनै नही काज अकाज ।
निगुणां सघि सभा असमान, सौभै दुरगति सिघासन थांन ॥७४॥

चवर ढलै रित विभ्रमरत वीसाल, छिद्र पुरोहीत पठतु कुस्याल ।
कुड कपट नग्र कोटवाल, पाखंडी पोल्या रखवाल ॥७५॥

तिहको कुकवी रसोईदार, चोबीसु परिग्रह भंडार ।
कंदल कलह अग्र कोठार, नंदी देहह बोल अपार ॥७६॥

असत छागल्यो पावरीण, चोर खवास तास वरवीर ।
महाकुसील पयादा तास, पाप नग्र में तिह को वास ॥७७॥

परगह सवल कषाइ पचीस, पचपन मोह तनो सचसीस ।
ऐसो पाप नग्र को वास, भली वस्त को तीहां विनास ॥७८॥

निसचै नग्र पुत्र चेतना, तीह की वात सुनो भवीजना ।
निवृत्य पुत्र की वीनती करी, तब चेतना बात मन धरी ॥७९॥

जहा सुमन राजा छै वली, तिहठै कुमति आप मोकली ।
दीन्ही सीख बहुत नीरतार, दीजे वेग विवेक छुडाई ॥८०॥

तुमछो कुमति ठगोरी असी, मन राजा दीखै पग्रलसी ।
सोही कीज्यो चित विचार, छुटै बेग विवेक कुमार ॥८१॥

लीन्ही सीख कुलस्त तव गई, मन द्वारए जाइ ठाढी भई ।
पोल्या नवहु दीनो मान, प्रवृत मन राजा को थांन ॥८२॥

हाव भाव तीहां कीया घना, बहुतक चिरत कामनी तना ।
देखत मन अती भयो विकास, बीनो करी बहु चूड तास ॥८३॥

तुम छो कुंन तुम्हारो नाम, दीसो चतुर केन थित ठांम ।
जिह कारन आई हम भणी, ते सहु बात कहो आपणी ॥८४॥

बोली कुमति जोडीया हाथ, वीनती सुनो हमारी नाथ ॥
सुरग तणीहुं देवांगनां, तेरा सुजस सुन्या हम घणां ॥८५॥

मेरा मन बहु उपनो भाव, भली बात देखन को चाव ।
छोड देव आई तुम थांन, तुम देखत सुख पायो जान ॥८६॥

मन राजा तसु सांभली बात, उपनो हरष बिकास्यो गात ।
अगन संग लुणी गल जाई, मन राजा बोलो हस भाई ॥८७॥

दीठी त्रीया घनी अवलोई, तुम सम रूपन दीठो कोई ।
सुंदरी हम पे करो पसाव राखो बोल हमारो भाव ॥८८॥

करो हमारो अंगीकार, पटरानी सुख भुजो सार ।
वसत विभुती हमारैं घनी, तिहकी सुंरतु खसमणी ॥८९ ॥

बोली कुमति सुनो मन जान, कह्यो हमारो अगीकार ।
पटतो हम तुम घर वा सोई, होई विधना लिख्यो न मेटै कोई ॥९०॥

बंध्यो पुत्र विवेक कुमार, ते छोडो ल्यावो मती वार ।
जिह घरी बंदी खानो होई, भलो मनाव तिहां न कोई ॥९१॥

मन बोल्यो मत करो विषाद, यह तुमनै दीन्हों परसाद ।
साकुल काट हीयो मुकलाई, तंषिन गयो मात पैं जाई ॥९२॥

कामी पुरष ज कोई होई, कामनी कह्यो न मेटै कोई ।
तिह को छांदो छावैं घनो, इदह श्रुभ काह कामी नर तनो ॥९३॥

आयो निहचै पटन ठाव, मात चेतना वंद्या पाव ।
कह्यो पाछलो सहु व्योहार, सुखसुं रहै विवेककुमार ॥९४॥

वस्तु बंध- देख पुत्र निवृत्य सुकमाल, बहुत हरष उछाह कीन्हो ।
कीयो उपगारज चेतनां, तासुं वहुत सनमांन दीनो ॥

सबही तस पुरको उपनो सुख अपार ।
निहचै पट्टन में रहै निवृत्य विवेककुमार ॥
चौपई— निवृति सु जंपै चेतना, सांभल बहु वचना हम तनां ।
पापी मोह दुसट सुभाव, पर पीड़ा चितवन सुहाव ॥९६॥

जाई जे छोड मोह को देस, जाई तुम्हारो सब कलेस ।
रहो आई तुम नीकै जान, जिठ चारीतह सुभ जान ॥९७॥

सांभली बात चेतना तनी, विवेक निवृति चाल्या तंषिना ।
चलत पंथ जब आधा गया, हंसा देस असुभ दे विया ॥९८॥

पाप नगरी दीसैं तह रूद्र व्योहार, उपरां उपरी मारैं मार ।
हासि निंद्य तिहां अती ही होई, मारै कोई सराहै लोई ॥९९॥

दया रहत परजा परमांन, बाट वटाउ न लहै ठांम ।
कर विसास मारैं तसु जोग, हिंसा देस बसै जो लोग ॥१००॥

बोलै जको झूंठ असमान, तिहसुं त्यागो तुम सुनि जांन ।
अधिक झूंठ एह बोलै वाच, जिह थैं टांकर मारैं साच ॥१०१॥

मुखानद मन मांही धरैं, साच तिहां नवि लगतो फीरैं ।
खोटो परख खरो जो लेई, तिहकी कीरत अधिक करेई ॥१०२॥

चोरी कर बहु पाडैं वाट, धुनी मुसैं करैं घन घाट ।
तिहकै बिनो करै अविचार, तुम सम पुरुष नही संसार ॥१०३॥

सति अनादि बहुत विसतरैं, जै कोई नर चोरी करै ।
सेवैं विषै जु इंद्री तनां, तीह की करैं भगत बंदना ॥१०४॥

सेव विवैं जे मूढ गंवार, तिह उपर आनद अपार ।
रुद्र ध्यान रात्यो दिन जाई, कर प्रपच अति मारैं भाई ॥१०५॥

सुखन काई बाधी लेई, तिहनै मारैं फांसी देई ।
परजा वसै कसाई रंक, मारत पाप करैं नीसंक ॥१०६॥

वाल ग्राम जीव बहु मरै, पापी मनमें संक न करै।
रुद्र घ्यांन तीहां वहुत सुजांन, मारै तहा कीच रली थांन ॥१०७॥

अजि सिचांणां सिघ तिहां फिरै, जीवत प्रांनी नहीं उपरै।
असो दीसै हुसा देस, मात पुत्र न भयो कलेस ॥१०८॥

× × × × × × × ×

दोहा— ब्रह्म राईमल्ल वंदिया, कह्यो सास्त्र गुरू सार।
वोर कथा आगे भई, तिह को सुनो विचार ॥२८४॥

चौपई— करै राजं विवेक सुजांन, सुभ समकित मंत्री परधान।
नीको मतो देई उपदेस, तिहुथे नासै रोग कलेस ॥२८५॥

सम्यकित मंत्री अति वलवत, जे बुझले होई निहचंत।
नीकी सीख सु देई विचार, तिहुथे भोजल उतरै पार ॥२८६॥

पट्टन तनो ग्यांन कोटवाल, रष्पा करै वाल गोपाल।
चार चवाउन को न सचरै, पट्टन परजा लीला करै ॥२८७॥

दुख सोक नवि जाणै कोई, जैसी मुकति पुरी सम होई।
ग्यान तनो वल अति विसतरै, दुर्जन दुष्टन लगतो फिरै ॥२८८॥

दोहा— बिवेकवि भाति सव कही, पुन नगर व्योहार ॥
पाप नगर व्योहार छै, तिन को सुनो विचार ॥२८९॥

मोह राव मन चिंतियो, मत्री वेग बुलाई।
राज हमारो दिठ भयो, कटक गयो पुलाई ॥२९०॥

कहै मोह मत्री सुनो, मेरे मन ही कलेस।
रात दीवति खटको हीये, भागो नितृत्य वाल ॥२९१॥

विवेक वैरी हम तनो, तिहको हम ने दुख।
छाडि गयो सो सोचकरी, कदे न पावै सुख ॥२९२॥

वडो करि ईही छांडियो, मनमैं बैर न आई।
दाव घाव सो वहु करै, पाछै तिह नै षाई ॥२९३॥

सर्प जे मरि पु भज गयो, सोध्यो नाही तास ।
नंदी कडाड कपडो, जब तब होई विणास ॥२९४॥

सोध्यो कीज्यो सत्रु की, मंत्री करो विचार ।
दाब घाव सांई करो, मरही विवेक कुमार ॥२९५॥

मन राजा भोलो भयो, छांडी मेरो सत्रु ।
मन में दया करी घणी, जान आपनो पुत्र ॥२९६॥

वैरी विसधर सारखो, तिह थे रहै सुचेत ।
मूढ़ जके ढीला बहै, तास मरन को देत ॥२९७॥

मन राजा का पुत्र धें, मोह विबेक सुजांन ।
पूर्व प्रीत भई ईसी, मूसा सर्प समान ॥२९८॥

वेगा चाकर मोकलो, सीधों लावैं जाई ।
देस गांव पट्टन फिरो, बात कहो निरताई ॥२९८॥

चौपई — कूड कपट डडी पाखड, विदा दीया च्यारो परचंड ।
देखही धरती बहुत असेस, पट्टन ग्राम गढ देस ॥३००॥

सब बाते बुझै निरताई, रहै विवेक कहो किहीं ठाई ।
बात भेद कोई नवी कहै, च्यारूं मनमैं बहु दुख सहै ॥३०१॥

पथी एक मिल्यो तिह ठांम, तिह कै बहुत सरल परिणांम ।
तिह न मांन बहुत कर दीयो, चलतां बाट सरल बुझियो ॥३०२॥

तुम परदेसां फिरता रहो, राजा देस बात बहु लहो ।
कवर विवेक रहै किही थांन, तिह को हम सु कहो बखान ॥३०३॥

बोल्यो सरल सुनो हो मित्त, कवर विवेक तना विरतंत ।
पट्टन पुन्य महा सुविसाल, राज करै विवेक भोपाल ॥३०४॥

दान पुन्य चालै असमान, चोड चवाड नही तिहां थांन ।
सहु परजा जिन शासन भक्ति, जुवा आदि विसन सहु मक्ति ॥३०५॥

सुणी बात सहु पंथी तणी, अपनी अंगिसी लाई घणी।
मान देई बुझी पनहार, कोंन नगर भासै नर नार ॥३०६॥

कौन धर्म चालै इस थान, तिह को हम सु करो बखान।
तब बोली पटन की नार, बात सुनो हो पंथी चार ॥३०७॥

दोष अठारा रहत्त सुदेव, गुरू निर्गुन्थ सु जानो एव।
बाणी सहीत्त जु जिनवर कही, असो धर्म नग्र में सही ॥३०८॥

पांखडी मिथ्याति होई, जान न देई नगर में सोई।
बात सुनी तव फोरयो भेष, लगा देन धर्म को पेष ॥३०९॥

ध्यानी मोनी अति ही भया, तंषिन नगर मध्य चालिया।
बोलै बचन सुमधुरी वांन, कपट रूप धरीयो मन जान ॥३१०॥

दोहा— पिछी कमंडल हाथ ले, भेष दिगम्बर धार।
ईर्या पथ वहु सोधता, पहुतो नगर मझार ॥३११॥

चौपई— भोजन काज नगर मे फिरै, तास भेद ले लो संचरै।
कोटवाल ग्यानी मन धनी, चेष्टा बुरी देखी तिह तनी ॥३१२॥

ग्यांन सुभट चारू बूझिया, भेष दिगम्बर कदि थे लीया।
आया तुहै चोर ब्योहार, दीसै नही शुद्ध आचार ॥३१३॥

बचन सुनत्त तव ही खलभल्या, तषिन नग्र मांझ थे चल्या।
भागा दुष्ट डूम पाखड, हत्या कूड कपट परचड ॥३१४॥

राव बिवेक सभा सुभ धणी, कोटवाल आयो तिहां भणी।
स्वामि एह तो जती न होई, कही रावका सेशु जोई ॥३१५॥

सांभली बचन विवेककुमार, कूड कपट बोल्या तिहं बार।
सांची बात कही निरताई, झूठ कहूं तो लिकपति जाई ॥३१६॥

कूड कपट बोल्या तंषिणा, सुनै बचन विवेक हम तनां।
पाप नगर दुष तनो निधान, राजा मोह बसै तिहं थान ॥३१७॥

तुम सोधै राजा मोकल्या, विदा लेई तिहां थे चल्या ।
सोध्या देस नगर गढ ग्रांम, बहुत कष्ट पायो तुम ग्राम ।।३१८।।

सेवक जिह को खाई गरास, सोधो कर रहै तिह पास ।
राजा विदा जिहां नै करै, तिहां गया सेवक ने सरै ।।३१९।।

सुणि विबेक सोच मन राव, मोह दुष्ट को जानै भाव ।
कूड कपट संविन बंधिया, बंदीखानै तिहांनै दीया ।।३२०।।

बहुत ग्यानन दीन्हों मांन, अधिक बडाई बहु दे दान ।
सभा लोग सहु कीर्ति करै, ग्यांन छली चोर न सचरै ।।३२१।।

डंभी पुन्य नगर में रयो, पाखडी पाप नगर आईयो ।
मोह राव नै कीयो, जुहार, पुन्य नगर भाख्यों ब्योहार ।।३२२।।

सुणी राजा बीनती हम तणी, विकट नगर अति सोभ घणी ।
नही लगाव तहा हम तणो, पुन्य नगर फिरि दीठो घणो ।।३२३।।

कोटवाल ग्यांन तिहां रहै, बात पराये मनकी लहै ।
कूड कपट बांधे तंषिणा तिहठं दुख देखे घणा ।।३२४।।

हम तो भाज आईया ईहां, उभै सुभट तिहठै ही रहां ।
मोह भनै पाखड कुमार, तुज सदा को भाजन हार ।।३२५।।

डभी कने छं बहुत उपाई, समाचार सहु कहमी आई ।
तो लग केतईक दिन गया, पापी नगर डभ आइया ।।३२६।।

मोह राव न कीयो जुहार, कहो पाछेलो सहु ब्योहार ।
स्वामि हम तिहा मोकल्या, तिह विवेक कै सोधै चल्या ।।३२७।।

देस घनां बूझ्या निरताई, पंथी यक मिल्यो तब आई ।
समाचार ब्योरो सहु कह्यो, पुन्यनगर विवेक जु तिहां रह्यो ।।३२८।।

जाई भेटयो देव जिनद, देषि बिवेक भयो आनन्द ।
दीन्हा वीडा वस्त्र निधान, पुन्य नगर दीनो शुभ थ्यांन ।।३२९ ।

बात सही हम पंथी कही, विवेक पुन्य नगर में सही ।
सुनत सुख उपनो अपार, पहुंतो तिहां विवेककुमार ॥३३०॥

कोई दिन बन मांही रह्यो, पुन्यनगर मे छल कर लह्यो ।
लीन्हो ग्यान कोटवाल बुलाई, बुझि बात सबै निरताई ॥३३१॥

अणविड लोग जांणा तिहां बार, ले गयो तिहा विवेककुमार ।
कूड कपट तिहांरो पिया, हम तो नगर मांझ ही रह्या ॥३३२॥

भागो पाखड आयो ईहा, हम तो भेद लीयो सहु तिहां ।
दीठा तिहां कोतुहल घणां, दाव घाव विवेक तणां ॥३३३॥

वस्तुबंध

पुन्यपटन वसै सुविसाल, ठाइ ठाइ बहु पुन्य कीजे ।
देव पुज गुरू को विनो, सामाइक पोसो करीजे ।

मन इन्द्री तिहा निरोध कीजे, राखै छह विधि प्रांण ।
बाहिज भितर तप करै, सुध साध ब्योहार सुणीजे ॥३३४॥

दोहा— श्रावक मुनि बहुचितवै महामत्र नवकार ।
व्यंब पतिष्ठा जिन भवन, खरचै द्रव्य अपार ॥३३५॥

श्रावक जात का बहु कह्या, जेता बृत्त विधांन ।
अतिचार बिना करै, मन राखै सुध ध्यांन ॥३३६॥

जिनवाणी प्रगटै करै, कथा जे महापुरांन ।
सप्त तत्व नवपद कह्या, सुनो भव्य दे कान ॥३३७॥

दिन प्रति पुन्य कर घणो, होई पाप को नांस ।
परजा सर्व सुखी रहै, पुन्य नगर को वास ॥३३८॥

मिथ्या द्रष्टी पांच जे, तिहां न सुणीजे नाम ।
चलै दुहाई जिनतणी, देस नगर गढ ग्राम ॥३३९॥

थोडा विणज घणो नफो, श्रावक बहु संतोष ।
मन में सोई चितवै, जिहूं थे पाजे मोख ॥३४०॥

पुण्य नगर सोभा घणी, राजा तिहां विवेक ।
संक में मांने काहु की, वस्त भंडार अनेक ॥३४१॥

भनै डभ सुनि मोहजी, देस तुम्हारे बात ।
द्रव्य परायो लूटजे, कर बिसास सुघात ॥३४२॥

बेटी बेच र द्रव्य ले, सब छत्तीसों पौंन ।
लोभ सरव परजा करे, चित न राखै जान ॥३४३॥

कूड कपट चालै घणों, घर न करै संताप ।
असुध किराणां विणजजे, जिह थे उपजै पाप ॥३४४॥

संसो सोग विजोग बहु, परजा करै पुकार ।
आरत रुद्र सदा रहै, न लहै सुख लगार ॥३४५॥

पाप नगर में जे वसै, ते ता सर्प समान
डंभ बात सगली कही, मोह सुनो दे कान ॥३४६॥

चौपई — राजा मोह सुन्यो विरतत, राव विवेक तणी सहुबात ।
कह विवेक सुनो सहु कोई, मोह हमारो बैरी होई ॥३४७॥

हम तो मोह कांम दुख दीयों, तिह को वर्णन जाई न कह्यो ।
तुहे पाच मिलि कीयो बिचार, जिह थे होई भलो ब्योहार ॥३४८॥

पांच भणै विवेकजी, सुनो जै कारज सारो आपनो ।
जिनवर पास वेग तुम जाहु, संजम स्त्री सु कीज्यो ब्याहु ॥३४९॥

मुनिवर पद लह महा सुचग, जिहथे वडा महल उत्तग ।
पाछें मोह सु माडो राड, लूटदेस सहु करो उजाड ॥३५०॥

मन राजा पिता बस कीरयो, सुभ ध्यांन हीवडा में धरो ।
मदन मोह ईम मारो राई, काची व्याधि टुटी सब जाई ॥३५१॥

सभा विवेक चली इह वात, हम तुम सु भासु विरतांत ।
भलो होई तिम करो नरेस, तुम सुख लहो बसै सहु देस ॥३५२॥

कहै डंभ सुन मोह विचार, सुने विवेक तनो परवार ।
राव विवेक भयो वैराग, मुक्त तनो सुख जाण्यौ मार्ग ।।३५३।।

रानी सुमति तास गुनवंत, अरध सिंघासन सोभै संत ।
वडो कवर सोभै वैराग, दूजो सजम मोडै भाग ।।३५४।।

सोभै तीजो कंवर विचार, बाल मित्र आनंद अपार ।
मंत्री करणा पुत्री तास, दूजि मुढिता बहुत विकास ।।३५५।।

बडो सुभट समिकत परधान, सब ही सभा चतुराई जांन ।
तिह का सेवग अति बलचड, उपसम विनवै सरल प्रचड ।।३५६।।

द्वादस तप संतोष समान, सैन्या सोभै अति असमांन ।
छत्र वण्यौ गुरू को उपदेस, सति सिंघासन तासु नरेस ।।३५७।।

सिद्धि वुधि सुंदर अनिनार, सोभै चवर ढलावण हार ।
सील सनाह आगम व्योहार, कीया कपाल, अन्न कोठार ।।३५८।।

सप्त तत्व शुभ राज विभूति, पालै चतुर चिहु दिसि हुती ।
राज करै विवेक भोवाल, सुख मै जात न जानै काल ।।३५९।।

कही विवेक विभूति विचार, डंभ कहै मोह सुंनिहार ।
सांभलि मोह डभ की वात, विसमै भयो पसीनो गात ।।३६०।।

राजा मोह कोपर कहै, मुझ आगे विवेक किम रहै ।
तिह मैं बन सिंघ सु ईछा फिरै, तिह वनगज कैसे सचरै ।।३६१।।

जैठे सूर करै प्रगास, तारा तनो नही तिहा बास ।
मोह तनो बैरी जो होई, जीवत फिरतौ न सुणी कोई ।।३६२।।

मोह महा जिह कोहसाल, तिहैं को आयो वेगो काल ।
मुझ सम लीब नंही कोई जांन, तीन लोक फिरि मोह आंन ।।३६३।।

बहु सेन्या ले उपर चल्यो, जीवत विवेक सत्रु पाकडो ।
मकरधुज सुनि ठाढो भयो, देख्यौ पिता हमारो कीयो ।।३६४।।

आनु बांधि बिवेक गुलाब, बहुत दीवस न खालू मांम।
सांभलि पुत्र मोह की बात, तिव ही बहुत उल्हास्यौ गात ।।३६६।।

मोह भनें सुनि मदन कुमार, तेरो ठांम नहीं ब्यौहार ।
नींद भूष तिस जाई न सही, बय बालक तुम जुग तो नहीं ।।३६६।।

मदन कुमार पितासु कहै, मेरा बल को भेदन लहै ।
बालक सप्प डसै सुफुरंत, तिह् को खायो ततषिन मरंत ।।३६७।।

बालक रवि तिहां उदौ कराई, अधकार सहु जाई पुलाई ।
अष्टापद को होई जबाल, ते जानज्यो सिंघ को काल ।।३६८।।

सांभलि बचन मोह सुख भयो, पुत्र हाथ कर बीडो दयौ ।
मदन बचन तेरा परमांन, सेन्या ले चालो असमांन ।।३६९।।

कटक एक ठोकरि तषिनां, अजस दमांमां वाजै घनां ।
मोह् पिता का बंधा पाई, मदन बिवेक जीतबा जाई ।।३७०।।

× × × × × × × ×

अंतिम पाठ

मूलसंघ जुग तारन हार, सरब गछ गरबौ आचार ।
सकलकीर्ति मुनिवर गुनवंत, तास मांही गुन लहौ न अंत ।।६४१।।

तिह् को अमृन नाव अति चंग रतनकीरत मुनि गुणां अभंग ।
अनन्तकीर्ति तास सिष्य जांन, बोलै मुख थे अमृत वांन ।।६४२।।

तास सिष्य जिन चरणालीन, ब्रह्म राइमल बुधि को हींन ।
भाव भेद तिहां थोडौ लह्यौ, परमहंस की चौपई कह्यौ ।।६४३।।

अधिको वोछो आन्यो भाव, तिह् को पंडित करो पसाव ।
सदी हुई सन्यासा मर्ण, भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ।।६४४।।

सोलासै छतीस वषांन, जेष्ट सांवली तेरसजांन ।
सोमै बार सनीसर बार, ग्रह नक्षत्र योग सुभसार ।।६४५।।

देस भलो तिहु नागर चाल, तक्षिकगढ अति बण्यौ विसाल ।
सोभै बाडीनाग सुचग, कूप बावडी निर्मल भंग ॥६३६ ॥

चहुं दिसी बन्या अधिक बाजार भर्या पटंवर मोहती हार ।
जिन चैल्याला बहुत्त उतंग, चंदवा तोरन धुजा सुचंग ॥६४७॥

श्रावक लोक वसै धनवंत, पूजा करै जपै अरिहंत ।
उपरा उपरी बैरनै कास, जिम ग्रहु मदिर सुरग निवास ॥६४८॥

राज करै राजा जगन्नाथ दान देत नवी खेचैं हाथ ।
पदरासै पैतीस सार पारसनाह मदिर विसतार ॥६४९॥

खंडेलवाल छाबडा गोत, चाहडं सगही वहु पुन्यवत ।
दान पुण्य साला अतिसार खरचे द्रव्य बहुत अपार ॥६५०॥

श्रावक पुन्म उपावै धनो लाभ लीयो वहु मीतनो ।
जो लग सुर चन्द्रमा अंस, नादौ विरधो चाहड बंस ॥६५१॥

जो लग धरती सुभ आकास तो लग तीष्टौ टोडो बास ।
राजा परजा तिष्टौ चग, जिन सासन को धर्म अभग ॥६५२॥

इति श्री परमहस चौपई ब्रह्म राइमल कृत सपूर्ण ।

सुभ भवतु कल्यानमस्तु, पोथी ब्रह्मजी सीवसागर जी पठानार्थं लिखन्त पडित दयाचन्द सारोला मध्य सवत् १८४४ वर्षे कार्तिक स्यांम तिथौ ९ सनीसरवारे मध्यांह्न वेलायां ।

श्रीपाल रास

रचना काल—सं० १६३०

आषाढ शुक्ला १३ शनिवार

रचना स्थान—रणथम्भौर दुर्ग (राज.)

श्रीपाल रास । रचना काल—संवत् १६३० असाढ़ शुक्ला १३ । पद्य संख्या २१८ । लेखन काल संवत् १८वीं शताब्दि । प्राप्ति स्थान—महावीर भवन, जयपुर ।

मंगलाचरण

हो स्वामी प्रणमौ आदि जिणंद, बंदौ अजित दोइ अति चंग ।
संभौ बंदौ जुगतिस्यौ, हो अभिनंदन का प्रणउ पाइ ।
सुमति नमौ स्वामी सुमति दे, हो पदमप्रभ प्रणमौ बहु भाइ ।
रास भणौं सिरीपाल कौ ।।१।।

हो काया मन वच नमौ सुपास. चन्द्रप्रभ सब पुग्बौ आस ।
पुहपदंत प्रणमौ सदा, हो नमौ जुगतिस्यौ सीतल देव ।
श्रीपास प्रणंमौ सदा, हो बासुपूजि बंदौ वर वीर ।।२।।

हो विमलनाथ प्रणमौ करि भाव, नमौ अनंतसुत्ति भुवन राव ।
धरमनाथ जिन वंदिस्यौ, हो सांति नमत मनि होई बिकास ।।
कुथं जिनेस्वर वंदिस्यौ, हो अरह नमत सहु तूटै पाप ।।
रास भणौ ।।३।।

हो मल्लि नमौ जगि त्रिभुवनसार, सुव्रत नमत होइ भव पार ।
नमि प्रणमौ इकिससँ, हो नेमिनाथ बंदौ गिरनारि ।
पासणाह जिण वंदिस्यां, हो नमौ वीर उतरीउ भव पार ।।४।।

हो सारदमाता नमौ मन लाइ, करि प्रकास मति त्रिभुवन माइ ।
कोडीभड गुण बिस्तरौ, हो सिद्धचक्र व्रत कीनौ सार ।
कोढ कलेस सदै गये, हो अंनि पहुतौ भव पार ।।५।।

तिहुउण नव कोडि मुणिंद, प्रणमौं स्वामी करि आणंद ।
तिरिखण वंत जे कह्या, हो भवि जिन तारन नाव समान ।
काटि कर्म सिव पुरि गया, हो बचन जिनेसर करि परमान ।।६।।

हो देव सास्त्र गुरू वंधा भाइ, बुधि होइ तुम तनी पसाइ ।
कुमति कले सन उपजो, हो मैना सुदरी सुभ श्रीपाल ।
सिद्ध चक्र व्रत सेवियो, हा कोडि गुणी करि पूज विसाय ।।७।।

हो जवू दीप अतिकरै विकास, दीप असख्या फिरिया चहुं पास ।
लूण समदस्यौ वेढीयो, हो जोजन लाख तणौं विस्तार ।
मेरू मधि अति सोभिता, हो भोग भूमि गिरि नदी अपार ।।८।।

राजा पहुपाल एवं उनका परिवार

हो दक्षण दिशा मेरू की जाणि, भरथ क्षेत्र अति नीकै ठाणि ।
देश ग्राम पट्टण घणा, हो तिह मैं मालव देस विसाल ।
उजेणी नग्री भली, राज करै राजा पुहपाल ।।रास।।९।।

हो पट्ट तीया तस सुंदर माल, सामोद्रिक गुण वणी विशाल ।
रूप अपछरा सारिखी. हो पुत्री दोइ तासु घरि जाणि ।
सुरसुंदरि जेट्ठी सही, हो मैणासुंदरि शील सुजाणि ।।रास।।१०।।

हो एकै दिनि राजा पुहपाल, सुर सुंदरी घाली चटसाल ।
सोम विप्र आगैं भणै हो देव शास्त्र गुरू लहै न भेद ।
पढि पुराण मिथ्यात का, हो जह थे षट् काया को छेद ।।रास।।११।।

हो तर्क शास्त्र पढिया बहु भाय पढत पढत व्याकरण जाय ।
समरित सहित बहु भण्या हो तहि थे होइ जीव की घात ।
मत मिथ्यात पदेश दे, हो जाणै नही जैनि की बात ।।रास।।१२।।

हो लहुडी मैणासुंदरि जाणि, देव शास्त्र गुरू राखै मान ।
समधर मुनि आगैं भणै, हो कर्म्म आठ तेणो अठताल ।
भाव भेद जाण्या सबै, हो आस्रव कर्म जीवनो काल ।।रास।।१३।।

सुरसुंदरी से इच्छित वर के बारे में पूछना

हो एकै दिनि राजा पुहपाल, सुर सुंदरी साज्यो बनबाल ।
देख विचारै चित मैं, हो पुत्रीस्यौं जपै करि भाव ।
मन वांछित हमस्यो कहो, हो सौ तुमनै हु व्याहै राउ ।।रास।।१४।।

सुरसुन्दरी का उत्तर

हो सुंदरि बोली सुणि तात, तुम्हस्यौ कहुं चित्त की बात ।
नागछत्र पुर राजई, हो तिहस्यौं मेरौ करिजै ब्याहु ।
घणी बात कहणी नहीं, हो तहि उपरि मेरौ बहु भाउ ।।रास।१५।

विवाह हो सुणि राजा सो राउ बुलाइ, सुरसुंदरि तसु दीन्ही ब्याहि ।
अस्व हस्ती बहु डाइजं, हो वस्त्र पटंबर बहु आभर्ण ।
दासी दास दीया घणा हो, मणि माणिक जड्या सोवर्ण ।।रास।१६।।

मैनासुन्दरी से इच्छित वर के लिये पूछना

हो एकं दिनि मैणासुंदरि, आठ द्रव्य ले थाली भरी ।
जिणवर पूजण सा चली, हो पूज्या जिण श्रुत गुरू मन लाइ ।
जिणवाणी गुरू मुख सुणी, हो हरष तासु कै अंगिन माइ ।।रास।१७।।

हो फूलमाल गंधोदक लेई, आण्यौ घरां पितानै देइ ।
लेहु पिता सुत आसिका, हो राजा गंधोदक सुभ वंदि ।
लइ आसिका भगतिस्यौ, हो मन वच काय बहुत आनंदि ।।रास।१८।।

मैनासुंदरी का उत्तर

हो लघु पुत्रीस्यौं जपै राउ, हो ब्याहौ वर जाको होइ भाइ ।
सुता बात कहि मन तणी, हो मैणासुंदरी जंपै तात ।
वचन अजुगता तुम्ह कह्या, हो कर्म लिख्यौ सो मिलिसी कंत ।।रास।१६।।

हो सुभ अरू असुभ कर्म कै बंधि, धरि ले जाइ जीव नै कंधि ।
रावण हारो को नहीं, हो पिता मात बधे जसु बांह ।
कुल कन्या तहिनै वरै, करै स्नेह जिम देहक छांह ।।रास।।२०।।

हो जीव कर्म कै भयो सुभाइ, कर्म बन्ध्यो बहु गति जाइ ।
जीव तणो बल को नहीं, हो जीव विचारै अयो जाइ ।
सकलप विकलप सहु तजौ, हो निर्जरि कर्म मुकति पद होइ ।।२१।।

हो मनवंछित वर वेस्या लेइ, ते मुख महा नरक पद देइ ।
कुल कन्या इछै नहीं, हो सुभ अरु असुभ कर्म कै भाइ ।
बावै जिसो तिसौ लुणै, हो अंति कालि तैसा फल खाइ ।।रास।२२।।

पिता का क्रोधित होना तथा अपनी इच्छानुसार विवाह करने का निश्चय करना

हो होए कोप करि सुंदरि तात, पुत्री हो राखी मेरी बात ।
देखौ कर्म किसौ फलौ, हो गलत कोढ़ होइ जाको अंग ।
मैंणा सुंदरि ब्याहिस्यो, हो कर्म सुता को देखौं रंग ।।रास।२३।।

हो राजा मन में मतौ उपाइ, ऐकै दिनि वन क्रीड़ा जाइ ।
सिरीपाल तहि देखियो, हो रक्षक अंग सातसै साथ ।
कोढ़ अठारा पुरिया, हो तुरंग बाल का पीछी हाथि ।।रास।।२४।।

हो बहरी ब्यौंची कोढ कुजाति, खसरो कंडू ते बहु भांति ।
सीहल पथरी बोदरी, हो बडो बाउ जहि वैसै नाक ।
कोढ मसूरि उजाणि जे, हो वेहै गलै बकै जिम काक ।।२५।।

हो कोढ उवंबर सेत सरीर, दाद कोढ अति दुःख गहीर ।
खुसन्यौ बाल रहै नहीं, हो कांवी कोढ़ उपजै माल ।
गलत कोढ़ अंगुलि चुवै, हो निकलै हाड उपडै खाल ।।२६।।

हो इहि विधि कोढ रह्या भरपूरि, कोढी एक बजावै तूर ।
एक संख धुनि उच्चरै, हो बावै इक सीगी असमान ।
एक बजावै की वरी, हो एक देइ बरगू को ताल ।।रास।२७।।

हो कोढी एक छत्र सिरितांणि, कोढी गाइ न विरद बखाणि ।
इक न कोच कोढी घणा, हो लाठी करि ले कोढी रंक ।
मार मार धुनि उच्चरै, हो करै न नीच कहुं की संक ।।२८।।

हो इह विधि कोढी बहु विकराल, वेसर चढिउ राउ सिरिपाल ।
आवत राजा देखयो, हो मन माहै अति करै विचार ।
पुत्री इहनै ब्याहिस्यौ हो, देखौ कर्म तणौ ब्योहार ।।२९।।

हो तब मंत्रीस्यो बोल्यो राउ, इहतें बेहु रहसनें हाउ ।
वर सुंदरि आइयो, हो बन माहैं छै भानो सराइ ।
मंत्री कहिए सुभटस्यौ, हो डेरो तासु मैं आइ ।।३०।।

हो राउ बचन सुणि मंत्री गयो, सिरीपालस्यो तिहि बीनयो ।
बिनौ भगति भासीयो घणो, हो बेइ उतारो मंत्री जाइ ।
राजास्यौ बीनती करै, हो भलौ बुझतौ होइन राइ ।।३१।।

हो कहूं कह्यो रावल मैं जाइ, हो भयो सोक अति माज न खाइ ।
राजा की मति सहु गइ, हो कोढी नै किम सुंदरि देई ।
अपजस जग मैं बिस्तरै, हो औसा कर्म न नीच करेइ ।।३२।।

हो भणै मंत्री सुणि राउ विचार, काग गलै किम सौभै हार ।
बात अजुगतो तुम करो, हो कहां मैणासुंदरि सुकमाल ।।
कहां कोढीवर तुम्ह जोडयो, हो राहुचंद्र पडतर भोवाल ।।३३।।

हो सुण्या वचन जंपै पहुपाल राज विभूति भली सिरीपाल ।
राजा कै घोडा घणा, हो इहकै बेसर गदहा आधि ।
राजा कै सेवक घणा, हो कोढी कै भला सात सै साथि ।।३४।।

श्रीपाल के साथ विवाह

हो लगन महूरत बेगि लिखाइ, वेदी मंडप सोभा लाइ ।
वस्त्र पटंबर ताणियां, हो वर कन्या नै तेल चढोडि ।
सोल सिंगार जु साजिया, हो बैठा बेदी अंचल जोडि ।।३५।।

हो बांभण भणै वेद झणकार, कामिणी गावैं गीत सुचार ।
भाट भणै बिडदावली, हो वर कन्या देखे नृप रूप ।
मनि पछितावा बहु करै, हो मैं पापी अति करी बिरूप ।।३६।।

हो औसा कर्म नीच नवि करै, हो देख रूप छिप आंसू भरै ।
बीसै कर्म बिटबना हो, कर्म राम राउण करि छार ।
हरि हर ब्रह्म बिटंबिया, हो कर्म किया कैरों सिंघार ।।३७।।

कर्म जोगि मेरी मति चली, दीसे कोन कर्म ये चली ।
पंडि गहि मूरख करै, हो छती वस्त को करे विजोग ।
दूरि वस्त पैदा करै, हो ए सहुकर्म तणा संयोग ।।३८।।

हो कोढी उपणो कौंण सुदेस, कहां उजेणी भयो प्रवेस ।
कर्म जोग हमनं मिल्यो, हो कोढी सुंदरि भयो विवाह ।
समुदि सिमल जुडी मिलै, हो तिम इहु भयो कर्म को भाउ ।।रास।।३९।।

हो दीयो डाइजो अधिक सुचार, घोडा हस्ती कनक अपार ।
दासी दास दीया घणा, हो छत्र पालिकी बहुत जडाउ ।
नगरी बाहरि घर दीया, हो सीरीपाल सुंदरि उछाहु ।।रास।४०।।

हो अंगरक्ष लैता या साथ, दान मान दे जोड्या हाथ ।
जानी सहु संतोषीया, हो भइ नफेरी नाद निसाण ।
विदा करी सीरीपाल को, हो ले आयो सुंदरि निज थान ।।रास।४१।।

हो सुंदरि बात कर्म परिघरै, सिरीपाल की सेवा करै ।
मन अडोल राखै सदा, हो देव गुरू की भक्ति करेइ ।
मत मिथ्यात तज्यो सबै, हो धर्म कुधर्म परीक्षा लेइ ।।रास।४२।।

मैंदासुन्दरी द्वारा जिन पूजा करना

हो एकै दिनि पिय नै लै साथ, गइ जिणालै जगनाथ ।
देव शास्त्र गुरू वंदिया, हो जिणवर चरणा पूज करेइ
आठ द्रव्य लीया भला, हो मन वच काया भाउ करेइ ।।रास।४३।।

मुनिराज से कोढ दूर होने का उपाय पूछना

हो पाछै गुरू का पूज्या पाउ, सिरीपाल ले बैठी आइ ।
हाथ जोडि गुरूस्यो, भणों, हो स्वामी कर्म कंत कै जोग ।
कोड उवंबर उपनो हो, करि उपगार जाइ सहु रोग ।।रास।४४।।

मुनिराज का उत्तर

हो मुनिवर भणै सुंदरी सुणौं, जीव कर्म भुजै आपणो ।
बाधै जिसो तीसो लुणौ, हो जिनवर धर्म एक आधार ।
चहु गति प्राणी बुडतो हो, नाव समान उतारण पार ।।रास।४५।।

हो धर्म सरावक जती को सुणो, श्रावक धर्म सुगं सुख बणो ।
जती धर्म शिवपुरि लहै, हो आठ मूल गुणस्यो समत ।
बारह व्रत अति निर्मला, हो ते पालै करि सुधो चित ।।४६।।

दोष अठारा रहितसु देव, गुरु निरगंथ सुजाणीए ।
वाणी जिणमुख नीसरी हो एता को दिढ निश्चो करे ।
सकलप विकलप सहु तजै, हो मत मिथ्यात सबै परिहर ।।४७।।

हो सुणी बात हरख्या भया, हो समकित सुद्ध व्रत सहु लया ।
धर्म जिणेसुर को सही, हो मैणा सुंदरि जंपै तात ।
व्रत भलौं उपदेस द्यो, हो जहि थे होइ रोग की घात ।।४८।।

हो मुनिवर बोलै सुणौ कुमारि, सिद्धचक्र गरयो संसारि ।
सिद्धचक्र व्रत तुम्ह करौ, हो आठ दिवस पूजो मनलाइ ।
आठ द्रव्य ले निर्मला, हो कोढ कलेस व्याधि सहु जाइ ।।४६।।

हो सुण्या वचन व्रत ले बहु भाइ, हो भयो हरष अति अगि न माई ।
मुनी वंदि घरि आइया, हो करे सनान लए भरि नीर ।
कूंकूं चंदन वावना, हो पहरे महा पट्टंबर चीर ।।रास ५०।।

सिद्धचक्र की पूजा करना

हो सिद्धचक्र थाली लिखि जत्र, वीजा अक्षर निर्मल मंत्र ।
पंचामृत रस आणीया, हो जिण चौवीस न्हावण करेइ ।
आठ द्रव्य जिण पूजिया, हो भाउ भगति पुहपांजलि देइ ।।५१।।

हो सित आठै फागुन दिन सार, सिद्धचक्र को रच्यो विथार ।
बावन कोठा मांडलौ, हो जिणवर बिंब मेलि चहुं पास ।
आठ भेद पूजा करी, हो केसरि मध्य कपूर सुवास ।।५२।।

हो आठौ दिवसि पूज अति रंग, चंदन पहुप लगाए अग ।
अगंरक्ष सिरीपालस्यौ हो जिण गधोदक सींचि सरीर ।
असि आऊसा मंत्र जपि, हो ब्रह्मचर्य पालै वरवीर ।।५३।।

हो नवमी दीनि दस गुणी विचार, जिण पूजा करि अधिक सुचार ।
अनोकमि पहलै करी, हो दशमी दिनि सौ गुणो पसार ।
चदन गधोदक लया, दो देह सुभट लावै अतिसार ।।५४।।

हो ग्यारसि दिनि सहस गुणी जाणि, जिणवर पूज पुण्य की खानि ।
चदन अग लगाइयो, हो दस सहस बारसि विस्तार ।
तेरसि लाख गुणी कही, हो पूजा करै रोग सहु छार ।।५५।।

हो पूजा लाख दस गुणी जाणि, चौदसि दिनि पहलै परमाणि ।
कोडि गुणी पून्यो कही, आठ दिवस वाजित्रा दान ।
नृपि करै बहु कामिनी हो, गावै जिणगुण सरलै साद ।।५६।।

कुष्ठ रोग का दूर होना

हो आठ दिवस करि पूजा रलो, गयो कोढ जिम अहि कचुली ।
कामदेव काया भइ, हो अगरक्ष राजा सिरीपाल ।
सिद्धचक्र पूजा करी, हो राग सोग नवि व्यापै काल ।।५७।।

हो देवशास्त्र गुरू करि वदना, सिरीपाल सुदरि तंक्षणा ।
साथि अगरक्षक सातसै, हो करि पूजा आया निज थान ।
दुर्बल दुखीति पोषया, हो पात्र तिनि चहु विधि दे दान ।।५८।।

हो सुंदरि वर राजा सिरीपाल, सुख मैं जातन जाणी काल ।
इद्र जेम सुख भोगवै, हो देव सास्त्र गुरू को प्रति भक्त ।
मत मिथ्यात न सरदहै, हो दुराचार विस्न सहु तित्त ।।५९।।

हो सिद्धचक्र पूजा करि सार, द्वारापेषण दान अहार ।
पछ आप भोजन करै, हो पर कामिनी देखै निज मात ।
सत्य वचन बोलै सदा, हो तरस जीव को करै न घात ।।६०।।

हो द्रव्य परायो लेइ न जाण, परिगह तणो करै परमाण ।
करै अणुव्रत भावना हो, गुणव्रत तीन्यो पालै सार ।
सामाइक पोसो करै, हो अतिथिभाग सलेखन चार ।।६१।।

हो इहि विधि काल गमैं दिन राति, चौरासी लख जीवह जाति ।
मन बच काइ क्षमा करै, हो अस बोलैं बंदी जन घणा ।
धर्म कथा मैं दिन गमैं, हो धीर चित्त राखैं आपणी ॥६२॥

माता से मिलन

हो पुत्र गए सै कुंदामाइ, आई सीरीपाल कै ठाइ ।
कोडीभड माता मिल्यो, हो मैणासुंदरि बंदै सासु ।
वस्त्र कनक दीन्हा घणा, हो मनि हरषी अति भयो विकास ॥६३॥

हो भोजन भगति करी बहु भाई, बूझी बात सबै निरताइ ।
नग्र देस कुल पाछिलो, हो सासू कही बहूस्यो बात ।
सहु सनबध जु पाछिलो, हो सुण्यो सुंदरी हरस्यो गात ॥६४॥

पुहपाल द्वारा श्रीपाल को देखना

हो एकै दिनि राजा बन गयो, सुंदरि सहित सुभट देखीयो ।
मन मैं चिन्ता उपनी, हो कौण पुरषि इहु पुत्री थान ।
बात अजुगती अति भई, हो राजा कै मनि भयो गुमान ॥६५॥

हो राजा मुख विलखो देखियो, अभिप्राय मंत्री लेखियो ।
हाथ जोडि विनती करै, हो स्वामी सुंदरि शील सुजाणि ।
पुरष जवाइ तुम्ह तणो, हो गयो कोढ पुण्य कै प्रमाणि ॥६६॥

हो सुणी बात मनि भयो विकास, गयो वेग पुत्री कै पास ।
उठि कोडिभड भेटियो, हो सुंदरि आइ तात बंदियो ।
राजा पुत्रीस्यों भणै, हो सुभ को उदो कर्म तुम दियो ॥६७॥

हो भणै राउ सिरीपाल सुणहि, आधौ राज उजेणी लेहि ।
हम उपरि किरपा करो, हो कोडीभड जपै सुणि माम ।
राज भोगऊ आपणो हो, हमनैं नहीं राजस्यो काम ॥६८॥

हो राजा दीना वस्त्र जडाउ, विनो भगति करि निर्मल भाउ ।
पुत्री पुरिष सतोषीया हो, भयो हरष अति अंगि न माइ ।
कर्म सुता को परखीयो, हो तंक्षण गयो आपणै ठाइ ॥६९॥

हो तीया सहित राजा सिरीपाल, सुख मैं जातन जाणै काल ।
पूर्व चारि पोसौ करे, हो जस बोलैं बदी जन घणौ ।
पिता नाउ कोइन ले, नाम लेहू सब ससुरा तणो ।।७०।।

हो सुण दुख पावै श्रीपाल, पिता नाम को भयो प्रजाल ।
नाम ससुर कै आणिज्यौ, हो धन कलत्रस्यौ नाही काम ।
पिता न्यास को ना सहै, हो नग्र उजेणी छोडौ वास ।।७१।।

हो देखो विलख वदन सुन्दरी, भणै कंतस्यौ चिंता भरी ।
स्वामि बात कही मन तणी, चिंता कवण विलख मुख एहु ।
सहु सरीर दुर्बल भयो, हो कहौ बात जिम जाइ संदेहु ।।७२।।

हो भणै सुभट सुणि सुंदरि बात, जहि चिंता वे दुर्बल गात ।
नग्र उजेणी थे चलौं, हो रत्नदीप सुभ देखौं जाइ ।
द्रव्य आणिस्यौ अति घणो, हो दान पुण्य खरचौ मन लाइ ।।७३।।

हो मैणासुंदरि जंपै कंत, तुम्ह विणु इक क्षण रहै न चित्त ।
साथि लेइ हमनै चलौ, हो तव कोडीभड हसि उच्चरै ।।
फल लागा जे राम नै, हो साथि सियानै लियो फिरै ।।७४।।

हो मैणासुन्दरि जपै कत, स्वामी अवधि करो परमाण ।
ते दिन हमस्यौ बीनउ, हो भणं सुभट सुंदरी सुजाणि ।
बरष बारहं आइयौ, हो बचन हमारा निश्चै जाणि ।।७५।।

हो सुंदरि सीख देइ सुणि कंत, नाम राखि जे मनि अरहंत ।
सत्य वचन अरहंत का, हो गुरु बंदिज्यौं महा निरगथ ।
सिद्धचक्र व्रत सेविज्यौं, हो संजम शील चालिज्यौं पंथ ।।७६।।

हो दुराचारि दासी कूढणी, मसवासी मिथ्या दृष्टिणी ।
बेस्या परकामिणि तजी, हो पुरुष परायो जो आचरै ।
सावधान रहिज्यौ सदा, हो भूलि बिसास तासु मत करै ।।७७।।

हो घणो कहा करिजे आलाप, उपजै बुद्धि सकीज्यो आप ।
माता नै मत वसिरो हो हमस्यो स्नेहु तजै मत कंत ।
धर्म जिणेसर समरिज्यो, हो दिन पूजा कीजो अरहंत ॥७८॥

हो कोडीभड बोल्यो सुंदरी, माता की बहु सेवा करी ।
अगंरख जे सात सै, हो भोजन वस्त्र देइ बहु भाइ ।
विनो भक्ति कीजै घणो, हो पूजा दान करी मन लाइ ॥७९॥

हो माता चरण वदि वरवीर, चल्यो दीप नै साहस धीर ।
मन माहे सका नहीं, हो लंघि देस वन गिरि नदि ताल ।
सागर तट्ट ठाढो भयो, हो भृगकछ पटण सुविसाल ॥८०॥

हो धवध सेठि तहं सारथ वाहु, प्रोहण पूरि पंचसै साहु ।
रत्नदीप ने गम कीयो, हो पोत न चलै कर्म कै भाइ ।
निमित ज्ञान मुनि बुझीयो, लक्षण सहित नर ठेल्या जाइ ॥८१॥

हो सेट्ठि भणै नर ल्याऊ जोइ, लक्षण अंगि बतीस जु होइ ।
वणिक पुत्र लेवा गया, हो कोटीभड दीठौं वरबीर ।
हीए हरष उपनो घणो, हो बोल्या वणिक सुणो हो धीर ॥८२॥

हो धवल सेठि तहा वेगा चलो, सीझै काम होइ सहु भलो ।
रत्नदीप प्रोहण चलै हो, सिरीपाल मन चितै बात ।
रत्नदीप हम जाइवो, हो आयो वणिक पुत्र कै साथ ॥८३॥

हो देखि सेठि मन हरखो भयो, वस्त्र दान कंचन बहु दीयो ।
कोडीभडस्यौं वीनवै, हो पोत समूह ठेलि वरवीर ।
सेवा मागो आपणी, हो तुम्ह प्रसादि उत्तरो जल तीर ॥८४॥

हो भासै सुभट सेट्ठि सांभलो, सुभट सहस दस सको जीवलो ।
एतो हमनै देइज्यो, हो वणिक भणै मांगो निरताइ ।
बात आजुगती तुम कही, हो भूपं दइकै दीन्हा जाइ ॥८५॥

हो भणै सुभट सेट्ठि जी सुणौ, कारिज सारौ तुम्ह तणौ ।
सेवा कीज्यौ हम तणी, हो गाइ गलै जे घटा होइ ।
मोल करै सब दूध कौ, हो एहु बात जाणै सहु कोई ।।८६ ।

हो नाम पंच परमेट्ठी लीया, कोडीभड प्रोहण ठेलिया ।
जाणि गगन तारा चल्या, हो लोह टोपरी सिरहं धराइ ।
धीमर जतन करै घणो, हो न तु भेरड पक्ष ले जाइ ।।८७।।

जब प्रोहण आ वेरी चल्या, लाख चोर पापी बिच मिल्या ।
लागा आइ परोहण, हो धवल सेठि तब सन्मुख गयो ।
सुभट लडाइ बहु करै, हो भागा कातर को नवि रह्यो ।।८८।।

हो धवल सेठि रण जाइ न सह्यो, चोरां सेठि बंधि करि लयो ।
सुभट लडाइ हारीया, हो कोडीभडस्यो करी पुकार ।
सेट्ठि बंधि प्रोहण लया, हो वीर अबै क्यौ करि उपगार ।।८९।।

हो लेइ धनष चल्यो सरीपाल, बाण वृष्टि बरसै असराल ।
कोडीभड रणि आगलो, हो भागा कहां छुटिस्यो नीच ।
हो आइ सही तुम्हारी मीच, रास भणौ सिरीपाल कौ ।।९०।।

हो चोरां बण रालि सहु भाडि, सिरीपालस्यौ मांडी राडि ।
कोडीभड रण जीतियो, हो उपरो उपरी चोर बधाइ ।
सेट्ठि परोहण आंणिया, हो जीत्या सत्र निसाण बजाइ ।।९१।।

हो छोडा चोर विनौ बहु कीयो, दया भाउ करि भोजन दीयो ।
मन वच काय क्षमा करी, हो हाथ जाडि बोल्या सहु चोर
तुम समान उत्तम नहीं हो हम पापी लोभी घण घोर ।।९२।।

हो सात परोहण लिहु बरबीर, मधि बस्त अति गहर गहीर ।
तुम से सेवा चूक छां, हो बहुडि सेठिस्यौ करि व्यापार ।
आप दिसावर की गइ, हो उपरा उपरी स्नेह सुधार ।।९३।।

हो सीरीपाल बंदो बहु भाउ, पहुंता चोर आपणै ठाइ ।
रली रंग बिड हरि भया, हो सेट्ठि सुभट नै दीनौ मान ।
इहु उपगार न बीसरौ, हो हमनै दीयौ जीउ कौ दान ॥९४॥

हो वस्त्र कनक दीना करि भाउ, बोल्यौ धवल विनौ करि साहु ।
धर्मपुत्र छौ हम तणा, हो सेना सब करौ सत खड ॥९५॥

दोहडा—कोटपाल बणिवर कह्यो, नाइ सुइ सुनाइ ।
एता मित्र जुतौ करौ, जं होइ सर्व संधार ॥९६॥

हो बधी धुजा बहुत बिस्तारि, चल्या परोहण समदम झारि ।
कर्म जोग्य तट गहतियो, हो दीट्ठौ रत्नदीप सुभ ठाइ ।
सहसकूट तहां सोभितौ, हो ताकी महमा कही न जाइ ॥९७॥

हो प्रोहण थे उत्तरीउ सिरीपाल, गयो जहां जिण भवण विसाल ।
गुरू पै लीनी आग्वडी, हो देखौं जहां जिणेसुर थान ।
देव पूजि भोजन करौ, हो मनुष्य जन्म को फल परमाण ॥९८॥

हो सहसकूट सोभा बहु भांति बण्यो पीठ चन्द्रमणि कान्ति ।
कनक थभ चहुंदिसी बण्या, हो पचवर्ण मणि वेदी जडिउ ।
सिला सिंघासणि सोभितौ, हो जाणि बिधाता आपण घडिउ ॥९९॥

हो पदमराग मणि आवलसार, पाचि पना बिचि विचि बिस्तार ।
कनक कलस सिखरां ठयो, हो उछलै धुजा अधिक आकाश ।
दीट्ठी सोभा अति घणी, हो सिरीपाल मनि भयो विकास ॥१००॥

हो व्रज कपाट जड्या सुभ दीठ, मधि भूमि जिण बिंब बइट्ठ ।
तक्षण करस्यौ टुंलीयो, हो आगलि तूठि उघडिउ द्वार ।
जिण प्रतिमा देखी भली हो पुहुतो मधि कीयौ जै कार ॥१०१॥

हो परदक्षणा दइ तिंहु बार, गुण ग्राम पढि अधिक विचार ।
भाव भगति जिण बंदीया, हो करि स्नान पहने सुभ चीर ।
जिण चरण पूजा करी, हो झारी हाथ लइ भरि नीर ॥१०२॥

हो जल चंदन अक्षत सुभ माल, नेवज दीप धूप भरी थाल।
नालिकेर फल बहु लीया, हो पहुपांजलि रचि जोड्या हाथ।
जिणवर गुण भास्या घणा, हो जैजै स्वामी त्रिभुवन नाथ ॥१०३॥

हो जिणवर चरण पूजि बहुभाइ बंदि जिणेसुर बिड हरि आइ।
विद्याधर इक आइयो, हो सिरीपालस्यौ जंपै ताम।
हम उपरि किरपा करी, हो मन वांछित सहु पूगे काम ॥१०४॥

हो सिरीपाल बुझै करि मान, कौण नाम तुम्ह कौण सुथान।
कौण काजु हमस्यौं कहो, हो विद्याधर बोलै करि भाउ।
विदितप्रभ मुझ नाम छै, हो रत्नदीप सुभ मेरी ठाइ ॥१०५॥

हो रैणमजुसा पुत्री जाणि, गुण लावण्य पुण्य की खानि।
देखि रूप मुनि बुझीयो, हो पुत्री कौ वर कैहो विचार।
अवधि जाणि मुनि बोलियो, हो सहसकूट उघाडै द्वार ॥१०६॥

हो सो तुम सुता परणिमी आई, साच वचन सहु जाणी राइ।
हम सेवक ईहा छोडियो, हो देखा तुम अति पुण्य निवास।
जाइ वेगि हमस्यौं कह्यो, हो आए सुभट तुमारै पास ॥१०७॥

हो अब हम उपरि करहु पसाउ, रैणमजूसा करौ विवाह।
मुनि का वचन भया सही, हो रचि सुभ मण्डप चौरी चार।
वस्त्र पटबर छाइया हो, कनक कलस मेल्हा चहुं द्वार ॥१०८॥

हो अंब पत्र की बंधी माल, हरित बस रोपिया विसाल।
कन्या वर सिंगारिया, हो चोवा चदन तेल चहोडि।
विप्र वेद धुनि उच्चरै, हो तीया पुरिष बैठ्ठा कर जोडि ॥१०९॥

हो रैणमजूषा अरु सिरीपाल, बार सात फिरियो भोवाल।
अग्नि विप्र साखी भयो, हो भया महोछा मगलाचार।
दे विद्याधर डाइजो, हो हस्ती घोडा कनक अपार ॥११०॥

हो बाजा बरखू मेरि निसाण, सहनाइ झालरि घसमान।
बर सुंदरि ले चालियो हो, चारण बोलें विडद बखाण।
रली रंग ते अति घणा, हो तंक्षण गयो परोहण थान ॥१११॥

हो धवल सेट्ठि देखो सिरीपाल, साथि तीया सुभ जोबन बाल।
मन में हरष भयौ घणौं, हो बाणिक पुत्र सब भयो आनंद।
बर कामिनी सोभा घणी हो जाणिकि सोभै रहणिचन्द ॥११२॥

हो विडहर मध्य भयो जैकार, सिरीपाल दीनो ज्योणार।
तथा जुगति सन्तोषीया, हो कनक वस्त्र दीना बहु दान।
हाथ जोडि विनती करी हो धवल सेट्ठि नैं दीनौ मान ॥११३॥

हो एकै दिनि सिरीपाल हसत, रैणमजूसा बूझै कस्त।
कौण देस थे आइया हो माता पिता कौंण तुम ठाम।
कौण जाति स्वामी कहो, हो निश्चै कौण तुम्हारौ नाम ॥११४॥

हो सुणि कोडीभड करैं बखाण, अगदेस चंपापुरि थान।
तासु सिघरथ राजइ, हो कुंदापहु तसु तीया सुजाणि।
तासु पुत्र सिरीपाल हों, हो वचन हमारा जाणि प्रमाणि ॥११५॥

हो भउं सिघरथ राजा तात, राज लीयो तसु लहुडं भ्रात।
बालपणं हम काढिया, हो निकस्यौ कोढ़ कर्म कै भाइ।
देस ग्राम छाड्या घणा, हो नग्र उजेणी पहुता आइ ॥११६॥

हो प्रजापाल राजा तिह थानि, मैणासुन्दरि सुता सुजाणि।
राजा सा हमकौं दइ, हो भयो विवाह कर्म्म सजोग।
सिद्धचक्र पूजा करी, हो तासु पुण्य भागौ सहु रोग ॥११७॥

हो हमस्यौ कहै बाल गोपाल, राज जवाइ इहु सिरीपाल।
नाम पिता कौ कौ न लेहो, मेरा मन मैं उपज्यो सोग।
कामणि सेवक छाडिया, हो भृगुकछ पटणि सेट्ठि संजोग ॥११८॥

हो आए इहां सेट्ठि के साथ, सहसकूट दीट्ठौ जिणनाथ ।
पिता तुम्हारो आइयो, हो हम तुम्ह भयो विवाह संयोग ।
कही बात सहु पाछिली, हो सुभ अरु असुभ कर्म कौ जोग ।।११९।।

हो रैणामंजूसा सुणी बहु बात, हरस्यो चित्त विकास्यौ गात ।
कंत तणी सेवा करै, हो नृति गीत गावै अति रंग ।
मन मोहै भरतार कौ, हो छाडै नहीं एक क्षण संग ।।१२०।।

हो मोहण पूरि वस्त बहु लेइ, धवलसेटिठ घर नै चलाई ।
साथि परोहण पंचसै, हो देखे रैणमजूमा रंग ।
धवल सेट्ठि मन चितवै, हो इहि कामिनोस्यौं कीजै संग ।।१२१।।

हो रैणमजूसा सेवै कंत, धवल सेट्ठि प्रति पीसै दंत ।
नींद भूख तिरषा गई, हो मंत्री जोग्य कही सहु बात ।
सुंदरिस्यौ मेलौ करौ, हो कहीं मरौ करौ अपघात ।।१२२।।

हो सुणी बात मंत्री दे सीख, पच लोक मैं थारी लीक ।
असौ मनि मत चितवै, हो कीचक गयौ द्रोपदी संग ।
एह कथा जगि जाणि जे, हो भीमराय तसु कीनौ भग ।।१२३।।

नर्क तणा दुख भोगवै, हो जो नर शील न पालै सार ।
हरत परत दुःखी गमै, हो मरै अखूटी मूढ गवार ।।१२४।।
हो रावण गयो सिया परसंग, लखमणि तासु कीयो सिर भंग ।

हो धरम पूत थारो सिरीपाल, परतषि माथा उपरि काल ।
तासु घरणि किम सेविस्यौ, हो पुत्र घरणि पुत्री सम जाणि ।
परकामिणि माता गमै, हो भवियण ते पहुचै निरवाणि ।।१२५।।

हो दिन प्रति कलह करावत जाइ, नारद सीधो सील सुभाव ।
कर्म तोडि शिवपुरि गयो, हो सीता राखो दिढ करि सील ।
अग्नि कुंड पाणी भया, हो भविजण सील म करिज्यो ढील ।।१२६।।

हे सेट्ठि सुणो मंत्री की बात, पायो दुख पसीज्यो गात ।
हाथ जोडि विनती करै, हो लाख टका पहली ल्यौ रोक ।
सुंदरि हम भेलो करो, हो जाय हमारा मन को सोक ।।१२७।।

हो मंत्री भयो लोभ को भाउ, सुभट मरण को रच्यो उपाउ ।
धीमर सहु समझाइयो, हो छल करि धीमर करै पुकार ।
चोर परोहण आइया, हो उलसै मोटा मछ अपार ॥१२८॥

हो सुणि पुकार अति गहर गहीर, देखण लागो दहु दिसा ।
हो तौ लग पापी पाप कमाइ, काटि बरत प्रोहण तणी ।
हो पडिउ सुभट सागर मैं जाइ, रास भणो सिरीपाल को ॥१२९॥

हो जे था प्रोहणि वणिक विसाल, सागर पडिउ देखि सिरीपाल ।
मन मैं दु:ख पायो घणो, हो रैणमंजूसा करै पुकार ।
सिर कूटै हीयो हणै, हो कहणो कोडी भड भरतार ॥१३०॥

हो सुंदरी दु:ख लागी बहु कर्ण, तज्या तंबोल अन्न आभरण ।
नैणा नीर झुरै घणो, हो धवल सेट्ठि तब मंत्र उपाइ ।
तंखण पट्ठइ कुटणी, हो रैणमंजूसास्यौ कहि जाइ ॥१३१॥

हो गइ [कूटणी सुंदरि पासि, कहै कपट करि बात बिसासि ।
सुता बात मेरी सुणौ, हो मुवा साथि नवि मूवो कोई ।
जामण मरण अनादि को, हो कोइ किसकौ सगो न कोइ ॥१३२॥

हो मन को छांडि सुंदरी सोग, धवल सेट्ठि मेलो तुम जोग ।
भोग भोगऊ मन तणा, हो मनुष्य जन्म संसारा आइ ।
खाजे पीजे बिलसीजे, हो अवर जनम की कही न जाइ ॥१३३॥

हो सुणि सुंदरी कूटणि बात, हो उपनो दु:ख पसीनो गात ।
कोप करिबि सा बीनवो हो नख थे बेगि जाहि अब रांड ।
पाप बचन तैं भासिया, हो इसा बोल थे होसी भांड ॥१३४॥

हो नख थे कुटणी दइ उट्ठाइ, आयो सेट्ठि सुदरी ठाइ ।
हाथ जोडि बीनती करै, हो हम उपरि करि दया पसाउ ।
काम अग्नि तनु बालीयो, हो राख्यै बोल हमारो भाउ ॥१३५॥

हो मुणि बोली कोडीभड नारि, पुत्र घरणि पुत्री जिसी होइ ।
इह तौ खर सूवर आचार, माता भगनि धिया ना गिणै ।
हो पापी करै सग व्योहार, हो रास भणै सिरीपाल को ॥१३६॥

हो जहि कै मात बहण धिय होइ, तिह काए परणात मन होइ ।
तु सुहणा खर सारिखौ, हो देव धर्म कुल छोडी लाज ।
हरत परत दूज्यौ गया, हो सोचै नाही काज अकाज ॥१३७॥

हो जहि नर नारी सील सुभाउ, तासु होइ सुर्गा लै ठाउ ।
सुर नर पद पूजा करै, हो कीरति पसरै तीन्यौ लोक ।
मुकति तणा सुख भोगवै, हो आवागवण न व्यापै रोग ॥१३८॥

हो जे नर नारि शील करै हीण, ते नर नरक दुःख करि खीण ।
ताती पुतली लोह की, हो असुर देव तसु कंठि लगाइ ।
कूर वचन मुख थे कहै, हो पर कामिनि इह सेऊ धाइ ॥१३९॥

हो पापी सेट्ठि न मानै बात, रैणमंजूसा कौ गहि हाथ ।
पाप करत सार्क नही, हो आया तब जिण सासण देव ।
धवल सेट्ठि दिठ बंधीयो, हो कोप करिवि बहु बोल्या एव ॥१४०॥

हो ज्वालामालिणी देवी आइ, दीनी प्रोहण अग्नि लगाइ ।
रोहिणि औंधौ टकियो, हो विष्टा मुख मैं दीनी ठेलि ।
लात धमूका अति हणै, हो साकल तौष गला मे मेलि ॥१४१॥

हो वातकुमार जब तब आइ, दीनो अधिकौ पवन चलाइ ।
जल कलोल बहु उछलै, हो चक्केसुरि अति कीनौ कोप ।
प्रोहण फेरै चक्रज्यौ, हो अधकार करियो आरोप ॥१४२॥

हो अवा तातै छडकै तेलि, मूत नासिका दीनो ठेलि ।
छेदन भेदन दुख सहै, हो मणिभद्र आयो तिह ठाइ ।
मार मार मुखि उच्चरै, हो धवल सेट्ठि मुखि लाइ ॥१४३॥

हो देखि सेट्ठि कंपिवि सहु लोग, हो गाली देइ थंपै तसु जोग ।
पाणी अजुगति तै करी, समुदि माणि बोल्यो सहु साथ ।
सुंदरि चरणा ढोक द्यो, हो वीनति करि बहु जोडी हाथ ॥१४४॥

हो धवल सेट्ठि तब जोड्या हाथ, क्षमा करो हम उपरि मात ।
हम अपराध कीयो घणौं, हो प्रोहण में जे वणिक कुमार ।
चरण वंदि विनती करो, हो माता तुम थे होइ उबार ॥१४५॥

हो सुण्या वचन जे बाण्या कह्या, रैंणमजूसा उपणी दया ।
कोप विषाद सबै तज्यो, हो दीयो देवतो सुन्दरि मान ।
पूजा करि चरणा तणी, हो तक्षण गया आपणै थान ॥१४६॥

हो पडिउ सुभट जो समुद मझारि, कहौं कथा सुभ बात विचारि ।
नमोकार मनि समरीयो, हो उपहरो उछाल्यो बरवीर ।
नमसकार मुख थे कहै, हो सागर मुजह तिरै अति धीर ॥१४७॥

हो जिण को नाम जपै अतिसार, जिण कै नाम तिरै भवपार ।
विष सर्प पीडै नही, हो जिण कै नाम जाइ सहु रोग ।
सूल सफोदर शाकिनी, हो पावै सुर्ग तणा बहु भोग ॥१४८॥

हो जिण कै नाइ अग्नि होइ नीर, जिण कै नाइ होइ विसखीर ।
सत्र मित्र होइ परणवै, हो गूंजै नाहि भूत पिसाच ।
राज चोर पीडै नही, हो जिणि कै नाम सासुतो वाउ ॥१४९॥

हो जिण कै नाइ होइ धरि रिद्धि, जिण कै नाम काज सहु सिद्धि ।
सुर नर सहु सेवा करै, हो सागर अति गहीर दे थाहु ।
परबत बाबी सारिखो, हो जिण कै नाम होइ सुभ लाइ ॥१५१॥

हो जिण कै नाम पाप थे छूटिय, खोड़ा बेडी सकुल तूटि ।
सर्प माल होइ परणवै, हो सजन लोग करै सहु काणि ।
जिण कै नाम गुणा चढै, हो जिण कै नाम *र्म को होइ हाणि ॥१५२॥

हो सिरीपाल जिणवर समदेइ, नीर मुजह बलि पाछो देइ ।
सक न मानै चित मं, हो सुभट जाई सागर मं चल्यो ।
काठ एक पानै पडिउ, हो जाणिकि मित्र पूर्विलो मिल्यो ॥१५३॥

हो पकडि काठ बैठो वरबीर, जल कलोल उछलै गहीर ।
पच परम गुरु मुखि कहै, हो मगरमछ बहु फिरै समीप ।
खाइ न सकै ही सुभट नै, हो कर्म जोग इक दीठो दीप ॥१५४॥

हो पुण्य बध अति साहस धीर, कर्म जोगि पाइ जलतीर ।
उतरि समुद् ट्राढो भयो, हो राजा सेवक राखा तीर ।
कोडीभड तहि देखीयो, हो जलधि मुजह बलि उतरीउ धीर ॥१५५॥

हो सिरीपाल का बचा पाइ, भयो हरष अति अगि न माइ ।
विनो भगति गाढी करी, त्याहु स्यौं सुभट भणं दे मान ।
साच बचन हमस्यो कहो, हो राजा कौण कौण पुरथान ॥१५६॥

हो वोल्या किंकर सुणि सिरीपाल, दलवणपटण सुविसाल ।
सोभा इंद्रपुरी जिसी, हो राज करै राजा धनपाल ।
गुनमाल तसु कामिनी, हो कंठ सुकंठ पुत्र सुकमाल ॥१५७॥

हो गुणमाला इक पुत्री जाणि, गुण लावण्य रूप की खानि ।
राजा मुनिवर बुझीयो, हो स्वामी गुणमाला भरतार ।
निमिती कहि कौणं तणी, हो जिन मन को सहु जाइ विकार ॥१५८॥

हो मुनिवर भणं अवधि को जाण, तिर समुद्र आवं तुम थान ।
नाम तासु सिरीपाल कहै, हो गुणमाला सो परणं आइ ।
कोडी भड पुणि ही मिलौ, हो इहो काइसो मुकतिहि जाइ ॥१५९॥

हो राजा सुणि मुनि का भाषीया, हम तो समद तीर राखीया ।
कर्म जोग तुम आइया, हो दरसण भयो तुम्हारो आजु ।
समुद्र मुजह बलि पैरीयो, हो मन वांछित सहु पूजे काज ॥१६०॥

हो कहि समबंध राउ पै भयो, नमस्कार करि तहि बीनयो ।
स्वामी सो नर आइयो, हो समुद्र भुजह बल उतरि पार ।
मुनि का वचन भया सही, हो भावहु वेगि बलाउताहि ॥१६१॥

हो भयो हरष वनपाल, गयौ सामुहौ जहां सिरीपाल ।
नग्रउ छाडिउ जुगतिस्यौं, हे भेरि न फेरी नाद निसाण ।
साहण सेना साखती, हो चारण बोले विडद बखाण ॥१६२॥

हो भेटिउ कंठ लगाइ नरिंद, हो हुइ राउ मनि भयो आनंद ।
कुसल विनौ बुझै घणौ, हो उपरा उपरि दीनौ मान ।
कोडीभड कुंअर चढिउ, हो गया वेगि दलपट्टण थान ॥१६३॥

हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ, कन्या केरौ लगन लिखाइ ।
मंडप वेदी सुभ रची हो अंब पत्र की बंधी माल ।
कनक कलस बहु दिसि बण्या, हो छाए निर्मल वस्त्र विसाल ॥१६४॥

हो गावै गीत तिया करि कोड, वस्त्र पटंबर बंध्यो मोड ।
फूल माल सोभा घणी, हो चोवा चदन वास बहोडि ।
वेदी विप्र बुलाइयो, हो वर कन्या बैट्ठा कर जोडि ॥१६५॥

हो भांवरि सात फिरिउ बहुं वाखि, भयो विवाह अगिन दे साखि ।
राजा दीनौ डाइजौ, हो कन्या हस्ति कनक के काण ।
देस ग्राम दीना घणा, हो विनती करि दीनौ बहुमान ॥१६६॥

हो विनती करि जंपै वनपाल, मेरौ बचन मानि सिरीपाल ।
राज हमारो भोगऊ, हो कोडीभउ बोलै सुणि माम ।
राजा तुमारो भोगऊ, हो हमनै नहीं राजस्यौ काम ॥१६७॥

हो विनौ करि जंपै नरनाथ, सर्व भंडार तुम्हारे हाथ ।
दान पुण्य पूजा करौ, हो सुसर बचन मान्यौ सिरीपाल ।
तिया सहित सुख भोगवै, हो सुख में जात न जाणै काल ॥१६८॥

हो कर्म्म जोग केइ दिन गया, धवल सेट्ठि मोहण आविया ।
जलधि तीर तह थिति करी, हो लइ भेट बहु राजा जोग ।
वस्त्र कनक हीरा लया, हो सेट्ठि सहित खिडहर का लोग ।।१६९।।

हो पहुता जहां राउ धनपाल, आगै मेल्हि भेट भरि थाल ।
राजा चरण जुहारिया, हो दीनौ राइ घणेरौ मान ।
कुसल क्षेम बुझी सबै, हो बैट्ठा सेट्ठि सभा के थान ।।१७०।।

हो तब जंपै राजा धनपाल, भेटि उठाइ लेहु सरीपाल ।
धवल सेट्ठि तंबोल द्यो, हो सुभट तंबोल देइ सुर भाइ ।
बणिक जके प्रोहण तणा, हो धवल सेट्ठि देखै निरताइ ।।१७१।।

हो सेट्ठि तणौ अति कसक्यो हीयो, सिरीपाल सागर मैं दीयौ ।
इह थानक किम आइयो, हो विदा लेइ थानकि चालिया ।
उपरा उपरी बीनबै, हो इहु तौ सिरीपाल आविया ।।१७२।।

हो पुरूष एक रावल महिलौ, बूझै सहु वितात पाछिलौ ।
सिरीपाल इहु कोण छै, हो राजा सेवक बोल्यो कोइ ।
सागर तिरि इह आवियो, हो राजा तणौ जवाइ होइ ।।१७३।।

हो बात सुणत मन मैं कंपिया, तक्षण प्रोहण थानक गया ।
वणिकपुत्र बैठा मतै, हो अब कोई चितऊ ऊपाइ ।
मरण होइ सिरीपाल कौ, हो काची व्याधि तूटि सहु जाइ ।।१७४।।

हो मन मै मतौ सेट्ठिऊ ठाणियौ, डूम एक तक्षण आणिया ।
राज सभा तुम गम करौ, हो नाचहु गावहु पिंगल छद ।
भगल सांग कीज्यौ घणा, हो राजा कै मान होइ आनंद ।।१७५।।

हो राजा तुमनै दान करेइ, सिरीपाल नै दुऊ देइ ।
तब प्रपंच तुम उट्ठिणीज्यो, हो सिरीपालस्यौ करि ज्यौ सग ।
बहुत सगाई काढिज्यौ, हो लाख दाम देस्यौ तुम जोग ।।१७६।।

सो सेट्ठि वचन सुणि हरसा भया, राजा सभा डूम सहु गया ।
ग्रोसर मांगयौ राउपैं, हो नाचैं गावैं गीत सुचंग ।
स्वांग मनोहर ग्रति करैं, हो विद्या मयल करैं सिर भंग ॥१७७॥

हो राजा देखि बहुत हरिखीयो, सिरीपाल नैं दुऊ दीयो ।
डूम जोगैं दान द्यौ, हो सिरीपाल दे दान बुलाइ ।
डूमा पाखंड मांडियो, हो रह्या सुभट नैं कंठि लगाइ ॥१७८॥

हो एक डूमडी उट्ठी रोई, मेरी सगी भतीजी होइ ।
एक डूमडी बीनवै, हो इहु मेरी पुत्री भरतार ।
बहुत दिवस थे पाइयो, हो कामि तजि किम गयो गवार ॥१७७॥

हो एक डूमडी करैं पुकार, पुत्र दोइ जाया इक बार ।
पालि पोसि मोटा किया, हो करी लडाइ भोजन जोग ।
समुद माझ लहुडउ पडिउ, हो लाधौ ग्रावै कर्म कै जोग ॥१८०॥

हो डूम एक बोलै बिहसंत, इहु मेरी भाणजी कंत ।
बहुत दिवस मिलिबो भयो, हो एक डूमडी भणैं रिसाइ ।
सिरीपाल ग्रावहु मिलौ, हो मेरी बहण पुत्र तु ग्राहि ॥१८१॥

हो एक डूमडी तोभै गाल, छोडि कहाँ भागो सिरीपाल ।
बालपणैं मुझ दुख दीयो, हो परणी नारि न छोडे कोइ ।
बात ग्रजुगती तैं करी, हो ग्रब न जीव तौ छोडौ तोहि ॥१८२॥

हो सुणि राजा डूम की बात, उपनौ दुख पसीनौ गात ।
कोटपाल सेथी भणौ, हो सिरीपाल नैं सूली देहु ।
बात ग्रजुगती बहु करी, हो बंधो बेगि वस्त्र सहु लेहु ॥१८३॥

हो कोटपाल सुणि राजा बात, बंधि सुभट दे मुकी लात ।
सूली जोग चलाइयो, हो गुणमाला तब लाधी सार ।
रूदन करैं मस्तक धुणैं, हो तंक्षण राख्या सहु सिंगार ॥१८४॥

हो गइ वेगि थी जहां भरतार, हो कंत कंत कहि कै पुकार ।
चरण बंदि बीनती करै हो स्वामी कहो कौंण विरतांत ।
जहि कारणि तुम नषीया, हो कौण दोष थे तेरी घात ॥१८५॥

हो कोडीभड बोलै सुणि नारि, जीव कर्म्म मिथ्रत संसारि ।
पाप पुण्य लागा फिरै, हो जैसो कर्म उदै होइ आइ ।
जीव बहुत लालच करै, हो नहि तै तहां बधि ले जाइ ॥१८६॥

हो गुणमाला जंपै सुणि कंत, दीसै सुभट महा बलवंत ।
गोत जाति कहि आपणी, हो बोल्या सुभट डूम हम जात ।
ओरु जाति कैसी कहौं, हो राजा कै मति उपनी भ्रांति ॥१८७॥

हो तव गुणमाला करै बखाण, कहो जाति कै तजो पराण ।
संसौ भाजै मन तणौ, कोडीभड जपै सुणि नारि ।
ससौ थारो भानिमी, हो तीया एक प्रोहण मझारि ॥१८८॥

हो वचन सुणत तहां गइ गुणमाल, रैणमजूसा मोहणि बाल ।
नमसकार करि बीनवै, हो सखी मोकली हो सिरीपाल ।
जाति गोत तहि की कहो, हो सागर तिरि आयो सुकुमाल ॥१८९॥

हो रैणमजूसा जंपै सखी, सिरीपाल कै दुखि हु दुखी ।
सिरीपाल की कामिनी, हो चलहु वेगि जहां छै राज ।
ससौ भानी मन तणो, हो मनवंछित सहु पूगै काज ॥१९०॥

हो गई दुवै थी जहां नरनाथ, नमस्कार करि जोड्या हाथ ।
रैणमंजूसा बीनवै, हो सिरीपाल की गोत उतंग ।
राउ सिंघरथ पुत्र यो, हो अंग देस चंपापुर चंग ॥१९१॥

हो रत्नदीप विद्याधर जाणि, विदितप्रभ तसु नाम बखाणि ।
इंद्र जेम सुख भोगवै, हो रैणमजूसा तिह की धीया ।
सिरीपाल हो व्याहि दी, हो कंचन रत्न डाइजौ दीया ॥१९२॥

हो करि बिवाहुनि ल्याइयो, धवल सेट्ठि बरतै चलियो ।
रूप हमारो देखियो, हो पापी सेट्ठि रच्यो मनि कुड ।
सिरीपाल जलि रालियो, हो कामी सेठि बिकल मति मूढ ॥१९३॥

हो सहु बिरतांत पाछिला कह्या, सेट्ठि जके प्रपंच ठासिया ।
बात बिचारी चित्त मैं, हो सहु सनमंध पाछिली सुणी ।
मनि पछिताबा बहु करै, हो आणिकि भयो वज्र को हयो ॥१९४॥

हो तक्षण गयो राउ बनपाल, करि उछाह आण्यो सिरीपाल ।
बोयलि गूडी उछली, हो नगउ छाडिउ भुजा बिसाल ।
दुवै तिया मन हरषि भई, हो रैणमंजूसा अरु गुणमाल ॥१९५॥

राजा द्वारा श्रीपाल से क्षमा याचना करना

हो राजा क्रोध मान सहु छोडि, सिरीपाल आगै कर जोडि ।
ठाढो रहि बिनती करै, हो क्षमा करी हमस्यौ बरबीर ॥
हम पापी जाणी नहीं, हो तुम कुलवत सुभट बरवीर ॥१९६॥

हो सुणि जंपै कोडीभड जाण, राजा विकल बिवेक अयाण ।
हीए बात सोधी नही, हो कहौ हूम किम सागर तिरै ।
राजा पुत्री क्युं बरै, हो मुनि का बचन प्रतीति न करै ॥१९७॥

हो रैणमंजूसा हरष न माइ, सिरीपाल का बंधा पाइ ।
राज लोक मैं गम कीयो, हो राण्या कीयो बहुत सन्मान ।
भोजन दीनो भगति स्यौ, हो वस्त्र जडाउ पटंबर दान ॥१९८॥

धवल सेठ को बन्दी बनाना

हो राजा किंकर पठ्या घणा, आंणौ बंधि धवल सेठि तंजणा ।
बंधि सेठि ले आइया, हो मारत राउ न संका करै ।
भूख दीयो बहु नासिका, हो औंधो मुख पग ऊंचा करै ॥१९९॥

है भणै सुभट सुणि राजा बात, मेरी सेठि धर्म्म को तात ।
हम उपरि किरपा करौ, हो छोडसु सेट्ठि दया करि भाउ ।
बाबै जिसौ सुणै, हो राखो बाल हमारी राउ ॥२००॥

हो वचन सुणत बांध्या छोडियो, सिरीपाल सहु लेखौ लीयो ।
द्रव्य आपणौ बसि कीयो, हो परघन तणी न ईछा करै ।
सेठ तणो राखो नही, हो धर्म नीति मारग व्यवहार ।।२०१।।

हो प्रौहण जेता सहु कुमार, सिरीपाल दीनी ज्युंणार ।
भोजन भगति करी घणी, हो वस्त्र तंबोल दीया बहु भाइ ।
हाथ जोडि विनती करै हो मेरी क्षमा वचन मन काय ।।२०२।।

घवल सेठ का मरण

हो सुभट बिनी जब दीठौ घणौ, जाणि धिगस्त जन्म आपणौ ।
हीयो फाटि वाण्यो मुओ, हो परघन परतीय इंछे कोपू ।
नरक दुःख देखे घणा, हो केवलि कह्यो सुणहु सहु कोइ ।।२०३।।

हो सत्यकोष परधन कै संग, गयो द्रव्य मरि भयो भुजग ।
नरग तणा दुख भोगया, हो रावण परतीय माडीआ ।
नरक तीसरै उपनौ, हो सब कुटुंब कौ भयो विणास ।।२०४।।

हो कीचक कीयो द्रोपदी संग, भीमराइ कीयो तसु भग ।
ब्रह्म विटबि तिलोतमा, हो कोढणि राव जसोघर नारि ।
नीच कुबडो सेवीयो, हो पहुंती नरकि कत नै मारि ।।२०५।।

हो बहुत जके नर नारी भया, परधन परकामिनी थे गया ।
षट दरसन मैं सहु कहै, हो जे नर परघन परतिय तिक्त ।
सर्ग मुक्त सुख भोगवै, हो सुर नर विद्या घटत सुभक्त ।।२०६।।

हो रैणमजूसा स्यो गुणमाल, हो महासुख भूंजै सिरीपाल ।
काल जात जाणै नही, हो तो लग दूत आइयो ।
कोडीभड तह वंदियो, हो कुंकुंण देस नाम सुभ कह्या ।।२०७।।

हे राजा तहां बसै जसरासि, दुर्जन दुष्टि न दीसै पासि ।
जस माला तसु कामिनी, हो पुत्री आठ महा सुकुपाल ।
इच्छा पुरै मन तणी, हो तासु जोग परणै सिरीपाल ।।२०८।।

हो आवहु वेगि न लावहु बार, हस्ती बैसि होइ असवार।
राजा निमिति बुझीयो, हो दलवटण राजा धनपाल।
सुपुत्रि जो परणिसी, हो ए पुत्री परणें सिरीपाल ।।२०६।।

श्रीपाल का कुंकरण देश को गमन

हो सुण्या वचन मनि हरखो भयो, कुंकण देसि वेगि सो भयो।
राजा सन्मुख आइयो, हो बरसू नाद निसाणां घाऊ।
नग्र मक्त सोभा करी, हे भेंटि धरहू ले पहुराउ ।२००।।

आठों कन्याओं द्वारा समस्या रचना एवं श्रीपाल द्वारा उनकी पूर्ति करना

हो आठौं कन्या ठाढी भाइ, समस्या जुदी जुदी तहि कही।
सुभग गौरि बोली बडी, हो कोडीभड सुणि मेरी बुधि।
तीन पदा आगं कहौ, हो साहस जहां तहां ही सिद्धि ।।२११।।

हो सुण्या वचन बोलै बरबीर, सुणहु कुमारि चित्त करि धीर।
सत्त सरीर हस्यौ रहो, उदै कम तैसी ही बुधि।
उदिम तउ न छोडि जे, हो साहस जहां तहा ही सिद्धि ।।२१२।।

हो गौरि सिगार भणै सुणि भव्व, गयो सवै पेखतां भव्व।
कोडिभड सुणि बोलियो, हो सुणहु कुमरि मन राखौ ठाइ।
तीनि पदा आगै कहौं हो मन थारा को ससो जाइ ।।२१३।।

हो दान पूजनवि पर उपगार, भोग पभोग न मुंज्या सार।
मे मे करता जनम गौ, हो इहि विधि क्रिमण सचो दव्व।
जूवा राज पलवणी, हो गयो तासु पेखेता भव्व ।।२१४।।

हो पोलोमी भाखियो गरिट्ठ, तेण कह्यो मिथ्यात सुमिट्ठ।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो पोलौ भी कान दे सुण्यो।
तीनि पदा आगै कहौं, हो जाइ सव्वै ससै मन तणो ।।२१५।।

हो देव शास्त्र गुरू लह्यो न भेद, जहि थे होइ कर्म को छेद।
मत मिथ्यात जु सरदहे, हो समकित लह्यो नहीं उतकिट्ठ।
जैन धर्म रस ना पियो, हो तिह नरसौ मिथ्यात सुमिट्ठ ।।२१६।।

हो रणा देवी भणै अबीह, ते नर तौ पंचाइण सीह ।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो शील बिहूणा लेहु मलीह ।
जे चारित्र निर्मला, ते नर तौ पंचाइण सीह ।।२१७।।

हो सोमा देवी कहै विचार, कोण धर्म जग तारण हार ।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो ग्यारह प्रतिमा श्रावक सार ।
तेरह विधि व्रत मुनि तणा, हो कुंण धर्म्म जगि तारण हार ।।२१८।।

हो संपद बोली वचन सुमीठु, सो न तजौ विरला दिठ्ठ ।
सिरीपाल उत्तर दीयो, हो दीप अढाइ मध्य पइठ्ठ ।
बुरी पराइ ना कहै हो सौ नर तौजै विरला दठ्ठि ।।२१९।।

हो चंद्र लेख सुभ वचण भणेइ, सो नर तौ तिह काई करेइ ।
सुभट फेरि उत्तर दीयो, हो बरष इकयासी को नर होइ ।
चौद बरष कन्या बरै, सौ नर तो तहि कांइ करे ।।२२०।।

हो बोलो पदमा देवि सुभग, एता कारण कहूं न लग ।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो कायर लीयो हाथ खडग ।
दुहगी जोबन सुक सर, एतौ कारणि कहू न लग ।।२२१।।

आठ कन्याओं का श्रीपाल के साथ विवाह

हो सिरीपाल जब उत्तर दीयो, आठौ का मन हरष्यो भयो ।
राजा लगन लिखाइयो, हो वेदी मंडप बहुत उछाह ।
विप्र अग्नि साखी दीया, हो कोडीभड को भयो विवाह ।।२२२।।

हो आठ सहस परणी सिरीपाल, तहि को कौण करै बगजाल ।
घोडा हस्ती को गिणै, हो सेव करै ठाडा भो बाल ।
इन्द्र जेम सुख भोगवै, हो सुख मै जातन जाणै काल ।।२२३।।

हो एक दिवस चितै सिरीपाल, सुख मैं बार बरस गो काल ।
मैणासुंदरि बीसरिउ, हो दुख करिसी कुंदापहु माइ ।
सुंदरि संजम लेइसी, हो तजौं प्रमाद मिलौं अब जाइ ।।२२४।।

हो आठ सहस राणी की साथ, आठ सहस सेवै नरनाथ ।
असु हस्ती रथ पालिकी, हो भेरि नाद निसाणां घाउ ।
इव विधि साझ्या घणा, हो पहुतौ नग्र उजैणी ठाउ ।।२२५।।

मैनासुंदरी की चिन्ता

हो सुंदरि बात सासुस्यौ कही, बारा बरस अवधि को गई ।
कोडीभड नवि आइयौ, हो जै इह जाइ आजि की राति ।
बिकलप सकलप सहु तजौ, हो निश्चै दीक्ष्या ल्यौ परभाति ।।२२६।।

हो कुंदापहु जंपै सुणि बहु, नग्र माइ बेढिउ छै कहुं ।
कौंण कर्म्म आवै उदै, हो दिन दस चित्त धीर करि राखि ।
धीरैं सहु कारिज सरै, हो पुत्री मेरो कह्यो न नाखि ।।२२७।।

हो सेना सहु छाडी तहि ठाइ, हो गयो सुभट जह कुंदा माइ ।
माता सेथी वीनयो, हो माता बेगी खोलौ द्वारि ।
सिरीपाल हौ आइयो, हो छांडहु सहु मन तणा विकार ।।२२८।।

मनासुंदरी से मिलन

हो सुण्या वचन जब सासू बहु, मन का वंछित पूगा सहु ।
वेगि कपाटि उघाडिया, हो सिरीपाल घर भितरि आइ ।
चरण मात का ढोकिया, हो भयो हरष अति अंगि न माइ ।।२२९।।

है मैणासुंदरी बंद्यो कंत, सासु पासि बैठी विहसंत ।
कुसल स्नेह बुझी सबै, हो जंपै सुभट पाछिली बात ।
जैसी विधि संपति लही, ते तौ कह्यो सबै बिरतांत ।।२३०।।

हो मैणासुंदरि कुंदा माइ, तंखण ल्यायो सेना ठाइ ।
राज लोक मै ले गयो, हो आठ सहस थी जे बर नारि ।
सासु तणा पद बंदिया, हो वस्त्र जडाउ भेट भी धारि ।।२३१।।

हो पछै बंदि मैणासुंदरी, वस्त्र अनेक भेट ले धरी ।
भक्ति विनौ कीना घणी, हो कनक हस्ति रथ तिया के काज ।
माता जोग्य दिखालियां, हो दूर देस की वस्त निधान ।।२३२।।

हो क्षमा तप मन हरषो भयो, सुभ साता तहि तुम नै दियो ।
सिरीपाल स्यौं विनवै, हो पुत्र पुण्य थे सुरगति होइ ।
किति इक राज विभूतिया, हो मुक्ति धर्म थे पहुंचे लोइ ।।२३३।।

सम्यकत्व की महिमा

हो समकित कै बल सुर धरणेंद, समकित कैवल उपजै इंद्र ।
चक्रवर्ति बल भोगवै, हो समकित केवल उपजै रिधि ।
जीव सदा सुख भोगवै, हो समिकित बलि सरवारथ सिद्धि ।।२३४।।

हो समकित सुध व्रत पालेइ, ताकौ मुकति तिया परणेइ ।
सुरपति किंकर सारिखा, हो दोष अठारा रहित सु देव ।
सति वचन जिनवर तणा, हो गुर निरगंथ सु जाणी एव ।।२३५।।

हो समिकित सहित पुत्र तुम आथि, इह विभूति आई तुम साथि ।
घणौ अचभौ कों नही, हो सुण्या बचन माता का सार ।
मन मैं सुख पायो घणौ, हो नमसकार करि बारबार ।।२३६।।

उज्जयिनी के राजा द्वारा श्रीपाल की पराधीनता स्वीकार करना

हो पठयो दूत सूसर कै पासि, छोडि उजेणी जीव ले न्हासि ।
वेगि आइ चरणा पडौ, हो तलै वेट्ठणौ कवल बंधि ।
तिण पूलौ दांता गहौ, हो आउ घालि कुहाडी कंधि ।।२३७।।

हो सुभ वचन सुणि चाल्यो दूत, पंहुतो राजा पासि तुरंतु ।
नमसकार करि बोलियो, हो बंधि कूहाडी कवल ओढि ।
वेगि चालि सेवा करो, हो कै तू भाजि उजेणी छोडि ।।२३८।।

हो वचन सुण्या राजा पर जल्यो, जाणिकि वैसादर घ्रित इल्यो ।
अहंकार करि बोल्यियो, हो स्वामी तेरौ कौण सुटेक ।
बडो बात मुख थे कहै, हो मुझको पतझो जाइ क्षणक ।।२३९।।

हो दूत राउस्यौ विनती करै, इसौ के गर्व मत हियैड धरै ।
अहंकार नीकौ नही, हो अहंकार थे रावण गयौ ।
लखमण राइ निपातियो, हो लंका राज भभीखण दियो ।।२४०।।

जुरासिंघ अति करतौ मान, नाराइण तसु काल्यौ प्राण ।
अहंकार कीजै नहीं, हो भरथ गर्व अति करतौ घणौ ।
चक्रवर्ति पद भोगवे, हो बाहोबलि मान्यौ तिहि तणौ ।।२४१।।

हो मंत्री कहै राउस्यौ एव, अहंकार छोडौ हो देव ।
बली सहित जोडौ किसौ, दलबल दीसै अधिक अपार ।
मांनौ वचन बसीठ को हा, हो सीस ही नग्र संवार ।।२४२।।

हो सुण्या वचन मंत्री का राइ, दान मान दे दूत बुलाई ।
कोडांभडस्यो बीनिऊ, हो मान्यो वचन तुम्हारो कह्यो ।
सेवक साथि हि दीयो, हो तंखण सिरीपाल पै गयो ।।२४३।।

हो भेट सुभट कै आगै धरी, नगरीपति की विनती करी ।
वचन तुमारा मानिया, हो सेवक बचन सुणत सुख भयो ।
बहुडि तासु उत्तर दियो, हो कुंजर चढि मिलिबा आविज्यो ।।२४४।।

हो तक्षण जाइ स्वामिस्यो कह्या, सुण्या वचन तब बहु सुख लह्यो ।
अंरापति चढि चालियो, हो मिल्या दुवै मनि भयो आनंद ।
दुवै एक गज वैठ्ठिया, हो जिम आकास सुर सुमचन्द ।।२४५।।

हो बाजा बाजि निसाणा घाउ, पहुतै दुवै नग्र मैं राउ ।
घरि घरि बधावणो, हो नृति करै बहु जोबन बाल ।
सज्जन लोग अनंदियो, हो भाली भई आयो सिरीपाल ।।२४६।।

हो अगरक्ष पहुलासै सात, दान मान बुझी कुसलात ।
वस्त्र कनक दीना घणा, हो मदन सुंदरी कुंदा माइ ।
मणि माणिक्य दीना घणा, अगणित वस्त्र सुकहीन जाइ ।।२४७।।

हो जथा जोगि नग्री को लोग, वस्त्र जडाउ दी बहु भोग ।
सहु मन मै हरसा भया, हो करि ज्यौणार सुदेह तंबोल ।
विनौ भगति करि बोलियो, हो पान सुपारी कूंकूं रोल ।।२४८।।

हो सुख मैं कितउक बीतै काल, जनम भूमि समरी सिरीपाल ।
सुसर तणौ दुवौ आयो, हो घोडा हस्ती पडे पलाण ।
रथ बैठि रांणी चली, हो आंगणि बोलै विरद बखाण ।।२४९।।

श्रीपाल का चम्पापुरी पहुंचना

हो आठ सहस नृप सेवा करै, दुर्जन कोइ और न करै।
गगन सूर सूझे नही, हो बाजै नाद निसाण्या घाउ।
कानि पडिउ सुणि जै नहीं, हो चम्पापुरी पहुंतौ राउ ।।२५०।।

हो काको वीरदमन तह रहे, दुर्जन को तप देखिन सकै।
भाट बसीठ्ठ जु मोकल्यो, हो जाइ कहौ आयो सिरीपाल।
बाल पणै तुम काढियो, हो आठ सहस सेवै भोवाल ।।२५१।।

हो छोडि नग्र सेवा करि आउ, ग्राम दोइ बैठ्ठा ही खाउ।
राजरीति लहु परहरौ, हो कोई नग्र न सेवा करै।
तौ हसने दूसण नहीं, तिस्यौ औरा मुक्ति संचेर ।।२५२।।

हो सुणी बात गौ भाट बसीठ्ठ, राज सभा प्रति सुंदर दीठ।
कर ऊचो करि बोलियो हो पाछै बंसि भया भोवाल।
बान विउद बखाणिया, हो पाछै कह्यो राउ सिरीपाल ।।२५३।।

हा बात सुणत मनि कसक्यो साल, कहिरै भाट कौण सिरीपाल।
बसिह मारै को नहीं, हो भणै भाट तुम सुणौ नरेस।
बालपणो तुम काढियो, हो आयो फिरि बहुलो परदेस ।।२५४।।

हो तो लग चोक जु चोरी करै, जो लगु धणी नाइ सचेर।
जीवत माखी को गिलै, हो अबै राज को छोडौ भाउ।
चलहु बेगि सेवा करौ, हो खेत धणी काढै हरि हाउ ।।२५५।।

हो वीरदमन बोलै सुणि भाट, तै कांयौ हो बोठ्ठौ आट।
मुख सभालि बोलौ नहीं, हो धणी आपणास्यौं कहि जाइ।
राति बेगि तू भाजि जे, कै रण संग्राम करौ चढि आइ ।।२५६।।

हो भाटि मांनियो रण संग्राम, आयो कोडीभड के ठाम।
बात पाछिली सहु कही, हो सिंधुका बाजिया निसाण।
सुर किरण सूझै नहीं, हो ऊडी खेह लागी असमान ।।२५७।।

हो घोड़ा खूंदि करी खुरताल, हो बाजिंत्र उछलित मेघ अकाल ।
रथ हस्ती बहु सावती, हो बहु पक की सेना चली ।
सुभट संजोय संभालिया, हो घणी दुहु राजा की मिली ।।२५८।।

है बैसि मतै बोलै परधान, सेना होइ निर्व्वली थाय ।
इह तो बात बणै नहीं, हो राजा दूवै करिसी जुध ।
जो जीतै सो हम धणी, हो विणसै सगली बात विरुद्ध ।।२५९।।

श्रीपाल एवं वीरदमन के बीच युद्ध

हो बात विचारी दहूस्यो कही, हो दहूं भूपती मानिवि लइ ।
दुवै सुभट जोडौ करै, हो बहुविधि जुद्ध मल्ल को भयो ।
सिरिपाल रणि आगलौ, हो वीर दमन तंक्षिण बंधियो ।।२६०।।

हो करि जुहार सेवक सहु आइ, लियो राज चंपापुरि आइ ।
वीर दमस तब छोडियो, हो उत्तम क्षमा करी कर जोडि ।
पूजि पिता इहु राजल्यो, हो बुध सहु चूक हमारी खोडि ।।२६१।।

हो वीर दमन जंपै तजि मान, पुण्यवंत तुम गुणह निधान ।
राज भोग भुंजो घणो, हो हमतो लेस्या संजम भार ।
राज विभूति न सासुती, हो जैसी बीज तणो चमकार ।।२६२।।

हो उत्तम क्षमा सबन स्यौं करी, वीर दमन जिन दीक्षा धरी ।
बारह विधि तप बहु करै, हो तेरह विधि पालै चारित्त ।
दस विधि धर्म गुणा चढिउ, हो तिण सौनो सम जाण्यो चित्त ।।२६३।।

हो करै राज राजा श्रीपाल, सुख मै जातैन जाणै काम ।
इन्द्र जेम सुख भोगवै, हो चोर चवाड न राखै नाम ।
श्रावक व्रत पाले सदा, हो गाई सिंघ पावै इक ठाम ।।२६४।।

हो सभा थान बैठो सिरीपाल, आली मेल्हि फूल की माल :
नस्या चरण विनती करी, हो स्वामी थारै पुण्य प्रभाइ ।
श्रुत सागर मुनि आइयो, हो वन की सोभा कही न जाइ ।।२६५।।

श्रुतसागर मुनि द्वारा श्रीपाल के पूर्व जन्म का वर्णन

हो सुणी बात मन हरखो भयो, दान मान माली नै दियो ।
मुनिवर बंदन चालियों, हो राज लोक चाल्यो सहु साथ ।
बहु आडबरि बन गयो, हो नम्या चरण दे मस्तिक हाथ ।।२६६।।

हो धर्मवृद्धि मुनि दीनी भाइ, जहि थे पाप सर्व क्षो आइ ।
द्वै विधि धर्म पयासियो, हो श्रावक धर्मसुर्ग सुख देइ ।
जती धर्म शिवपुरि लहै हो बहुडि न आवागमण करेइ ।।२६७।।

हो हाथि जोड जंपै तजि मान, स्वामी तुहे अवधि के जाण ।
कहो भवांतर पाछिला, हो राज भ्रष्टि कणि पापहि भयो ।
कोढ उदेबर नीकस्यो, हो धवल सेट्ठि सागर मै दीयो ।।२६८।।

हो कौण पाप थे हूम जु कह्यो, पाछै राज पिता को लह्यो ।
सागर तिरिहु नीकस्यो, हो मैणासुंदरि उपरि भाउ ।
कोढ कलक सर्व गयो, हो ते सहु बात कहो मुनिराउ ।।२६९।।

हो सुणी बात श्रुतसागर भणै, सावधान होइ राजै सुणै ।
कहो भवांतर पाछिला, हो भरत क्षेत्र विद्याधर सेणि ।
रत्नसंचपुर सोभितो, हो बसै राउ श्रीकांत सुतेणि ।।२७०।।

हो पट तीया ताकै श्रीमती, दान पुण्य व्रत सोभै सती ।
जैनधर्म निश्चौ करै, हो राजा बिकल विषै रस लूघ ।
धर्म भेव जाणै नहीं, हो सुखस्यौ काल गमै पिय मूध ।।२७१।।

हो राउ एक दिनि वन मैं गयो, गुप्ति समधि मुनि देखीयो ।
भाव भगति करि वंदियो, हो द्वै विधि धर्म सुण्यो करि भाउ ।
व्रत लीया श्रावक तणा, हो बंदि मुनि घरि पहुतौ राउ ।।२७२।।

हो बहुत दिवस व्रत पालि अभंग, मिथ्या त्यांकौ कीयो संग ।
भ्रष्ट भयो व्रत छाडिया, हो राज भ्रष्ट तिहि पापिहि भयो ।
मुनिवर राख्यो ताल मैं, हो तेणि पापि सागर मैं दियो ।।२७३।।

हो कोढी मुनिवर सेयौ कह्यो, तासु पाप थे कोढी भयो ।
मुनिवर जल थे काढियो, हो तहि थे समुद्र पैरि नीकल्यो ।
नीच नीच मुनिस्यो कह्यो, हो तहि थे डूमा माहैं मिल्यो ।।२७४।।

हो सेवक हुता सातसें साथ, कोढी त्यह भास्यो मुनि नाथ ।
अगरल ए सात से, हो बावै जिसो तिसा फल खाइ ।
मन मैं आरति मत करो, हो अंतकाल तैसी गति जाइ ।।२७५।।

हो श्रीमती सुणी कंत की बात, पायो दुख पसीनो गात ।
काल्यो मुख भरतार को, हो पालि व्रत पापी करि भंग ।
जती जोग्य बाधा करी, हो मिथ्या ताके पड़ियो संग ।।२७६।।

हो कहुं कही राजास्यो जाइ, रांणी अन्नपान नवि खाई ।
सुस आचार सबै सुध्यर, तंक्षण राउ तिया पै जाइ ।
निंदा करि बहु आपणी, हो नाहक मुनी विराध्या जाइ ।।२७७।।

हो करि दिलासा राणी तणी, वड लेण चाल्या मुनि भणी ।
तंक्षण जिण मंदिरि गया, हो देव शास्त्र गुरु बद्या आइ ।
आठ द्रव्य पूजा करी, हो मुनिवर पासि बईट्ठा आइ ।।२७८।।

हो बोलै राउ जोडिया हाथ, विनती एक सुणों जति नाथ ।
हम थे चूक पडी घणी, हो श्रावक व्रत को कीनो भंग ।
मुनिवर नै बाधा करी, हो भयो पाप मिथ्याती संग ।।२७९।।

हो हों पापी मति हीणो भयो, पाप पुण्य को भेदन लह्यो ।
विकल पणै व्रत छांडिया, हो जहि व्रत थे सहु न्हासै पाप ।
तो व्रत सुभ उपदेसि जे, हो मेरा मन को जाइ संताप ।।२८०।।

हो मुनि भणै सुणि राउ विचार, सिद्ध चक्र व्रत त्रिभुवणि सार ।
पूर्व पाप सहू क्षो करै, हो कातिग फागुण सुभ आषाढ ।
आठ दिवस पूजा करो, हो भणे जिणेसुर मुख को पाठ ।।२८१।।

हो राणी सहु राजा व्रत लियो, अतीचार रहित व्रत कियो ।
मत मिथ्यात सर्व तज्यो, हो मरण काल लीयो सन्यास ।
तजिया प्राण समाधिस्यौ, हो सुरपति स्वर्ग ग्यारहवै वास ।।२८२।।

हो ले सन्यास श्रीमती मुई कंत इंद्र इद्राणी भइ ।
इंद्र थाइ सहु भोगइ, हो सुभरणा मत हांचे भयो ।
कुंवावहु सुत अवतरिउ, हो इहु सिरीपाल राउ तू भयो ।।२८३।।

हो श्रीमती राणी फिरी बहु काल, मैंणा सुंदरि भई विसाल ।
इद्राणी पद भोगयो, हो राजा एहु भवांतर जाणि ।
पाप पुण्य ब्योरो कह्यो, हो स्नेह वैर पूर्विलै प्रमाणि ।।२८४।।

हो सुण्यो भवांतर हरख्यो भयो, नमसकार करि घरनै गयो ।
सुखस्यौ काल गमै सदा, हो देव सास्त्र गुरू पूजा करै ।
समायक पोसो धरै, हो वचन जिणेसुर हियडै धरै ।।२८५।।

श्रीपाल का वैराग्य होना

हो सुखस्यौ कितउक वीतो काल, वन क्रीडा चाल्यो सिरीपाल ।
राजा लोक सहु साथि ले, हो हस्ती कीच गल्यो देखियो ।
मन मैं संका उपनी, हो जन्म हमारो नाहक गयो ।।२८६।।

हो खेल्यो नहीं विर्षं रस रूढ़, कामिणी कीच गल्यो मतिमूढ ।
मदिरा मोह बिटंबियो, हो मे मे करि भंभाला पडउ ।
लह्या नहीं सुख सासुता, हो फिरिउ मूढ चहुंगति मै पडिउ ।।२८७।।

हो दीसै अथ्यो सपदा रासि, ते सहु कंट्ठि मोह की पासि ।
जीवन छूटै बापुडो, हो कोइ अब चिंत्ति जै उपाउ ।
बंधण तूटै कर्म्म का, हो ले तप भाउ आतम भाउ ।।२८८।।

हो परिगह भार पुत्र नै दियो, तंक्षण जाइ मुनि बंदियो ।
हाथ जोडि विनती करै, हो स्वामी दया करहु पसाउ ।
जीव सासुता सुख लहै, हो वया प्रणाम सदा तुम भाउ ।।२८९।।

हो अट्ठाईस मूल गुणासार, सब परिग्रह को कीयो निवार ।
भेष दिगम्बर धारियो, हो मैणासुंदरि तजि घर भार ।
व्रत लीया अजिका तणा, हो जाण्यो सबै अथिर संसार ।।२९०।।

हो सिरिपाल मुनि तप करि घोर, तोडै कर्म घातिया चोर ।
निर्मल केवल उपनौ, हो ज्ञान महोछै सुरपति आइ ।
पूजा करि चरण तणी, हो तंक्षण गयो आपणै ट्ठाइ ।।२९१।।

हो तज्या मुनी चौदा गुणट्ठाण, भयो सिद्ध पहुतो निर्वाण ।
सुख सेवे अति सासुता, हो जामण मरण नहीं जुरा बाल ।
रोग विजोगन संचरै, हो जोति सरूप न व्यापै काल ।।२९२।।

हो मैणासुंदरि तप करि मुई, दसमैं सु सुरपति भई ।
लिंग कामिणी छेदियो, हो अबरु जके मुनि अर्जिका भया ।
जहि जैसौ तप कियो, हो तहि तहि तैसा सुख पाविया ।।२९३।।

ग्रन्थ प्रशस्ति

हो मूलसंघ मुनि प्रगटौ जाणि, कीरति अनंत सील की खानि ।
तासु तणौ सिष्य जाणिज्यो, हो ब्रह्म रायमल्ल दिढकरि चित्त ।
भाउ भेद जानै नही, हो तहि दीट्ठौ सिरीपाल चरित्र ।।२९४।।

हो सोलहसै तीसौ सुभ वर्ष, हो मास असाढ भण्यो करि हर्ष ।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र सुभ सार ।
कर्ण जोग दीसै भला, हो सोभनवार शनिश्चर बार ।।२९५।।

हो रणथ भ्रमर सोभै कविलास, भरीया नीर ताल चहुं पास ।
बाग बिहरि बाडी घणी, हो धन कण संपति तणौ निधान ।
साहि अकबर राज हो, सोभै घणा जिणेसुर थान ।।२९६ ।।

हो श्रावक लोग बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत ।
दान चारि सुभ सकतिस्यौ, हो श्रावक व्रत पालै मन लाइ ।
पोसा सामाइक सदा, हो मत मिथ्यात न लगता जाइ ।।२९७।।

हो इंसे अधिका छिनवें छंद, कवियण भण्यों तासु मति मद ।
पद अक्षर की सुधि नही, हो जैसी मति दीनो औकास ।
पंडित कोइ मति हसो, तैसी मति कीनो परगास ॥२९८॥
रास भणो सिरीपाल को ॥

इति श्रीपाल रास समाप्त ।

प्रद्युम्न रास

रचनाकाल संवत १६२८

भादवा सुदी २ बुधवार

रचनास्थान—हरसोरगढ़

प्रद्युम्न रास

मंगलाचरण

हो तीर्थंकर बंदो जगिनाहो, हो जिह समिरण मनि होई उछाहो ।
हूवा अबछै होइस्यजी, हो स्याह को ज्ञान रह्यो भरि पूरे ।
गुण छियल सोभै भला जी, हो दोष अट्ठारह कीया दूरे ।।
रास भणो परदवणको जी ।।१।।

हो दुजा जी पणउ जिण की वाणी, हो तीन्यो जी लोक तणी थिति जाणी
मूरिख थे पंडित करै जी, हो मत मिथ्यात कीयो तहि दूरे ।
द्वादसांग गुण अति भला जी, हो अल्या बचन जहि रल्या दूरे ।।२।।

हो तीजाजी पणउ गुरू निरंगथो, हो भूला जी भाव दिखावण पंथो ।
तिहूऊण नव कोडि छै जी, हो भजण तारण नाव समानो ।
तिरियबला जे कह्या जी, हो जिणवर वाणी करै बखाण ।।३।।

हो देव सास्त्र गुरू वधा भाए, हो भूलोजी आखर मणी ठाव ।
कामदेव गुण विस्तरो जी, हो हो मूरख अति अपढ अयाण ।
भाव भेद जाणो नही जी, हो थोडी जी बुधि किम करो बखाण ।।४।।

प्रारम्भ

हो क्षेत्र भरथ इहु जंबू द्वीपो, हो नग्र द्वारिका समद समीपो ।
सा निरमापी देवता जी, हो जोजन बाराह कै विस्तारे ।
सोभा इंद्रपुरी जिसी जी, हो राज करै जादमा कुमार ।।५।। रास

हो पहलो जी राजी अधीक वृष्टि, हो जैन सरावक समकित दृष्टि ।
दस कुमार घरि अति भली जी, हो सुता एक कुता सुकमाला ।
रूपि अपछरा सारिखी जी, हो पांडुराय सा परणी बाला ।।६।।

हो लहुडो जी पुत्र तासु बसुदेव, हो देव सास्त्र गुर जाणं सेऊ ।
रोहिणी देवी कामिणी जी, हो रूपकला अपछरा समानी ।
जिनधर्म निश्चौ करै जी, हो त्याह की महमा त्रिभुवन जाणी ॥७॥

हो नारायण बलिभद्रति पुत्रो, हो दुवं महाभड दुवं मित्रो ।
पुरिष सलाका मं गिण्या जी, हो जैन धरम उपरि बहुभाउ ।
मन मिथ्यात न सरदहै जी, हो दुर्जन दुष्ट न राखं ठाऊ ॥८॥

नारद ऋषि का आगमन

हो एक दिनि ते किस्न दिवाणो, हो नारद रिषि आयो तिह थाने ।
करी जादमा बंदनी जी, हो दीन्हो अधिक जामा मानो ।
हाथ जोडि ठाडा भया जी, हो कनक सिंघासन ऊचो जी थानो ॥९॥

हो जादौ बोल्या नारद स्वामी, हो तुम्ह तौ जी छौ आकासां गामी ।
दीप अढाई सचरौ जी, हो पूव पछिम केवल ज्ञानी ।
चौथौ काल सदा रहै जी, हो तह की हमस्यो कहि ज्यो बातो ॥१०॥

हो नारद बोल्यो जादौ राऊ, सुणौ कथा करि निर्मल भाऊ ।
सुभ को सचौ है सही जी, हो पूरब पछिम केवल जाणी ।
समोसरण बारा सभा जी, हो भवियण सुणं जिणेसुर वाणी ॥११॥

हो जहि भवि को मन पडं विवासं, वाणी सुणतां सासौ नासं ।
सभा लोग संतोषि जे जी, हो जती सरावग दहु विधि धर्म ।
आगम अध्यातम कह्या जी, हो कथा सुणत माजं सहु भर्मो ॥१२॥

हो सुणी जादमा नारद बातो, हो हरिष्यौ चित्त विकास्यौ गातो ।
सभा लोग सतोषिया जी, हो नारद राज लोक मैं चाल्यो ।
सतिभामा घरि संचरौ जी, हो गबंवती तिहि दिसं न्हाल्यौ ॥१३॥

हो रिषि भासं सति भामा राणी, हो करि सिंगार तू अति गरवाणी ।
गरब पहारी छै दई जी, हो देव गुरा की भगति न जाणी ।
मदि मोह सूझै नहीं जी, हो मूरिख आपो आप बखाणे ॥१४॥

सत्यभामा का उत्तर

हो देवि भणं मुनि जं तप लीजे, हो तप करि चारि कषायन कीजै ।
मान करत तप फल नही जी, हो मान विना जिणवरि तप भास्यौ ।
तुम्ह तो मान तजौ नही जी, हो कहिनै जी मुकति किसी परिजास्यौ ।१५।

हो भणं रिषिसुर देवि अभागी, हो हमनै जी सीख देण तू लागी ।
पाप धर्म आणं नही जी, हो मुझ नै जी मान दान सहु आपै ।
सुर नर सहु सेवा करैं जी, हो तीनि लोक मुझ थे सहु कपैं ।।१६।।

हो मुनिस्यौ भणं नारायण घरणी, हो उपसम धर्म जती की करणी ।
सत्रु मित्र सम करि गिणै जी, सोनौ तिणौ बराबरि जाणौ ।
आणई छोउ भोजन करैं जी, हा सो मुनिवर पहुंचे निर्वाणि ।।१७।।

हो सुणी बात नारद पर जलियो, हो जाणिकि घ्रत अग्निस्यौ मिलियौ ।
मन मैं चिंता अति करैं जी, हो भामा लेई समद मैं रालौ ।
कामिणि हत्या थे डरौ जी, हो कै इह अग्नि मधि परिजालौ ।।१८।।

हो नारदि हियडै बात बिचारी, हो नाराइण आणौ नारी ।
इहि थे रूपि जु आगली जी, हो सौकि तणं दुखि धणं विसूरैं ।
राति दिवसि कुढि वो करै जी, हो बहुडि पराया मरमन चूरौ ।।१९।।

नारद ऋषि का प्रस्थान

हो बात विचारि रिषीसुर चाल्यौ, हो विद्याधर को देस निहाल्यौ ।
भामा सम कामिणी नही जी, हो मन मैं भयो अधिक अभिमानो ।
हियडै चिंता बहु करैं जी, हो तजी नीद अस पाणी धानो ।।२०।।

हो भूमि गोचरी राजा ठामो, हो पटण देस नग्र गढ ग्रामो ।
नारद परिथी सहु फिरी जी, आयो चलि कुंडलपुर ठाए ।
दीट्ठी सोभा नग्र की जी, हो राज करैं तहा भीषम राए ।।२१।।

हो श्रीमती पटि तिया घरि सोहै, हो रूप कला सुर सुंदरि मोहै ।
रूप पुत्र रूपहि भलौ जी, हो सुता रुखिमणी रूपि अपारो ।
सुर्ग अपछरा सारिखी जी हो, सोभै भीषम कै परिवारे ।।२२।।

हो भीषम भगनी सुमति हि भालै, हो भायो जी मुनिवर भिक्षा काजै ।
भोजन दीन्है भगतिस्यो जी, हो तिहि भौसरि रुकमिणी पधारी ।
मुनिवर बंद्यौ भाउस्यौ, हो भुवाजी जोबनि देखि कुमारी ।।२३।।

हो मुनिवर रूपिणि भुवा बूझै, हो स्वामी जी ज्ञान तीनि तुम्ह सूझै ।
कौण रूपिणी परणिसी जी, हो मुनिवर भणै भवधि तहि जाणी ।
किस्न तीया याह होईसी जी, हो सोला सहस ऊपरि पटराणी ।।२४।।

हो बात कही मुनि बन मैं गईयो, हो सुमति राऊ भीषम स्यौ कहियो ।
रूपिणि वर हरि मुनि कह्यौ जी, हो भषिम हंसि बोल सुणि बाई ।
किस्न नीच घरि पोषियौ जी, हो भ्रब लग ग्वाले गाई चराई ।।२५।।

हो सोमलपुर सोभै सबिसालो, हो राजकरै भेषज भोवालो ।
मद्रीराणी तिहि तणै जी, हो तिहि कै पुत्र भलौ सिसपालो ।
तीनि चखिस्यौ जाइयौ जी, हो दुतिया जी चंद्र जिम बधै कुमारो ।।२६।।

हो भेषज राजा मुनिवर बूझै, होसी जी ज्ञान तीनि तुम्ह सूझै ।
चषि तीजौ किम जाइ सीजी, हो मुनिवर बात रावस्यौ भासौ ।
तिहु कै हाथि मरण सहजी, हो हाथ छिवत चखि तीजौ जासी ।।२७।।

हो मद्री कै मनि उपनी संका, हो चाली जी पुत्र लीयो करि भंका ।
बालक नै लीयो फिरै जी, हो भाई जी चली द्वारिका ठाए ।
हाथ लगायौ किस्न कौ जी, हो तीजौ नेत्र सो गयौ पलाए ।।२८।।

हो हाडी सम जौडै हाथो, हो पुत्र भीख दिहु जादोनाथौ ।
हसि नाराईण बोलियो जी, हो सुनहु एकसउ छोडौ मातौ ।
बोल हमारौ छै सही जी, हो पाछै करौ सहीस्यौ भ्रातौ ।।२९।।

हो पुत्र लेई मद्री घरि भाई, हो तिहनै पुत्री दीन्हीं हो बाई ।
बोल हमारौ किम चलै जी, हो महाबली सोभै सिसपालो ।
रूपकला गुण चातुरी जी, हो दुर्जन दुष्ट तणै सिर सालो ।।३०।।

नारद का कुंडलपुर आगमन

हो तहि औसरि तहां नारद गईयौ, हो भीषम बंदि विनौ बहु कीयौ ।
सिंघासण थानक दीयौ जी. हो रूप कुमार मुनीश्वरि दीठौ ।
मन में सुख पायो घणौ जी, हो अैसौ रूप नवि धरणी दीठौ ।।३१।।

हो नारदि मन में बात विचारी, हो रूपि बहुण अे होइ कंवारी ।
काज हमारा सहु सरै जी, हो खिण एक भीषम रावलि गईयौ ।
नमस्कार राण्या कीयौ जी, हो कनक सिंघासण बैसणौ दीयो ।।३२।।

हो नारद आइ रूपिणि बेस्यो, हो देखि रूप हियडै आनंद्यो ।
नारदि दीन्ही आसिका जी, हो होजे किस्न तणी पटराणी ।
सोला सहस सेवा करैं जी, हो सुणी रूपणी नारद बाणी ।।३३।।

हो मुनि विचार मन माहि कीयौ, हो रूपिणी तणौ रूप लिखि लीयो ।
किस्न सभा तक्षण गयौ जी, हो नारायण बंद्यो मुनिराज ।
मनी लेख हरिनै दीयौ, हो देखि लेख मनि भयौ उछाहो ।।३४।।

नारद द्वारा श्रीकृष्ण के सामने प्रस्ताव

हो नारायण मुनिस्यौ हसि बालै, हो नही कामिणी इहि कै तोलै ।
नारि असी नवि रवि तलै जी, हो ईस्यौ रूप होइ देव कुमारी ।
नाग अपछरा सारिखी जी, हो कै यौहु रूप जोतिमा नारी ।।३५।।

हो नारद बोलै हरी नरेसो, हो कुंडलपुर शुभ बसै असेसो ।
भीषम राजा राजई जी, हो तिहु कै सुता रूपिणी जाणं ।
तासु रूप लिखि आणियो जी, हो सोभै नाराइण कै राणि ।।३६

हो तौ लग भीषमि लगन लिखायो, हो कन्या केरौ व्याहु रचायो ।
हो रूपिणि चिति चिंता भई जी, भूवा आणि कवरि कौ भाउ ।
बचन मुनीसुर की सही जी, हो किस्न बुलावण रच्यौ उपाउ ।।३७।।

हो समाचार सहु छानै लिखिया, हो गूढ बचन ते मुख ये कहिया ।
जाहु दूत द्वारामती जी, हो लेख हाथि नाराईण देज्यौ ।
रूपिणि चिंता बहु करै जी, हो म्योरी मुखा बानि सहु कहिज्यौ ।।६८।।

हो चीरी लै सो चल्यो बसीठ्ठो, हो नग्र द्वारिका सुंदरि दीठी ।
नाराईण ग्रहि सचरीउ जी, हो चीरी देई बिनो बहुकीयो ।
समाचार कह्या मुख तणाजी, हो बाचत लेख हरिषियो हीयो ।।३९।।

हो माघ उजाली आठैं जाणौ, हो गोधलूक सुभ लग्न बखाणौ ।
वेगा हो बचन मे आईज्यो जी, हो नागि पूजिबा रूपिणि आवै ।
ले करि घरांह पधारिज्यो जी, जै बात तुम्हरै मनि भावै ।।४०।।

हो लग्न दिवस कौ आयौ कालौ, हो व्याहु करण चाल्यौ सिसपालौ ।
सजम सेना सासती जी, हो बाचि लेख हरि बन मैं आयौ ।
नागदेव थानक जहां जी, हो हरी आपणं रूप छिपायौ ।।४१।।

हो ताहि औसरि रूपिणि तहा आई, हो नाग देव की पूज रचाई ।
हाथ जोडि बिनती करै जी, हो जै छं सकल देवता साचो ।
नाराइण अब आइज्यो जी, हो फुरिज्यो सही तुम्हारी बाचो ।।४२।।

रुक्मिणी हरण

हो नाग बिंब पाछै हरि बैट्ठौ, हो सुणी बात हसि तखिण उठिऊ ।
नेत्र नेत्रस्यो मिली गया जी, हो उपरा उपरी बहुत सनेहो ।
रथि बैसाणी रूपिणी जी, हो चल्यो द्वारिका नरहरि देउ ।।४३।।

हो मेघज पुत्र चढिउ सिसपालो, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकालो ।
सूर किरिणि सूझै नही जी, हो बखतर जीन रंगावलि टोपो ।
होका हाकि सुभट करै जी, हो रूपिणि हरण भयौ अति कोपो ।।४४।।

हो कुंडलपुर में लाघी सारो, ठाइ ठाइ वपडि पुकारो ।
रूपिणि नै हरि ले गयौ जी, हो राजा जी भीषम बाहर लागौ ।
साठि सहस रथ जोतिया जी, हो तीनि लाख घोड़ा खुर बागी ।।४५।।

हो साठि सहस राज घंटा बागी, हो बाहर सबल पुठि बहु लागी ।
रूपिणि नै डर ऊपनो जी, हो नाराइण स्यो भणै कुमारी ।
दल बल साहण आईयाजी, हो स्वामी किम होईसी उबारो ।।४६।।

हो सुणी बात हलि किस्न बखाणी, हो मेरा जी बल को मरम न जाण्यौ ।
देखि तमासा हम तणा जी, हो ताड ब्रिष देखिड परचंडौ ।
हरि बाणस्यौ छेदियौजी, हो पडिऊ भूमि भयौ सतखंडो ।।४७।।

हो रूपिणि बात हरिस्यौ भासी, हो भाई रूप हमारौ राखी ।
इहु पसाऊ हमनैं करौ जी, हो मान्यौ जी किस्नि तीया कौ बोलो ।
अभैं दान दीन्हौ सही जी, हो रूपिणि कौ मन भयौ अडोलो ।।४८।।

हो तालग बाहर नीडो आई, हो रूपिणि दिसि तूह घर भाई ।
सिसिपाला दिसि हो फिरौ जी, हो हरिस्यौं भणं आइ सिसिपालो ।
खाटो मीठो अब लहै जी, हो भागौ कहां छूटिसी ग्वालो ।।४९।।

हो किस्न भणं तू जाहु सिसपालो, हो तेरो घात न करस्युं बालो ।
बोल हमारौ ना चलैं जी, हो माता मद्री बोल बुलाओ ।
गुनह एकसउ छोडिस्यौ जी, हो पाछं जी मरण तुम्हारौ आयो ।।५०।।

हो हरिस्यौ भणं बहुडि सिसपाल, हो आयोजी सही तुम्हारौ काल ।
हा हा कीया न छुटिसि जी, तू छै नीच ग्वाल कौ ग्वालौ ।
देस देस कौ काढियौ जी, हो सिंघ गुफा क्यौ पैसे स्यालो ।।५१।।

हो बोल एकसऊ गिण्या असेसो, हो खंच्यौ धनष कान लगं कैसो ।
सिर छेद्यो सिसपाल कौ जी, हो रूप कुमार साथि करि लीयौ ।
रेवत पर्वति ते गया जी, हो ब्याहु रूपिणि कैसो कीयौ ।।५२।।

द्वारिका आगमन

हो हलधर किस्न द्वारिका आया, हो जीत्या जी सत्रु निसा ण बजाया ।
हलधर कै थानकि गया जी, हो किस्नि लीयौ रूपिणि उगालो ।
महा सुगंध सुहाउणौ जी, हो गयो जहां सतिभामा बालो ।।५३।।

हो बंधितं बो मिस्या करि सोवैं, हो बास सुगंध भ्रमर मन मोहौ ।
हो भामा आंचल छोडियो जी, हो हाथि उगाल लेई बहु बासो ।
हम पे कांई छिपायौ जी, हो जाग्यौ किस्न कीयो बहु हासौ ।।५४।।

हो सतिभामा केसौस्यौ रिसाई, हो ग्वाल पाण की बात न जाई ।
अभिप्राहु मनि जाणियो जी, हो जै तुम्ह आणी परणि कुमारी ।
हमनै तिया दिखालि ज्यौ जी, हो जै छै तुम्हनै अधिक पियारी ॥५५॥

हो बोलै किस्न भली यह बातो, हो बन मै चलहु देखिकी जातो ।
रूपिणि पूजा आईसी जी, हो पाछै केसौ मंत्र उपायौ ।
बन मै रूपिणि ले गयो जी, हो धोलौ खीरोदक फहरायौ ॥५६॥

हो बैणी देवी कै थानै, हो ऊपरि फूलदीया असमाने ।
सतिभामा आगम भयौ जी, हो देवी भोलै चरणा लागी ।
पूजा करिसा वीनवै जी, हमनै हरि कै करौ सुहागी ॥५७॥

हो हसि बोलै हरि सुणि सतिभामा, हो मनवांछित तुम्ह पुरवै कामौ ।
सकल देवि इह सुख करै जी, हो आणि कूड सहिभामा स्यौ ।
ए प्रपंच सहु तुम्ह तणा जी, हो हाड हमारा जीभा नै हासं ॥५८॥

हो रूपिणि नमसकार उठि कीयौ, हो गौरा तण भामा नै दीयौ ।
दुवै सौकि सायां मिली जी, हो भामा का मंदिर कै काठै ।
मंदिर महा कराईयो जी, हो रहे रूपिणी दीन्हौ मानो ॥५९॥

हो एक दिवसि हरि मंत्र ऊपायौ, हो दरजोधन घरि लेख पठायो ।
जाइ दूत हथणापुरि जाहो, थारै जी पुत्री छै दधि माला ।
रूपिणी भामा सुत भणै जी, हो तिहनै इह परणाज्यो बाला ॥६०॥

हो दूत चाल्यौ हथणापुरि गईयौ, हो लेख हाथि दरजोधन दीया ।
तुम्ह छौ मोटा राजईजी, हो मान्यौ बचन भयौ अहलादौ ।
राजा दूत संतोषियौ जी, हो वचन हरौ का महा प्रसादौ ॥६१॥

हो मांगी जी बिदा दूत घरि आयौ, हो नाराईण मै लेख बचायो ।
नाराईण मनि हरिषीयौ जी, हो हरी दूत पठयो तिया बाने ।
रूपिणि भामास्यौ कह्यौ जी, हो कर्म आपणो तुम्ह पतिवाणो ॥६२॥

हो जो पहली तिया पूत जणेसी, सो दूजी को सिर मुंडेसी।
दरजोधन थिया परणिसीजी, हो मानी बात हरी की भाखी।
सोक्या होड ईसी पडी जी, हो हलधर जेठु दीयौ तहां साखी ॥६३॥

हो चौथौ स्नांन रूपिणीयौ, हो रिति की दान किस्नि जी दीयौ।
रहिउ गर्भ भीषम सुता जी, हो भामा गर्भ रह्यौ तिहि बारो।
दहुं सौकि मन हरिषियो जी, हो भया महोछा मंगलचारो ॥६४॥

हो गर्भ तणा पूरा नव मासो, हो रूपिणि पूगी मन की आसो।
पुत्र महाभड जीइयोजी, हो सूतौ जहां देवकी कुमारो।
दोब दही थाली भरी जी, हो तंखिण गयो बधाऊ हारो ॥६५॥

सत्यभामा एवं रूक्मिणी के पुत्रोत्पत्ति

हो सतिभामा जायौ सुत भानौ, हो गयौ बधाऊ हरि कै थाने।
रूपिणि सेवक दिट्ठि गई जी, हो सेवकि हरि नै दही बंदायौ।
पुत्र रूपिणी कै भयौ जी, हो दान मान सेवक नै दीया ॥६६॥

हो पाछै सति भामा कै आयो, हो दान मान तिहिनै पणि दीयौ।
रली रग हूवा घणा जी, हो नग्र द्वारिका भयौ उछाहो।
घरि घरि गावै कामणी जी, हो मनि हरिखा सहु जादौ राउ ॥६७॥

हो धूमकेत को खल्यौ विमानो, हो गगन पंथि द्वारमति थानौ।
रूपिणि मन्दिर ऊपरै जी, हो रह्यो खूंचि नवि चालौ आग्रौ।
सत्रु मित्र मुनि छै सही जी, हो बितर चित्तहि बिचारै बातो ॥६८॥

प्रद्युम्न का हरण

हो उतरि भूमि देखियौ कुमारौ, हो मन माहै सो करै बिचारो।
सत्रु हमारौ इहु सही जी, हो मात कल्हा सो लीयो उचाए।
गगनि पथि ले संचरिऊ जी, हो बालक राख्यौ सागर मध्ये ॥६९॥

हो पाछै चिंति बिचारी बातो, हो मांस पिंड इहु करो न घातो।
बन मैं भीत सिघ घणा स्यालो, ताखिक सिला तलि चंपियोगी।
हो बिम्तर गयो जहां निज थानौ.......................॥७०॥

काल संवर को बालक की प्राप्ति

हो तिहिं औसरि काल सजर आयौ, हो खल्यौ विमान न चलै चलायौ ।
तक्षण धरती ऊतरौ जी, दीठी जी सीला बहु लेई ऊसासौ ।
करस्यौ उपं हरी करी जी, हो माहै बालक करै विकासो ॥७१॥

हो विद्याधरि सो बालक लीयौ, हो जिम निधि लाधा हरिखं हीयौ ।
सामोद्रिक गुण आगलौ जी, हो कचण माला बुलाई राणी ।
बालक लौ तु तुम्ह नै दीयो जी, ही राणी बाले निर्मल वाणी ॥७२॥

हो थारै जी पुत्र पाचसं सारौ, हो इहिं बालक कौ करै प्रहारो ।
ते दुख जाई । मै सह्या जी, हो सुणि बोलो सवर नरनाहो ।
हम पाछै इहु राजई जी, हो जाणौ जी सही हमारी बोलो ॥७३॥

हो कचन माला बालक लीयौ, हो धरि चालण कौ उदिम कीयौ ।
रचि बिमाण सोभा धणी जी, हो घंटा घूघर मोती माला ।
बालक नै ले चालीया जी, हो मेघकूट गढ़ अधिक रसालो ॥७४॥

हो राजा जी बालक मदिरि आण्यौ, हो बालक जन्म महोछौ ठाण्यौ ।
दीन दुखी यो देक्षा घणा जी, हो राजा जी मन मं करै बिचारो ।
कामदेव औतार छै जी, हो नाम दीयौ परदमन कुमारो ॥७५॥

हा इह तो कथा इहां हो जाणौ, हो नग्र द्वारिका बात बखाणो ।
जे दुख पाया रूपिणी जी, हो बालक सेज्या थानि न दीसै ।
रूदन करै हरि कामिणी जी, हो घूणं सीस दुवं कर पीटै ॥७६॥

हो राजा जी भीखम तणी कुमारी, हो हिइडौ सिर कूटै अति भारी ।
दीसै जी खरी डरावणी जी, हो सुणी बात किस्न कै दिवाणि ।
मुख तबोल हरि रालीयोजी, हो हाहाकार भयौ असमाने ॥७७॥

हो हरि जी बात विचौर जोई, तीन खंड में बली न कोई ।
पुत्र हमारौ जो हरै जी, हो हरि रूपणि कै मन्दिर आयो ।
सांत वचन प्रतिबोध दे जी, हो ठांई ठाई लिखि लेख पठायो ॥७८॥

नारद ऋषि का आगमन

हो तौ लग नारद मुनिवर आयो, हो सुणी बात तिहि बहु दुख पायो ।
रूपिणि मंदिर संचरिउजी, हो मुनि आगम सुणि हरि तिया जागी ।
नमसकार विधि स्यो कीयो जी, हो स्वामी हो विधना जी करी अभागी ।।१७९।।

हो नारद अपे सुणहुं कुमारी, हो उपजै विणसै इहि संसारी ।
दुखि सुखि जीव सदा रहै जी, हो पाप पुण्य दूं गल न छोडै ।
सहै परीसाह तप करै जी, हो पहुंचे मुकति कर्म सहु तोडै ।।८०।।

हो पुत्री हौ आकासां गामी, हो बूझिसी जाइ केवली स्वामी ।
दीप अढाई हो फिरौ जी, हो मनि बिसमाई करै पतराणी ।
बालक सोधो हो कइजी, हो नारद नाम सहीस्यो जाणी ।।८१।।

नारद का प्रस्थान

हो बात कही मुनि गिगनाह चढियो, हो जाणिकि सुगि गरड पंखि उडियो
नदी नग्र छांड्या घणा जी, हो पूर्व बिदेह पुहकली देसो ।
पुंडरीक प्रति भलो जी, हो नारद नग्री कीयो प्रवेसो ।।८२।।

सभा लोक अचिरिज भयो जी, हो पदमनाम पूछे चकेसो ।
हो श्रीमधर तहा जिणवर नाथो, हो वंद्या चरण केइ सिरि हाथो ।
इह सरूप माणस तणो जी, हो कीट समान नर कौण सुदेसो ।।८३।।

हो सुणोहु चक्केसुर केवल वाणी, हो दक्षिण दिसा मेर की जाणी ।
भरथ खेत्र द्वारामती जी, हो नवमो हरि तिहि के सुत जायो ।
धूमकेत हरि ले गयो जी, हो तासु गए सं ढूंढण आयो ।।८४।।

हो पदम नाम बूझै भोवालो, हो कौण वैर थे हरियो बालो ।
पूर्व भवांतर सहु कहो जी, हो भणै केवली सुणो हु नरिंदो ।
नख बेठो नारद सुणै जी, हो कहो पाछिलो सहु सनबधो ।।८५।।

प्रद्युम्न के पूर्व भावों का वर्णन

हो मगह देस तहा सालीग्रामो, हो विप्र सोमदत्त बसै सुट्ठामो ।
अग्नि बाई सुत तिहि तणा जी, हो विद्या गर्व करै अति भारो ।।
मुनिवरस्यो भेटा भई जी, हो मुनिवर भासै सुबुधि विचारी ।।८६।।

हो विद्या गर्व न कीजै बालो, हो इहि नगरी बनि था तुम्हस्यलौ ।
धर्म जीत मलिण कीयौ जी, हो भइ वेदना मरणह पायो ।
सोमदत्त घरि उपना जो, हो ग्वाल जाट घरि देखो जाए ॥८७॥

हो छोडि मिथ्यात अणुव्रत लीया, हो दान चारि तिहु पात्रां दीया ।
करूणा समिकित पालियौ जी, हो मरण समै तजि यासी अन्नो ।
प्राण समाधिस्यौ छोडियाजी, हो हुआ देवते सुगि उपनो ॥८८॥

हो पूरी आऊ तहां थे आया, हो सागर सेट्ठि तणं सुत जाया ।
क्षेत्र भरथ अमरापुरी जी, हो पूरण मणिभद्र तसु नामो ।
व्रत पाल्या श्रावक तणाजी, हो छूटा प्राण गया सुरठामो ॥८९॥

हो पूरी आऊ तहां थे भईया, हो नग्र अजोध्या ते अवतारिया ।
हेम नाम राजा बसै जी, हो मधू कीट उपना तसु नंदो ।
राजा हो मनि हरिषिऊ भयौजी, हो रूपकला गुण पून्यौ चंदो ॥९०॥

हो हेम भूपती दिक्षा लीनी, हो राज विभूति मधु नै दीन्ही ।
राजा पिता कौ भोगवैजी, हो एक दिवसि बनि क्रीडा जाए ।
भीम महाबलि बसि कीयो जी, हो बटपुर बीरसेनि कै ठाए ॥९१॥

हो बीरसेन दीन्हौ बहु मानो, हो भोजन वस्त्र सिंघासन थानो ।
मधुकीटक संतोषिया जी, हो मधु राजा चंद्राभा राणी ।
बीरसेणि की हरि लई जी, हो मधु अतिबात अजुगता ठाणी ॥९२॥

हो बीरसेणि तब बहु दुख पायौ, हो कामिनी काज अजोध्या आयो ।
तारन मेलै कामिणीजी, हो बीरसेणि मनि करै बिचारो ।
तापस का व्रत आचरया जी, हो धिग धिग जंपै इहु संसारो ॥९३॥

हो मधु वर्ति आंणियो बंधि अन्याई, हो तलवर बोलै सुणहु गुंसाई ।
परकामिणि इहु भोगवै जी, हो मधु राजा जंपै तलि यारो ।
इहि नै सूलि पाईज्यो जी, हो भलाई कौ एहु विचारो ॥९४॥

हो चंद्राभा मधु सेथी जंपै, हो बात सुणत मुझ हियडौ कंपै ।
बात विचारो आपणी जी, हो हमनै कहैत किम हरिल्यायौ ।
पर कामिणि तुम्ह भोगवौ जी, हो कोई अन्याई सूली द्यौ जे ॥९५॥

हो तीया वचन सुणि मधुवर वीरो, हो चली कंपणी अधिक सरीरो ।
कर्म अजुगतौ हम कीयौ जी, हो पुत्र बुलाइ दीयौ सहु राजो ।
भाऊ सुद्ध संजम लीयौ जी, हो करै घोर तपु आतम काजो ॥९६॥

हो एक मास कौ धरि सन्यासो, हो उपनौ सर्ग सोलहै बासो ।
इद्र विभूति सुभोगवैजी, हो, पूरी आउ तहां थे आइयौ ।
रूपिणि कै सुत उपनौजी, हो तिह्निं धूमकेत ले गईयौ ॥९७॥

हो वितरि आणि सिलातलि चंपिऊ, हो तिहि पापी को हीयो न कंपिउ ।
आप थानकि गयौ जी, हो कर्म जोगि काल संवर आयौ ।
देखि मिला ऊसास ले जी, हो सिला तलि थे बालक करी ल्यायौ ॥९८॥

हो कंचणमाला बालक लीयौ, हो पूर्वस्नेह महोछौ कीयौ ।
चंद्राभासी कंचणाजी, हो मधु कौ जीव रूपिणी बालो ।
पूर्व वैरि तिहि हरि लियो जी, हो बिलर वीरसेण भोवालो ॥९९॥

हो रूपिणि बालक मुकति गामी, हो सोलाह गुफा जीति होई स्वामी ।
पाछै द्वारिका पहुचिसजी, हो मात पिता नै मिलिसी जाइ ।
सोलह वर्ष पछै सही जी, हो दरजोधन धिइ परणी जाए ॥१००॥

हो सहु सनबंधि जिणेसुरि कहियो, हो नारदि सुण्यौ बहुत सुख लहियो ।
नमसकार करि चालीयौ जी, हो मेघकूट गढ संवर राऊ ।
कंचणमाला कामिणी जी, हो देखि कवर मुनि भयौ उछाहो ॥१०१॥

नारद का पुनः द्वारिका आकर समझना

हो तखिण मुनि द्वारिका गईयौ, हो रूपिणि मंदिरि संचरौ जी ।
हो समाचार ब्यौरो कह्यौ जी, रूपिणि घरांह भयौ आनंदो ।
गोवलि गूडी ऊछली जी, हो मनि हरिसा सहु जादौ मंद ॥१०२॥

हो कंपिजिल्यो सुनि बात पयासी, हो सोलह बरस गयां घरि आसी।
रीता सरवर जलि भरै जी, हो सूका बन फूलैं असमानो ।
दूध खिरै तुम्ह अंचला जी, हो तौ जाणी साची सहनाण ॥१०३॥

हो बात सुणी अति हरिखो हीयौ, हो नमसकार नारद नै कीयौ ।
सफल जन्म मेरौ कीयौ जी, हो इह तौ कथा द्वारिका जाणी ।
कामदेव संवर घरां जी, हो सुणी तासु की कथा बखाणी ॥१०४॥

काल संवर के यहां प्रद्युम्न का बडा होना

हो सिंघ भूपतीस्यौ करि खांति, हो संवरि राजा मांडी राते ।
पुत्र पंचसै मोकल्या जी, हो जाहु वेगि सिंघ भूपति मारौ ।
देखौ पोरिष तुम्ह तणौ जी, हो ले बीडौ चढि चल्या कुमारो ॥१०५॥

हो संघ भूपतां आगै हारया, हो केई भागा के रिण मैं मारया ।
संवर दुख पायो घणौ जी, हो चाल्यौ राऊ दमांमौ दीयौ ।
कामदेव आडौ फिरिउजी, हो देखौ पिता हमारो कीयौ ॥१०६॥

हो गयौ काम जहां सिंघ नरेसो, हो भरै सुभट झिडिपडै असेसा ।
कामदेव रिणि आगलौ जी, हो नागपासि ले रालौ कामो ।
सिंघ भूपती बंधियो जी, हो तखिण गयो पिता के गामो ॥१०७॥

हो नमसकार संबर नै कीयौ, हो राजा सिंघ बधि करि दीयौ ।
सवर घरांह बधावणौ जी, हो जाण्यौ पुत्रि कीया जे काजो ।
परजा लोक बुलाईया जी, हो साखि देई दीन्हौ जुगराजो ॥१०८॥

हो पुत्र पंचसै संवर केरा, हो दुष्ट भउ अति करै घणेरा ।
मैणसरिस जीतै नही जी, हो सोलाह गुफा तहा ले दीयौ ।
बितर निवसै अति घणा जी, हो कातर नर कौ फाटै हीयौ ॥१०९॥

हो कामदेव कै पुन्य प्रभाए, हो बितर देव मिल्या सहु आए ।
करी मैण की बंदना जी, हो दीन्हा जी बिद्या तणा भंडारो ।
छत्र सिंघासन पालिकीजी, हो सैंधी धनष खडग हथियारो ॥११०॥

हो रत्न सुवर्ण दीया बहु भाए, हो करै बीनती आगै आए।
हम सेवक तुम्ह राजई जी, हो सोलाह गुफा भलै आयो।
विंतर देव संतोषिया जी, हो कंचणमाला कै मनि भायो ।।१११।।

हो नमसकार माता नै कीयो, हो राणी अजरामर सुख कहियो।
रूप मयण को देखियो जी, हो मन माहै सा करै विचारो।
ईसा पुरिस नै भोगवै जी, हो तिहि कामणि को फल जमारो ।।११२।।

हो भणै मयणस्यौ छोडी लाजो, हो करि कुमार मन वंछित काजो।
हम सरि कामिणि को नहीं जी, हो भणै मयण इहु वचन अजुगतो।
महा नरक को कारणो जी, माता नै किम सेवै पुतो ।।११३।।

हो राणी सहु सनबंध बखाण्यो, हो राजा तू सिलतलि थे आण्यौ।
छोलि हमारी पालियो जी, हो इसी बात को दोष न कीजै।
कुखि हमारी को नहीं जी, हो मनुष्य जन्म को लाहौ लीजै ।।११४।।

हो ऊत्तर दीन्हौ रूपिणि बालो, हो राजा जी मस्तकि ऊपरि कालो।
जीवत माखी को गिलै जी, हो जिहि को लाजे लूण रूपाणी।
तिहि को बूरो न चितिवै जी, हो कहा वचन इम केवल वाणी ।।११५।।

हो राणी भणै राउ डर मानै, हो विद्या तीनि लेहु थी कानै।
राऊ न तुम्हस्यो जीतिसी जी, मैयण भणै सुणि मात विचारी।
जुगती होई सुही करो जी, हौ झूठ न वाणी बोल हमारो ।।११६।।

हो विद्या चढी काम कै हाथो, हो हौ बालक तुम्ह राणी मातो।
नमसकार करि बीनवै जी, हो ईक माता अरू भई गुराणी।
विद्या दान दीधौ घणो जी, हो पुत्र जोगि सो काज बखाणी ।।११७।।

हो कंचणमाला बहु दुख करियो, हो विद्या दीन्ही कामन सरियो।
बात दुहु विधि वीगडीजी, हो पत्नी चिंति न बात विचारी।
हरत परत दुन्यौ गयो जी, कूकरि खाधी डाकर मारी ।।११८।।

हो पुत्र पंचसै लीया बुलाइ, हो सारहु बेगि काम तै आए ।
ते मन मै हरषा भया जी, हो मयण लेई बन क्रीडा चल्या ।
मांझि बाउडी चंपियौ जी, हो ऊपरि मोटा पाथर राल्या ।।११९।।

हो कामदेव ते सहु पाकडिया, मयण नग्र मैं आइयो जी ।
हो राणी नेत्र रूधिर अति चूवै, करि प्रपंच तनु पडियौ जी ।
हो हम नै पापी मैणा बिगोवै, रास भणौ परदवण कौ जी ।।१२०।।

हो राजा आगै भई पुकारो, हो कोटी भयौ परदमन कुमारो ।
मेरो अग बिलूरियो जी, हो सवरि राइ कोप बहु कीयौ ।
घात करौ परदमन कौ जी, हो सहु सेवक नै दूवो दीयौ ।।१२१।।

हो सेवक जाई मैयणस्यो लागा, हो केई जी भागा के रिणी मारया ।
आप राउ सवर चढिउजी, हो कामदेव सवर बहु भिडिया ।
विद्या उझुझ कीयौ घणोजी, हो आणिकि माता कूंअर जुडिया ।।१२२।।

हो जब राजा की सेना भागी, हो विद्या तीनि तीया पै मांगी ।
राणी मनि बिलखी भई जी, हो विद्या तौ ले गयौ कुमारो ।
राजा मन मैं चिंतवै जी, हो देखौ राउ तणा व्योहारो ।।१२३।।

हो संबरि बाण जाई नवि संधिउ, नागपासि स्यो तक्षण बंधिउ ।
कामदेव रिणि जीतीयौ जी, हो तौ लग नारद मुनिवर आयौ ।
मैयणि मुनी का पद नम्या जी, हो हरिष दुहुं कै अंगिन भावै ।।१२४।।

हो नारद भणै मयण सुणि कते, हो तुम्ह तौ जी करियौ काम अजुगतौ ।
स्वामी गुरू किम बंधि जै जी, हो पालि पोसि जहि कीया ठाढौ ।
रास चरण नित बंदि जैजी, हो विनौ भगति अति कीजै गाढौ ।।१२५।।

हो सुणी बात राजा छोडिउ, हो नमसकार करि दुं कर जोडिउ ।
हम थे चूक घणी पड़ी जी, हो सवर राई बहुत सुख पायौ ।
समाचार नारद कहै जी, हो कामदेव नै लेवा आयौ ।।१२६।।

हो घर नैं गमन करै हरि बालो, हो गयौ जहां थी कंचणमालो ।
चरण मात का ढोकिया जी, हो हमिस्यौ करिज्ये खिमा पसाउ ।
हम बालक तुम्ह पोषिया जी, हो हमनैं चलण द्वारिका भाउ ।।१२७।।

हो नमसकार राजा नैं कीयौ, हो मान बहुत बहु लौ दीयौ ।
हम बालक था तुम्ह तणाजी, हो हम द्वारिका चलण को भाउ ।
भला प्रसाद सु तुम्ह तणा जी, हो पूर्व स्नेह तजौ मत राऊ । १२८।।

हो रचौ विमाण मुनि बहु मणि जडियो, हो तोडै मयण भूमि गिरि पडियौ ।
बहुडि रच्यो तिहि तोडियो जी, हो नारद भणैं न करहु उपाऊ ।
बिलब करण बेला नही जी, हो बरी तुम्हारी मान बिबहो ।।१२६।।

विमान पर चढकर द्वारिका के लिये प्रस्थान

हो रच्यौ विमाण महामणि जडियो, हो नारद सहित मयण चढि चलिये ।
नमसकार अवधारि ज्यो जी, हो चढिउ विमान गगनि असमानो ।
नग्र देस सागर नदी जी, हो परबत दीप महागढ थानो ।।१३०।।

हो आगैं कैरो देखि बरातो, इह बरात कोणं तणी जी ।
हो एक भणं दरजोधन जानो, नग्र द्वारिका जाईसी जी ।
हो दधिमाला नैं ब्याहे भानो, रास भणौ परदमण कोसजी ।।१३१।।

प्रद्युम्न द्वारा कौतुक करना

हो भील रूप करि ठाढो आगैं, हो चौकी दाण हमारा लागैं ।
इह चौकी भीला तणी जी, हो कैरो लोग भणैं करि हासी ।
कौण बात धाणकि कही जी, हो इह तौ ओ जान हरी कै जासी ।।१३२।।

हो हरि को एक द्वारिका गाउ, हो हम धाणक बन खड का राउ ।
कैसो थे हम राजई जी, हो जानी बोलैं कायौ लागैं ।
साचा बचन तुम्ह भाखि ज्यौ जी, हो दमडी एक अधिक मत मांगो ।१३३।

हो टांडै वस्त भली होई सारो, हो सो लैस्यां इहु लाग हमारो ।
तब तुम्ह नैं पहुचाई स्यां जी, हो जानी बोल्या करि बहु रीसो ।
भली वस्त इह साडिली जी, हो कहुंनैं जी किस्न पुत्र तिया लेस्यौ ।१३४।

हो मीलरूप बोलै बलिवंतो, हो लेस्यौ जी लाडी साही तुरंतो ।
सुणि कैरो नै रिस भई जी हो आन लोग घाणक स्यो लागा ।
भल लडाइ जी कीयौ जी, हो लाडी तजि सहि कैरो भागा ।।१३५।।

हो दधि माला बिमानि बैसाणे, हो तंक्षण गयौ द्वारिका थाने ।
बाहरि बन मैं गम कीयो जी, हो भणैं मयण कहि मालाकरी ।
इहु बन कुणंक राईयो जी, हो बन सतिभामा किस्न पियारी ।।१३६।।

हो माया का घोडा करि मयणो, हो मालीस्यौ बोलैं सुभ बइणो ।
लहु सोना कौ मूंदडी जी, हो घोडा दोई चराऊण देजौ ।
भूखा दिन दुइ बहुतणा जी, हो दाम चारि अधिके राले जौ ।।१३७।।

हो घोडाँ तोडि कीयौ बन छारो, हो माली रावलि गयौ पुकारो ।
भान कुवरस्यौ बीनवैं जी, हो घोडा देखण आयो भानो ।
मयण विप्र बूढौ भयौ जी, हो घोडा ले वाढौ चौगानो ।।१३८।।

हो भणैं भान बंभण कहि मोलो, हो याह घोडा कौ कांयो मोलो ।
बूढौ बंभण बोलियो जी, हो बार एक तू चढि दोडावैं ।
टाट ताजी परखिजै जी, हो मोल कहौ जै तुम्ह मनि भावैं ।।१३९।।

हो भानकुमार चढ्यो हसि घोडैं, हो पडिउ भूमि जब घोडौ दोडैं ।
बूढौ बभण बोलियौ, हो तुम्ह तौ कहिज्यौ किस्न कुमारो ।
गदहो कौ असवार छैं जी, हो घोडा तणी न जाणैं सारो ।।१४०।।

हो भान भणैं सुणि विप्र विचारो, हो फेरौ घोडा करि असवारी ।
विप्र बाल हसि बोलियौ जी, हो नौसे बरष ईक्यासी लागा ।
कहि जजमान किसी करौ जी, हो देह तणा सगला बल भागा ।।१४१।।

हो भणैं भान चढि कंधैं मैरे, हो करि असवारी घोडा फैरो ।
कधैं पग दे सो चढिऊ जी, हो फेरया जी घोडा बाबका दीया ।
पाडा ऊभौ रालियौ जी, हो माया का घोडा दूरि कीया ।।१४२।।

हो गयौ जती होई जहां पणिहारी, हो कमंडल भरण देहु आदौ मारी ।
पाणी सहु कमंडलि गिल्यौ जी, हो पणिहारी बहु करै पुकारी ।
घाणि चौहटै फोडियो जी, हो चाल्या साल नीरकी धारो ॥१४३॥

हो सतिभामा घरि गयौ कुमारो, भानकुमार व्याहु च्यौचारो ।
विप्र रूप बूढौ भयौ जी, हो छिटिकया होठ निकस्या दंतो ।
मुंडि हाथ डगमग करै जी, हो बैठो मंडप माह हंसतो ॥१४४

हो भणै विप्र सुणि भामा बातो, हो भूखां छाती मूहै मातो ।
भोजन थारै घरि घणौ जी, हो बंभण भजि मधाई जिमावै ।
इंद्री पोखै विप्र का जी, हो तौ मन वंछित भागै पावै ॥१४५॥

हो नमसकार सतिभामा कीयौ, आयौ थाल बैसणै दीयौ ।
बैसि विप्र भोजन करौ जी, हो सालि दालि घ्रित घणा परुसै ।
भोजन सहु जिणवार कौ जी, हो थाली भोजन टाकन दीसे ॥१४६॥

हो पाणी ते सगलौ पीयौजी, हो पाछै विप्र सराफज दीया ।
लहू भोजन तू पापी खीरै, हो घालि अंगुली करौ ऊकारी ।
घर आंगण छार्दिहि भरयौ जी, हो भइ गया व आई सहारी ॥१४७॥

हो पाछै रूप ब्रह्मचारी कीया, हो दीरघ दत कर हरै होयौ ।
स्यामवर्ण बूढौ भयौ जी, हो आयौ वेगि रूपिणी थाने ।
नमसकार माता कीयौ जी, हो प्रचलि चाल्यौ बुध आसमाने ॥१४८॥

हो जती भणै मुझ डोलै काया, हो गाढौ भोजन ऊपरि माया ।
माता भोजन वेगि द्यो जी, हो बालि चूल्हौ जीवन जोगो ।
चूल्है आगि बलै नही जी, हो रूपि कुल पुत्र को विजोगो ॥१४९॥

हो लाड नाराइण नै कीया, हो लाडू कोई जती नै दीया ।
भूख जाइ छह मास की जी, हो जती भणै मुझ भूख घणेरी ।
लाडू च्यारि बहुडि दीयाजी, हो माता भूख न जाइ हमारी ॥१५०॥

हो भणं जती किम विलखी मातो, हो कुंण दु.ख थे दुर्बल गातो ।
हियडा की चिंता कहो जी, हो रुकमिणी मन की भणं सताघो ।
चिंता सहु हियडा तणी जी, हो सुणहु बात स्वामी गुरु वायो ।।१५१।।

हो बाया पुत्र असुर हरि लीयो, हो नारदि जाई गएसो कीयो ।
श्रीमंधर जिण बूझियो जी, हो जिणवरि संबर घरांह बतायो ।
विद्याधन विढवे घणो जी, हो सोलह बर्ष गया घरि आवे ।।१५२।।

हो स्वामी आजि अवधि दिन केरो, हो अजौहू न आयो बालक मेरो ।
परिपूर दिन आजि को जी, हो तहि थे चिंता दुर्बल गातो ।
प्राण आहि तौ अति भला जी, हो तज्यो तंबोल अन्न सहु नीरो ।।१५३।।

हो जती भणं दुख म करि अयागो, हो हमनं जी पुत्र आपणो जाणो ।
करो काजु जो तुम्ह कहो जी, हो रुकिमणि मन मै करं विचारो ।
अबं हीण दीसं जती जी, हो ईसो पुत्र किम होई हमारो ।।१५४।।

हो बात रुपिणी मन मै आणी, हो मुनि वचन पूगी सहै नाणी ।
दूध अंचलां चालीयो जी, हो कामदेव मनि करं विचारो ।
माता दुख पावं घणो जी, हो प्रगट रूप तब भयो कुमारो ।।१५५।।

हो नमस्कार करि चरणां लागो, हो भीषम पुत्री को दुख भागो ।
असुरपात आनंद का जी, हो बुझं बात हरिष करि मातो ।
सहु संबर का घर तणी जी, हो मयण मूल को कह्यो विरतांतो ।।१५६।।

हो भणं मात धनि कंचनमालो, हो बालक सुख दीठा बहु कालो ।
मैयण रूप बालक भयो जी, हो धाई मात का आंचल चूखं ।
क्षिण ठाढो क्षिणि गिरि पडं जी, हो रोवं हसं क्षणक मै रूसं ।।१५७।।

हो बरष एक हूं को बोले, हो बचन सुहावा तोतला बोलं ।
धूलि भरिऊ माता मिलें जी, हो रुपिणि कै मनि भयो विकासो ।
बालक का सुख भोगया जी, हो मयण मात की पूरी आसो ।।१५८।।

हो तो सत भामा नारि पठाई, हो गावै गीत द्वारिका सुणाई ।
सिर मूडण रूपिणि तणौ जी, हो मयण भणै मां कौण विचारो ।
गावत आवै कामिणी जी, हो आवै जी सिर मूंडिवा हमारो ।।१५९।।

हो पहली जी पुत्र तीय जणेसी, हो सा दूजी कौ सिर मूडेसी ।
पुत्र होउ पैहैली पडी जी, हो कामदेव तब मत्र उपायो ।
माया की करि रूपिणी जी, हो पौलि द्वारणै बैठो जी ।।१६०।।

हो उपरा ऊपरी मूडि सिर बालो, हो नाक कांन लुणि ले मथालो ।
गावत चाली चौहटै जी, हो तालो पीटि हसै सहु लोगो ।
नाक काम सिर मुंडिया जी, हो कुण विधाता भयो विजोगो ।।१६१।।

हो सति भामा देख्यौ व्यौहारो, हो जेट्ठ बलीस्यो करं पुकारो ।
देखि बात रूपिणि घरि जाय, हो देसि बली रूपिणि घरि गइयौ ।
हो देण बहु नै बोलस्या जी, हो विप्र रूप आडौ पडि रहियौ ।।१६२।।

हो हलधर भणै विप्र सुणि भाई, हो छोडि द्वार आघेरौ जाई ।
हलधर स्यौ बंभण भणै जी, हे देव भूख हम परे संताए ।
रूपिणी घणौ जिमाईयौ जी, हो पैंड एक मुझ गयौ न जाई ।।१६३।।

हो हलधर बभण सेथी लागौ, हो उट्ठि विप्र कौ ताण्यौ पागो ।
बंभणि पग पसारियो जी, हो गयौ हली कै साथि हि लागो ।।१६४।।

हो छांडि पग बलिभद्र विचासै, हो इहु अचिरज मुझनै बहु भासै ।
इहु दीसै कोई बली जी, हो मयण प्रपंच एक तब कीयौ ।
रूपिणि नै हडि ले चल्यौ जी, हो चालि विमानि गगनि संचरियौ ।।१६५।।

हो बैट्ठा जादौ सभा दिवाणो, हो कामदेव अपै करि मानो ।
किस्न तीया हडि ले चल्यौ जी, हो तुम्ह सहु राजा बिडद बुलावो ।
सेजा बांधै चमर काजी, हो जै बल छै तो आइ छुडावो ।।१६६।।

हो कहिज्यौ जी तुम्ह बलिभद्र झुझारो, हो बाना घालि होइ असवारो ।
रूपणि नै हुं ले चल्यौ जी, हो पोरिष छै तो आई छुवाजै ।
कै बाना सहु रालि द्यौ जी, हो पाछै जी मुख तु किसौ दिखासौ ।।१६७।।

हो तुम्ह बसदेव कहै रणिस्तरा, हो विद्याधर जीतिया घणेरा ।
देखौ पौरिष तुम्ह तणौजी, हो नाराइण छै पुत्र तुम्हारौ ।
तासु तीया हुं ले चल्यौ जी, हो देखौ जी बल छै कितउ एक थारो ।।१६८।

हो अरजन कहै धनषधर राए, हो तैहि बैराटि छुडाई गाए ।
जै बल छै तो आई ज्यो जी, हो भीम मल्ल तुम्ह बडा झुझारो ।
रूपिणि बाहुर लागि ज्यौ जी, हो कै रालि द्यौ गदा हथियारो ।।१६९।।

हो निकुल कुंत सोभै तुम्ह हाथे, हो कहि ज्यो बलि पाडवां साथे ।
अब बल देखौ तुम्ह तणो जी, हो सहदेव ज्योतिग जाणै सारो ।
कहि रूपिणि किम छूटि सी जी, हो इहि ज्योतिग को करहु बिचारो ।१७०

हो नाराइण तिहुं खंडा राणौ, हो राजा मानै सहु तुम्ह आण ।
कहि ज्यौ मोटा राजई जी, हो जिहि की कामिणि हडि ले जाजे ।
पांचां मैं पति किम लहै जी, हो पोरिष छै तो आई छुवाजे ।।१७१।।

हो सुणी बात जादौ सह कोप्या, हो थर हरि मेरू कुलाचल कप्या ।
नाराइण बहर चढिऊ जी, हो छपन्न कोडि की सेना चाली ।
घुरैह दमामा रिण तणा जी, हो डस्या नाग सहु धरती हालौ ।।१७२।।

हो देखि मयण अति बाहर गाढी, हो रूपिणि नारद की नय छांडी ।
विद्यादल सहु संजोईया जी, हो पहिली चोट पयादा आई ।
पाछै घोडा वालीया जी, हो रूंड मुंड अति भई लडाई ।।१७३।।

हो असवारां मारै असवारा, हो रथ सेथी रथ जुडै झुझारो ।
हस्तीस्यौ हस्ती भिडैजी, हो घणौ कह्यौ तो होई विस्तारो ।
किस्न तणो सहु दल हुण्यौजी, हो नाराइण मनि करै बिचारो ।।१७४।।

हो करि दाहिणै गदा जब लीयो, हो तब रूपिणि को धमक्यो हीयो ।
नारद सेती वीनवैजी, हो घडै पुत्र जहां भरतारो ।
मुहं माहि काइ मरै जी, हो बाल मुहं वर जाई हमारो ॥१७५॥

हो नारद आइ किस्नस्यों बोल्यो, हो काहि नै गदा किथि उपरि तोलै ।
इहु परदमन कुमार छै जी, हो पाछै आई मयण समझाए ।
आयुध सगला रालि द्यो जी, हो चरण पिता का ढोको आए ॥१७६॥

हो हरि परदमन रालि हथियारो, हो मिल्या दुवै आणंद अपारो ।
कुसल समाधि दुहु कही जी, हो बाजै नाद निसाणा घाउ ।
मयण कटक ठाढो कीयो जी, हो पुत्र सहित घरि पहुतो राऊ ॥१७७॥

हो हरि रूपिणि नैं मिलियो नंदो, हो सहु जादौ नैं भयो आनंदो ।
द्वारामती वधावणो जी, हो बंध्या तोरण मोती माला ।
घरि घरि गावैं कामिणी जी, हो घरि घरि नाचैं बहु छंदि बाला ॥१७८॥

हो गिण्यो महुर्त लगन लिखायो, हो कामदेव को ब्याहु रचायो ।
चोरी मंडप अति बण्या जी, हो रूपिणि मंदिरि होई बधावा ।
सतिभामा बिलखी गई जी, हो गावो कामिणी गीत सुहावा ॥१७९॥

हो दरजोधन कन्या परणावै, हो सजन सगाई लेख पठाया ।
उदधिमाल को मांड हो जी, हो मेघकूट तिहां लेख पठायो ।
विनो भगति लिखि जुगति स्यो, हो कचण माला संबर आयो ॥१८०॥

हो कन्या वर कै तेल लगायो, हो चोवा चंदन वस्त्र पैहराया ।
चोरी विप्र बुलाईयो जी, हो बंभण भणै वेद झुणकारो ।
वैसादर साखी भयो जी, हो उदधिमाल वर मयण कुमारो ॥१८१॥

हो वर कन्या भांवरि फिरि चारे, हो दरजोधन करि गहि ती झारी ।
हाथ छुडावण दीय तणो जी, हो रथ हस्ती कंचण के काणो ।
छत्र चवर दासी घणी जी, हो कामदेव ने दीन्हो दानो ॥१८२॥

हो कामदेव जयमाला व्याह्यो, हो सजन लोक मिल्या तिहि ठाए ।
जथा जोगि पहिराईया जी, हो मास एक तहा रही बरातो ।
भोजन भगति करी घणी जी हो सहु को घरि पहुतो कुसलातो ।।१८३।।

हो कामदेव को भयो विवाहो, हो रूपिणि कै मनि भयो उछाहो ।
बहुटल आपणो हरिषस्यो जी, हो दुर्जन दुष्ट न बात सुहाई ।
सजन घाले हरिषीया जी, हो रूपिणि आनद अंगिन माई ।।१८४।।

हो लोग द्वारिका हरि भो वालो, हो सुख मैं जातन जाण्यो कालो ।
इंद्र जेम सुख भोगवैजी, हो नेमिकुमार भयो बैरागो ।
बध्या पसू छुडाईया जी, हो सयम लीयो व्याहु थे भागो ।।१८५।।

हो केवल णाणी भयो जिणदो, हो केवलि पूजा बिधिस्यो इंदो ।
समोसरण बारह सभा जी, हो सुरनर विद्याधर सहु आया ।
वाणी उछली केवली जी, हो श्रावक धर्म्म सुणो सहु आए ।।१८६।।

हे हली भणै दे मस्तिक हाथो, हो प्रस्न एक बूझौ जिणनाथो ।
संसो भाजै मन तणो जी, हो द्वारामती किस्न को राजो ।
केतो काल सुखी रहै जी, हो छपन्न कोडि जादो सहु साजो ।।१८७।।

हो जिणवर बोलै केवल वाणी, हो बरस बारहै परलो जाणी ।
अग्नि दाझि सी द्वारिका जी, हो दीपाइण थे लागै आगे ।
नग्री लोग न ऊबरै जी, हो हलधर किस्न छूटिसी भाजे ।।१८८।।

हो जाणि केवली साची बातो, हो पाया दुख पसीज्यो गातो ।
केवल भाख्यो ते सही, हो केसौ भणै धर्म्म सहु कीज्यो ।
जहि को मन वैरागि छै जी, हो छोडि मोहनी दक्षा लीज्यो ।।१८९ ।

हो कामदेव अरु संबु कुमारो, हो जाण्यो सहु संसारू असारो ।
मांगी सीख पिता तणी जी, हो नेमीसुर पै संजम लीयो ।
मोह विकल्प सहु तज्या जी, हो सहु परिगह नै पाणी दीयो । १९०।।

हो अथिर संपदा रूपिणि जाणी, हो जब सांभली जिणेसुर वाणी ।
नाराइण वूझो लीयोजी, हो आर्यिका तणा लीया व्रत सारो ।
साडौ एक मुककलो कीयो जी, हो सहु परिगह को कीयो निवारो ॥१६१॥

हो मयण मुनीसुर तप करि घोरो, हो घाति अघाति कर्म्म हणि सुरो ।
सिद्धतणा सुख भोगवै जी, हो सौ रूपिणि मरतो अन्न निषेध्यो ।
सुगि सोलेह देवता जी, हो समिकित कै बलि स्त्रीलिंग छेद्यो ॥१६२॥

ग्रन्थ प्रशस्ति

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो लोई, हो अनंतकीर्ति जाणै सहु कोइ ।
तासु तणो सिषि जाणिज्यो जी, हो ब्रह्म राइमलि कीयो बखाणो ॥१६३॥

हो सोलहसै अठवीस विचारो, हो भादवा सुदि दुतीया बुधवारो ।
गढ हरसौर महाभलो जी, हो तिमै भलो जिणेसुर थानो ।
श्रीवंत लोग बसै भला जी, हो देव सास्त्र गुरु राखै मानो ॥१६४॥

हो कडवा एकसो अधिक पंचाणू हो रास रहस परदमन बखाणो ।
भाव भेद जुवाजी हो, जैसी मति दीन्हौ अवकासो ।
पंडित कोई मत हंसो जी, हो जैसी मति कीन्हौ परगासो ॥१६५॥
रास भणो परदवण को जी ।

इति श्री परदमनरास समाप्त ।

कविवर भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कविवर त्रिभुवनकीर्ति

जीवन परिचय एवं मूल्यांकन

विक्रम की १७वीं शताब्दी के प्रथम पाद में होने वाले हिन्दी जैन कवियों में त्रिभुवन कीर्ति दूसरे कवि हैं जिनका परिचय प्रस्तुत भाग में दिया जा रहा है। सत्रहवीं शताब्दी हिन्दी के बीसों जैन कवि हुए हैं जिन्होंने हिन्दी में काव्य रचना करके उसके प्रचार प्रसार में सर्वाधिक योग दिया। वास्तव में इस शताब्दी के जैन कवि भी प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश मे काव्य रचना बन्द करके हिन्दी की ओर आकर्षित हो रहे थे। यही कारण में एक ही समय में अनेक कवि हुये जिनका नामोल्लेख भी हिन्दी के इतिहास में नहीं हो सका है। उनके विस्तृत परिचय का तो प्रश्न ही पैदा नही होता। त्रिभुवनकीर्ति भी ऐसे ही एक अज्ञात कवि हैं जिनके सम्बन्ध में क्या हिन्दी जगत् और क्या जैन जगत् दोनों ही अपरिचित से हैं।

त्रिभुवनकीर्ति जैन परम्परा के सन्त कवि थे। लेकिन उनके जन्म, माता-पिता, अध्ययन एवं दीक्षा के बारे में कोई परिचय उपलब्ध नहीं होता। वैसे जैन सन्त का जीवन अपनाने के पश्चात् एक श्रावक को दूसरा ही जन्म मिलता है। वह अपने प्रथम जीवन को पूर्णतः भुला देता है तथा माता-पिता, सम्बन्धी आदि उसके पराये बन जाते हैं। यही नही उसका नाम भी परिवर्तित हो जाता है। उसका उद्देश्य केवल आत्मचिंतन मात्र रह जाता है। साहित्य संरचना भी गौण हो जाती है। यही कारण है कि जैनाचार्यों, भट्टारकों एव अन्य सन्त कवियों का हमें विशेष परिचय नहीं मिलता। त्रिभुवनकीर्ति भी ऐसे ही सन्त कवि हैं जिनकी गृहस्थावस्था के सम्बन्ध में हमें अभीं तक कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हुई है।

त्रिभुवनकीर्ति भट्टारकीय परम्परा के रामसेनान्वय भट्टारक उदयसेन के शिष्य थे। इसी परम्परा में भट्टारक सोमकीर्ति, भट्टारक विजयसेन, भट्टारक कमलकीर्ति एवं भट्टारक यशःकीर्ति जैसे भट्टारक हुए थे जिनका उल्लेख स्वय त्रिभुवनकीर्ति ने अपनी कृतियों में किया है।[1]

---

१. नंदियड गच्छ मझार, रायसेनान्वयि हुवा।
श्रीसोमकीर्ति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हूवउ। जीवंधर रास।

भट्टारक सोमकीर्ति अच्छे विद्वान एवं साहित्य निर्माता थे। संस्कृत एवं हिन्दी देनों में ही उनकी कृतियां उपलब्ध होती है।[१] स्वयं त्रिभुवनकीर्ति ने उन्हें "ज्ञान विज्ञानह, आगला शास्त्र तणा भण्डार" के विशेषण से अलंकृत किया है।[२] सोमकीर्ति के शिष्य थे विजयसेन जो पूर्णतः आध्यात्मिक संत थे तथा आत्म साधना में पंडित थे क्षमाशील एवं गुणों के राशि थे यही कारण है कि उनका यशः चारों ओर फैल गया था।[3] विजयसेन का अन्यत्र वीरसेन भी नाम मिलता है। विजयसेन के पश्चात् यशःकीर्ति हुए और उनके पश्चात् उदयसेन।[४] उदयसेन त्रिभुवनकीर्ति के गुरु थे। त्रिभुवनकीर्ति ने अपने गुरु को चारित्र-भार-धुरंधर, वादीर भंजन एवं प्राणी जन मन मोहक" आदि विशेषणों से सम्बोधित किया है। उदयसेन अपने समय के प्रख्यात भट्टारक थे। वे शास्त्रार्थ करते और अपने मधुर वाणी से सबका अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। यही कारण है कि स्वय कवि ने भी स्वतः ही इनके चरणों में रहकर अपने जीवन निर्माण की इच्छा व्यक्त की थी।

त्रिभुवनकीर्ति ने उदयसेन का शिष्यत्व कब स्वीकार किया इसके बारे में कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन उन्होंने अपने गुरु के समीप ही विद्याध्ययन किया होगा तथा शास्त्रों का मर्म समझा होगा। ब्रह्म कृष्णदास ने अपने मुनिसुव्रत पुराण में उदयसेन एव त्रिभुवनकीर्ति का निम्न पद्य में परिचय दिया है—

कमलपतिरिवाभूत्पदुदयार्द्यतसेन।
उदित विशदपट्टे सूर्यशैलेन तुल्ये।
त्रिभुवनपतिनाथांह्रिदयासक्तचेता।
स्त्रिभुवनकीर्तिर्नाम तत्पट्टधारी ॥९२॥

---

१. विस्तृत परिचय के लिए देखिये राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ११ से ४०।

२. ग्रन्थ प्रशस्ति-जम्बू स्वामी रास।

३. तसु पट्टि प्रति रूयडा विजयसेन जयवंत।
तप जप ध्यानं मंडिया, क्षमावंत, गुणवंत॥
मही मंडल महिमा घणा, महीयलि मोटु नाम॥ जम्बूस्वामी रास

४. एक पट्टावली में विजयसेन को यशः कीर्ति बतलाया गया है।

उक्त परिचय से ज्ञात होता है कि त्रिभुवनकीर्ति उदयसेन के पश्चात् भट्टारक गादी पर सुशोभित हुए थे।

त्रिभुवनकीर्ति की अभी तक दो कृतियां उपलब्ध हुई हैं। ये दोनों ही हिन्दी की रचनायें हैं। त्रिभुवनकीर्ति के नाम से एक और संस्कृत रचना श्रुतस्कंध पूजा दि० जैन मन्दिर सम्भवनाथ उदयपुर के ग्रन्थ भण्डार में संग्रहीत है। पूजा बहुत छोटी है लेकिन वह इन्हीं त्रिभुवनकीर्ति की है अथवा अन्य किसी त्रिभुवनकीर्ति की इसके बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती।

त्रिभुवनकीर्ति भट्टारक थे। साहित्य एवं संस्कृति के प्रचार प्रसार के लिए वे बराबर विहार करते रहते थे। गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं देहली आदि प्रदेश इनके विहार के मुख्य प्रदेश थे। यही कारण है इनके काव्यों की भाषा पूर्णतः राजस्थानी अथवा गुजराती न होकर गुजराती प्रभावित राजस्थानी है।

जीवन्धर रास

त्रिभुवनकीर्ति की प्रथम रचना "जीवंधर रास" है। यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें 'जीवंधर' के जीवन को प्रस्तुत किया गया है। जीवंधर का जीवन जैन कवियों को बहुत प्रिय रहा है। अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी के कितने ही कवियों ने उसके जीवन को अपने अपने काव्य में छन्दोबद्ध किया है। ऐसे कृतियों में महाकवि हरिचन्द्र का जीवंधरचम्पू, भट्टारक शुभचन्द्र का जीवंधर चरित्र, महाकवि रइधू का जीवंधर चरिउ (अपभ्रंश) ब्र० जिनदास का जीवंधर रास, भट्टारक यशःकीर्ति का जीवंधर प्रबन्ध, दौलतराम कासलीवाल का जीवंधर चरित्र (सभी हिन्दी) के नाम उल्लेखनीय है। त्रिभुवनकीर्ति का जीवंधर रास भी उसी 'श्रृंखला' में निबद्ध एक प्रबन्ध काव्य है।

जीवन्धर रास संवत १६०६ की रचना है।[1] रचना स्थान कल्पवल्ली नगर

---

१. श्री कल्पवल्लीनगरे गरिष्ठे, श्रीब्रह्मचारीश्वर एव कृष्णः।
कंठावलंब्यूर्जितपूरमल्ल. प्रवर्द्धमानो हितमाततानि ॥ ६८ ॥
मुनिसुव्रत पुराण

है जो १६ वीं १७ वी शताब्दी में साहित्य निर्माण का प्रमुख केन्द्र था । ब्र० कृष्णदास ने भी कल्पवल्ली नगर में ही मुनिसुव्रत पुराण की रचना की थी ।[२]

जीवंधर रास प्रबन्ध काव्य है । जीवंधर उसका नायक है । जीवंधर राजपुत्र है लेकिन उसका जन्म श्मशान में होता है । उसका लालन पालन उसकी स्वयं माता द्वारा न होकर दूसरी महिला द्वारा होता है । युवा होने पर जीवधर पराक्रम के अनेक कार्य करता है । अन्त मैं अपना राज्य प्राप्त करने मे भी सफल होता है । काफी समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् वह वैराग्य धारण करता है और अन्त में कैवल्य प्राप्त करके निर्वाण का पथिक बन जाता है । पूरी कथा निम्न प्रकार है—

कथा भाग

एक बार जब महावीर राजगृह आये तो आये तो राजा श्रेणिक अपने प्रजाजनों के साथ उनके दर्शनार्थ गये । मार्ग मे जब राजा श्रेणिक ने एक गुफा में समाधिस्थ मुनि के सम्बन्ध मे जानना चाहा तो भगवान महावीर ने उस मुनि को जीवधर कहा तथा उसके जीवन का निम्न प्रकार वर्णन किया—

जम्बूद्वीप मे भरत क्षेत्र के हेमागढ़ देश की राजधानी थी राजपुरी नगरी । उसके राजा का नाम सत्यधर एवं राणी का नाम विजया था । उनके दो मन्त्री थे । एक काष्ठांगार एव दूसरा धर्मदत्त । एक बार वहाँ एक अवधिज्ञानी मुनि का आगमन हुआ । वे सब उनकी वदना के लिए गये मुनि ने सभी को नियम दिये । एक भारवाह ने भी मुनि से व्रत देने की याचना की । मुनि श्री उसे पूर्णिमा के दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालन का नियम दिया । उसी नगर में दो वैश्याएँ थी एक पद्मावती एवं दूसरी देवदत्ता थी । एक दिन जब वह लकडी का भारा लेकर जा रहा था तो पद्मावती उसे देखकर क्रोधित हो गयी और उस पर थूंके दिया । तथा कहा कि उसके शरीर का मोल पांच दीनार है । भारवाह गरीब था लेकिन वेश्या के कहने को सहन नहीं कर सका । उसने पाच दीनारो का सग्रह किया और वेश्या के पास चला गया । उस दिन पूर्णिमा थी इसलिये उसका लिया हुआ व्रत भंग हो गया ।

---

२. कल्पवल्ली मझार संवत सोलछहोत्तरि ।
रास रच्यउ मनोहार रिद्ध हयो संघहघरि ।।

एक बार रानी ने पांच स्वप्न देखे। प्रातः काल होने पर राजा ने उन स्वप्नों का फल बतलाया और कहा कि रानी के पुत्र होगा किन्तु उसका पिता यदि उसका मुख देख ले तो तत्काल उसकी मृत्यु हो जावेगी। इससे रानी एवं राजा दोनों को ही गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हुई। गर्भ बढ़ने लगा और रानी को आकाश भ्रमण की इच्छा हुई। राजा ने मयूर यंत्र की रचना करके रानी की इच्छा पूरी की। राजा रानी के प्रेम में ही रहने लगा और समस्त राज्य काष्टांगार को सौंप दिया। लेकिन काष्टांगार को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। उसने धर्मदत्त मन्त्री को बन्दीगृह में डाल दिया और वह सेना लेकर राजा के घात के लिए आगे बढ़ा। राजा को जब मन्त्री की कुटिलता का भान हुआ तो उसने गर्भवती रानी को मयूर यंत्र मे बिठाकर आकाश में उड़ा दिया और स्वय वैराग्य धारण कर ध्यान करने लगा लिया लेकिन काष्ठांगार को यह भी सहन नही हुआ। शुभ ध्यान में लवलीन राजा की हत्या कर दी गयी। उधर रानी का विमान श्मशान मे उतर गया और वहीं उसके पुत्र उत्पन्न हो गया। उसी दिन नगर की सेठानी सुनन्दा के मृत पुत्र उत्पन्न हुआ। जब उसे दाह संस्कार के लिए श्मशान में लाया गया तो रानी ने अपना पुत्र उसे दे दिया। सेठ गन्धोत्कट ने पुत्र प्राप्ति पर खूब उत्सव मनाया और उसका नाम जीवंधर रखा। रानी सिद्धार्थ देवी की सहायता से अपने भाई के पास चली गई।

मेघपुर में खेचरो का निवास था। वहां सभी जिनधर्म का पालन करते थे। वहाँ का राजा लोकपाल था। अभ्र पटल को देखने के पश्चात् राजा को वैराग्य हो गया और उसने मुनि दीक्षा धारण कर ली। एक बार जब मुनि आहार को गये तो दही एव चूर्ण का आहार लेने से उन्हे भस्म व्याधि हो गयी। व्याधि के प्रभाव से वे आहार के लिए निरन्तर घूमने लगे। एक बार वे गंधोत्कट सेठ के यहाँ गये। उनकी क्षुधा बहुत सा कच्चा पक्का आहार करने पर भी शान्त नहीं हुई। लेकिन जीवन्धर के हाथ से आहार लेते ही उसकी व्याधि दूर हो गयी। इससे वह मुनि जीवन्धर से बड़ा प्रभावित हुआ और वहीं ठहर कर उसे छंद पुराण, नाटक, ज्योतिष आयुर्वेद आदि सभी विद्याएँ सिखला दी। मुनि ने जीवन्धर को उसके माता-पिता के सम्बन्ध मे वास्तविकता से परिचय कराया। अन्त मे वे मुनि वहाँ से अपने गुरु के पास प्रायश्चित लेने के लिये चल दिये।

इसके पश्चात् जीवन्धर के पराक्रम की कहानी प्रारम्भ होती है। सर्व प्रथम उसने भीलों का उत्पात शान्त किया और उनसे गायों को छुड़ा कर राजा को वापिस

लौटा दी। इससे वह गोप बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने अपनी लड़की के साथ जीवन्धर का विवाह कर दिया। इसके पश्चात् जीवन्धर ने सुघोष वीणा बजा कर गंधर्वदत्ता से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने मरते हुए स्वान को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे मरने के बाद वह यक्ष हुआ। उन्मत्त हाथी को वश में करने के पश्चात् उसे सुरमंजरी जैसी सुन्दर कन्या प्राप्त हुई। सहस्त्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलकर राजकन्या से विवाह किया। पद्मावती का विष उतार कर उसका वरण किया। एवं आधा राज्य भी प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसने और भी कितनी ही सुन्दर कन्याओं से विवाह किया और अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। अपने पिता के शत्रु काष्ठांगार को मार दिया। अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर एक दीर्घ समय तक राज्य का सुख भोगा। अन्त मे वैराग्य धारण करके निर्वाण प्राप्त किया।

काव्य कला

जीवन्धर चरित एक प्रबन्ध काव्य है। इसका नायक जीवन्धर है लेकिन प्रतिनायक एक नही कई हैं जो आते है और चले जाते हैं। प्रस्तुत रास सर्गों में विभक्त नहीं है किन्तु जब कथा को मोड देना पडता है तो "एह कथा इहां रही" कह दिया जाता है। इससे पाठकों का थोड़ा ध्यान बट जाता है।

रास के सभी वर्णन अच्छे हैं। कवि ने अपने काव्य को सरस बनाने के लिये कभी प्रकृति का, कभी मानव का, और कभी वन्य प्रदेशों का सहारा लिया है। जीवन्धर की माता विजया का जब कवि सौन्दर्य का वर्णन करने लगता है तो वह पूर्ण श्रृंगारी कवि बन जाता है—

मस्तक वेणी सोभतुए, जाणे सखी भार।
सिथइ सिंदूर पूरतीए, कंठइ रूडइ हार।
काने कुंडल झलकतांए, किड़ि कटि मेखल।
चरणे नेउर पिहिरतीए, दीसंता निर्म्मल।
रंभास्तंभ सरी खडीए, बिन्यइ छि जंघ।
हंसगति चालइ सदा ए, मध्यइ जसी संघ ॥४४॥

तृष्णा का कभी अन्त नहीं। समुद्र का जल सूख सकता है लेकिन तृष्णा का अन्त फिर भी नहीं हो सकता। इसी को कवि ने कितने ही उदाहरण देकर समझाया है—

समुद्र जल मबइ माबइ, तिरसा तृपा बिंदि किम भाइ बिरस ।
विषया भक्त प्रामइ नर मास, प्रनुक्रमि काया विनास ।।१५।।

मोटी काया हस्ती तणी, मन दव सूणाइ रे वणी ।
खाई पड्यु सहि बहु दुःख, तेहनि पामइ लवलेस नु सुख ।।१६।।
जिह्वा लोलप मछ दुख सही, कांटि बीध्यु लोही वहि ।
प्ररू पछ तडफ उंकु मरइ, तेह जीव काया नवि घटइ ।।१७।।

कवि के समय में जिन विद्याओं का पठन-पाठन होता था उन्ही का उसने जीवंधर की शिक्षा के प्रसंग में वर्णन किया है जो निम्न प्रकार है—

कुण कुण शास्त्र भणावीयाए, वृत्त नइ छंद पुराण ।
नादक योतिक वैदक ए, भरइ नइ तर्क्क प्रमाण ।
मत्र विद्या नर लक्षणाए, राजनीति प्रलंकार ।
प्रश्वपरीक्षा गज रत्नए सा भण्यु छि लिप्पि प्रठार ।।३१ ।

वेद विद्या भणावीउए, प्राव्यु तातनि पास
विनोद करइ गुरु शिष्य सु, भोगवइ भोग निवास ।।३२।।

बसत ऋतु प्राती है तो चारों प्रोर फूल खिल जाते हैं भौरें गुजारते हैं तथा शीतल मन्द सुगन्ध हवा चलने लगती है । इसी वर्णन को कवि के शब्दों में देखिये—

सखी एकदा मास बसत, प्राव्यु मननी प्रति रलीए ।
मजरी प्रांबे रसाल, केसूयडे राती कलीए ।।१।।
सखी केतकी परिमल सार, मोगरा केला तिहां प्रति घणीए ।
सखी दडिम मंडप दाख, रभास्तभ राइण घणीए ।।२।।

सखी कमल कमल प्रपरांग, प्रास्वादन मधुकर करइए ।
सखी कोकिला सुस्वर नाद, हस हमी शब्द धरइए ।।३।।

सखी मलयाचल संभूत, शीतल पवन वाइ घणाए ।
सुख करइं कामीय काय, स्पृस तु रात्रि दिवस सुणउए ।।४।।

जीवंधर को देख कर गुणमाला उसके विरह में खान-पान स्नान आदि सभी भूल जाती है—

मंदिर आवी ताम, स्नान मज्जन नवि धरइए ।
रजनी न धरइ नीद्र, दिवस भोज नवि करइए ॥३७॥
न धरइ सार शृंगार, आभूषण ते नवि धरिए ।
नवि पामइ काय निवृत्ति, शीतोपचार घणा करइए ॥३८॥

इस तरह रास के सभी वर्णन सुन्दर हैं । तथापि यह एक कथात्मक काव्य है लेकिन शैली में आकर्षण है तथा वह प्रभावयुक्त है । छन्दों के परिवर्तन से रास के अध्ययन में रोचकता आती है । यह एक गेय काव्य है जिसे मंच पर गाया जा सकता है । कवि का भी रास काव्य लिखने का संभवतः यही उद्देश्य रहा है ।

रास में दूहा, चउपई एवं वस्तु बंध छन्द के अतिरिक्त ढाल यशोधरनी, ढाल आंणदानी, ढाल सुंदरीनी, ढाल साहेलडीनी, राग धन्यासी, राग राजवल्लभ, ढाल सखीनी, ढाल सहीनी—राग गुडी, ढाल नोरसूयानी, ढाल भामाहूलीनी, ढाल वणजा-रानी का उपयोग हुआ है ।

इस काव्य में स्वर्ण मुद्रा के लिये 'दीनार' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[1] इसी तरह अन्य शब्दों का प्रयोग निम्न प्रकार हुआ है—

आया—आव्यु[2] (२३।१३२)
आवी (२५)
पाया—प्रामी[3] (३६)
प्रामीय
[4]तुम्हारी—तुम्ह

---

१. पंच दीनार दीधा मन रंग, भोग इच्छा तणइ मन रंग ।
अस्तंगत आम्यु तव सूर, कामीनि सुख करवा पूर ॥१०॥
२. पुरुष न आव्यु सामार
३. राय तणुं प्रामी सनमान ।३१। प्रामीय शिष्या अति मनोहार
४. दुर्बल दीसइ तुम्ह काय ॥२॥१३३

[1]विनय किया—वीनव्यु

[2]उस, उसका, उसकी—तिणी, तेह, तेहनी

शब्दों के आगे 'नी' 'नु' लगा कर उनका प्रयोग किया गया है। जैसे कर्मनि, पुत्रनुं, मायनु, पुत्रीनु इत्यादि।

इस प्रकार जीवंधर रास १७वीं शताब्दि के प्रथम पाद में रचे जाने वाले काव्यों का प्रतिनिधि काव्य है जिसमें तत्कालीन शैली के सभी रूप देखे जा सकते हैं। राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी इन तीनों का मिश्रित रूप कहीं देखना हो तो हम त्रिभुवन कीर्ति के रास काव्यों में देख सकते हैं।

रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग

> आदि जिणवर आदि जिणवर प्रथम जे नाम
> जुग आदि जे अवतर्या, जुग आदि अणसरीय दीक्षा।
>
> जुग आदि जे पामीया केवल ज्ञान तणीय, शिक्षा युग आदि जिणि प्रगटीयु।
> धर्माधर्म विचार तास चरण प्रणमी, रचउ रास जीवंधर सार।
>
> अजित आदि तीर्थंकरा, जे अछि त्रिणिनि बीस।
> कर्म्म कठोर सवे खपी, हूया ते मुगतिना ईश ॥२॥
>
> केवल वाणी सरसती, भगवती करू पसाउ।
> निर्म्मल मति मुझ आपयो, प्रणमु तुम्ह वी पाउ ॥३॥
>
> सिद्ध आचार्य जेहवा, उपाध्याय वली साधु ॥४॥
> निज निज गुणे अलंकर्या, ते मुझ देज्यो साधु।
> श्री उदयसेन सूरी पाए नमी, रचउ कवित विशाल।
> जीवंधर मुनि स्वामिनुं, सौख्य तणु गुणमाल ॥५॥

---

१. सत्यंधर आई वीनव्यु।

२. तिणी नगरी वाणिज्य वसइ, गंधोत्कट तेह नाम।
सुनंदा स्त्री तेहनी, मूंक पुत्र जण ताम ॥१७॥

अन्तिम भाग

सात तत्व पुण्य पाप, काल निर्णय सिहां करइ ।
त्रिसठि पुरषाक्षाम, पंचास्तिकाय उच्चरइ ।।४२।।

श्रावक नियती धर्म्म, भेदाभेद सहूइ कही ।
विहारी तणी इच्छाइ, देस विदेस जाइ सही ।।४३।।

द्रोण मगध तिलंग, मालव द्रावड गुर्ज्जर ।
पंचाल माहोभोट, कर्णाट कांबोज कस्मीर ।।४४।।

तिहां रही अक्षर पंच, ते प्रकृति क्षय करी ।
प्राम्या सिद्ध नउ ठाम, अष्ट गुणा भला बरी ।।४५।।

तिहां नहीं रोग वियोग, रूप वर्ण गंध नही ।
जिहां नही जामण मर्ण, नारीय पुत्र जिहां नही ।।४६।।

जिहां नहीं रोग वियोग, रागद्वेष जिहां नहीं ।
जीवंधर मुनि राय, ते स्थानिक प्राम्यु सही ।।४७।।

जे मुनिसइ पंच, तप्य करी स्वर्गि गया ।
तप करी सवे नारि, स्त्री लिंग छेदी देव हुआ ।।४८।।

महीयलि थाई नर, चारित्र नइं वली प्रामसइ ।
करीय कर्म्म नउ क्षय, तेस विमुक्ति जाय सइ ।।४९।।

नदीग्रड गछ मझार, रामसेनान्वयि हवा ।
श्री सोमकीरति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हवउ ।।५०।।

तेह पाटि प्रसिद्ध, चरित्र भार धुरिधरो ।
वादीय भजन वीर, श्री उदयसेन सूरीश्वरो ।।५१।।

प्रणमीय ते गुरू पाय, त्रिभुवन कीरति इम वीनवइ ।
देयो तम्ह गुणग्राम, अनेरी काई वांछा नहीं ।।५२।।

कल्पवल्ली मझार संवत सोलछहोत्तरी ।
रास रचउ मनोहारि, रिद्धि हुयो संघह घरि ॥५३॥

दूहा

जीवंधर मुनि तप करी, पहुतु शिवपद ठाम ।
त्रिभुवन कीरति इम वीनवइ, देयो तुम्ह गुणग्राम ॥५४॥

इति जीवंधर रास समाप्त:

२. जम्बूस्वामी रास

कविवर त्रिभुवनकीर्ति की यह दूसरी काव्य कृति है जो राजस्थान के शास्त्र भण्डारो में उपलब्ध हुई है । प्रस्तुत कृति भी उसी गुटके में लिपि बद्ध है जिसमें कवि की प्रथम कृति जीवंधर रास संग्रहीत है । जम्बूस्वामी रास उसकी संवत् १६२५ की रचना है अर्थात् प्रथम कृति के १९ वर्ष पश्चात् छन्दोबद्ध की हुई है । १९ वर्ष की अवधि मे त्रिभुवनकीर्ति ने साहित्य जगत को और कौन-कौन सी कृतियां भेंट की इस विषय में विशेष खोज की आवश्यकता है । क्योंकि कोई भी कवि इतने लम्बे समय तक चुपचाप नहीं बैठ सकता । लेकिन लेखक द्वारा राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों के जो विस्तृत खोज की है उसमें भी अभी तक कवि की दो कृतियां ही मिल सकी है ।

जम्बूस्वामी रास एक प्रबन्ध काव्य है जिसमे जैन धर्म के अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का चरित्र निबद्ध है । पूरा काव्य रास शैली में लिखा हुआ है तथा भाषा एवं शैली की दृष्टि से जीवंधर रास से जम्बूस्वामी रास अधिक निखरा हुआ है । प्रस्तुत रास दूहा, चउपई एवं विभिन्न रागों मे निबद्ध है । कथा का विभाजन सर्गों मे नही हुआ है किन्तु उसमे भी उसी प्राचीन शैली को अपनाया गया है ।

जम्बू स्वामी के वर्तमान जीवन का वर्णन करने के पूर्व उनके पूर्व भवों का वर्णन किया गया है । कवि यदि पूर्व भवों के वर्णन को छोड भी जाता तो भी काव्य की गरिमा मे कोई विशेष अन्तर नहीं आता । लेकिन क्योंकि प्राय· प्रत्येक जैन काव्य में नायक के वर्तमान के साथ-साथ पूर्व भवों के वर्णन करने की परम्परा रही है इसलिये कवि ने उस परम्परा से अपने आपको अलग नहीं कर सका है ।

कवि ने काव्य का प्रारम्भ भगवान महावीर की वन्दना से किया गया है। सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्वसाधु परमेष्ठी का स्मरण करने के पश्चात् अपने गुरू उदयसेन को नमस्कार किया है।[1] जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र और उसमे मगध देश तथा उसकी राजधानी राजगृह थी। राजा श्रेणिक राजगृही का सम्राट था। चेलना उसकी पटरानी थी। चेलना लावण्यवती एवं रूप की खान थी कवि ने उसका वर्णन करते हुये लिखा है—

ते घरि राणी चेलना कही, सती सरोमणि जाणु सही।
समकित भूखउ तास सरीर, धर्म ध्यान धरि मनधीर ॥१६॥

हंसगति चालि चमकती, रूपि रभा जाणउ सती।
मस्तक वेणी सोहि सार, कंठ सोहिए काडल हार ॥२०॥

काने कुंडल रतने जड्यां, चरणे नेउर सोवन घड्या।
मधुर वयण बोलि सुविचार, अग अनोपम दीसि सार ॥२१॥

एक दिन विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर का समवसरण आया। राजा श्रेणिक पूरी श्रद्धा के साथ सपरिवार उनके दर्शनार्थ गये। राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से निम्न शब्दों में निवेदन किया—

राइ, जिनवर पूछीया जी, कहु स्वामी कुण एह।
विद्युन्माली देवता जी, जिन जीइ कहु सहू हेत हो स्वामी ॥

भगवान महावीर ने राजा श्रेणिक के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा कि वर्द्धमानपुर मे भवदत्त और भावदेव दो ब्राह्मण विद्वान् थे। नगर मे कुष्ठ रोग फैलने के कारण अनेक लोग मारे गये। एक बार वहां सुधर्मा स्वामी पधारे। उन्होंने तत्वज्ञान एव पुण्य-पाप के बारे मे सबको बतलाया। भवदत्त ने उनसे वैराग्य धारण कर लिया। कुछ समय के पश्चात् भवदत्त ने भवदेव के सम्बन्ध मे विचार कर वह घर

१. श्री उदयसेन सूरी वर नमी, त्रिभुवन कीर्ति कहि सार।
रास कहुं रलीया मणुं, अक्षर रयण भंडार ॥

आया। भवदत्त के उपदेश से भवदेव ने भी वैराग्य धारण कर लिये लेकिन उसका मन अपनी स्त्री की ओर से नहीं हट सका। स्त्री ने मुनि से अपनी व्यथा कही। इस अवसर पर नारी के प्रति कवि ने वे ही विचार प्रकट किये हैं जो अन्य जैन कवियों के हैं।

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार।
दयामणी दीसि सही, रूठी क्रूर अपार ॥१२॥

नारी रूप न राचीय, गुण राचउ सहु कोइ।
जे नर नारी मोहीया, ते नवि जाणि लोय ॥१३॥

भवदत्त ने तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया और फिर वहां से पुण्डरीक नगरी के राजा के यहां सागरचन्द्र नामक राजकुमार हुआ। तथा भवदेव ने वीतशोका नगरी के शिवकुमार राजकुमार के रूप में जन्म लिया। राजा के नाम चक्रधर महापद्म था। भवदेव ने शास्त्रों का ज्ञान अर्जन किया। एक बार संयोगवश उसी नगर में एक अवधिज्ञानी मुनि का आगमन हुआ। सभी लोग उनके दर्शनार्थ गये। शिवकुमार को मुनि को देखते ही पूर्व भव का स्मरण हो गया। इससे उसे वैराग्य हो गया और घोर तपस्या करने के पश्चात् वह मृत्यु के पश्चात् छठे स्वर्ग में विद्युन्माली नामक देव हुआ। सागरचन्द्र को भी घोर तपस्या के पश्चात् तीसरे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। वही विद्युन्माली सात दिन पश्चात् राजगृह नगर के सेठ अर्हद्दास के जम्बूकुमार नाम से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ।

मगध देश राजग्रहि अर्हदास विर सार।
जिनमती कूखि अवतिरि जंबूकुमर अवतार ॥३८॥

जम्बू कुमार की माता का नाम जिनमति था जो अत्यधिक लावन्यवती शीलवती एवं पीनपयोधरा थी। एक रात्रि को जिनमति ने पांच स्वप्न देखे जिनका निम्न प्रकार फल बतलाया गया—

जबू फल देख्यउ तम्हेव नारि, पुत्र हुसि विर जंबूकुमार ॥१०॥
निरधूम अग्नि देख्यउ तम्हे सुणउ क्षय करसि सवे करम महंतणु।
शाल क्षेत्र देख्यु अभिराम, लक्ष्मीपति होसि गुणधाम ॥११॥
जल पूर्यु सर दीठउ सार, पाप तणु करसि परिहार ॥
रत्नाकार देख्यु तिणिवार, जन बोधी भव तरसि पार ॥१२॥

जम्बूकुमार का जन्म आषाढ़ शुक्ला अष्टमी के शुभ दिन हुआ । सारे नगर में उत्सव मनाये गये । बाजे बाजे । मन्दिरों में पूजा की गयी । कवि ने जन्मोत्सव का विस्तृत वर्णन किया है—

नृत्त करि करि नृत्यंगनाए, गीत गाइ रसाल ।
वाजित्र वाजि अति घणांए, ढोल ददामा कंसाल ।।६।।

तिवली तूर मादल घणाएं, भेर वाजि वर चग ।
इणी परिजन महोत्सवाए, श्रेष्ठि घिरहुउ रंग ।।७।।

बचपन में ही जम्बूकुमार ने विविध शास्त्र, एव विद्याए सीखली तथा कला में वह पारंगत हो गया । जंबूकुमार की सुन्दरता देखते ही बनती थी । जो भी कुमारी उसे देखती वही उसकी चाहना करने लगती तथा माता-पिता के भाग्य का सराहना करती कि जिसके यहां ऐसा पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है । उसी नगर में सागरदत्त, धनदत्त, वैश्रवण एवं वणिकदत्त श्रेष्ठि रत्न थे । चारों के ही एक एक कन्या थी जिनके नाम पद्मावती, कनकश्री, विनयश्री एवं लक्ष्मी थी । चारों ही सुन्दरता की खान थी—

च्यार कन्या अछि अति भलीए, रूप सोभागनी खाणि ।
पृथु पीनपयोधरा, बोलि अमृत वाणि ।।३२।।
कटियंत्र अति रूडीए मृग नयणी गुणवत ।

अक्षय तृतीया के दिन जम्बूकुमार का विवाह इन चारों कन्याओं से निश्चित हो गया । बसन्त ऋतु आने पर राजा श्रेणिक, नगर सेठ जम्बूकुमार एवं उनकी होने वाली पत्नियां सभी वन क्रीडा के लिये गये । उस समय राजा श्रेणिक का हाथी बिगड गया और कराल काल बन कर चारों ओर उत्पात करने लगा । हाथी ने अनेक वृक्षों को तोड़ डाला, फूलों को रौंद डाला । उसको देख कर सभी प्राण बचाकर भागने लगे । लेकिन जम्बूकुमार ने उसे सहज ही वश में कर लिया । इससे उसकी वीरता की चारों ओर प्रशंसा होने लगी ।

कुछ समय पश्चात् एक विद्याधर राजा श्रेणिक के पास आया तथा कहने लगा कि भविष्य वाणी के अनुसार केरल देश के राजा की राजकुमारी के आप पति होंगे । लेकिन हंसद्वीप के राजा ने उस राजकुमारी को लेने के लिये उस पर चढ़ाई

कर दी। इस विपत्ति में वह राजा श्रेणिक की सहायता चाहता है। जम्बूकुमार वहीं राज सभा में थे। उन्होंने विद्याधर के प्रस्ताव को स्वीकार करके राजा श्रेणिक की अनुमति मांगी। तथा सैन्य दल के साथ दक्षिण की ओर चल पड़े। जंबूकुमार के विन्ध्याचल पर आये और वहां की शोभा का अवलोकन किया—

सैन्य सहित तिहां आवीउ, विन्ध्याचल उत्तंग।
जीव घणा तिहां देखीया, विस्मय पाम्यु मन चंग ॥१६॥

पिक केकी वाराहनि, हरण रोझ गोमाउ।
हंस व्याघ्र गज सांबरा, मृग बष महिष न काय ॥१७॥

भिल्ली भिल्लज देखीया, ते आयुध सहित अपार।
सैन्य हाथ देखी करी, नाठा ते तिणी वार ॥१८॥

आगे चल कर उन्होंने जिन मन्दिरों की वन्दना की। अन्त में जम्बूकुमार सेना के साथ केरल पहुंचे। नगर से दूर ही उन्होने पड़ाव किया और प्रतिद्वन्दी रत्नचूल विद्याधर को समझाने के लिये अपना दूत भेजा। दूत ने राजा को विभिन्न प्रकार से समझाया लेकिन समझ नहीं सका। दोनों की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। कवि ने रास काव्य मे युद्ध का अच्छा वर्णन किया है। युद्ध में सभी तरह के बाणों का प्रयोग हुआ, हाथी, घोडे, रथ एव पैदल सभी सेनायें एक दूसरे से खूब लड़ी।

तिहां कोध करीनि ऊठीया, मुकि बाण अपार।
तिहां मेघ तणी धारा परि, बरसि तिणी वार।
तिहां सिंध तणी परि गाजतां, नेह लइ नहीं ठाम।
तिहां छत्रीस आयुध लेईनि, राइ करि संग्राम।

अन्त मे युद्ध में जम्बूकुमार की विजय हुई। चारों ओर उसकी जय जय होने लगी। नगर प्रवेश पर जम्बूकुमार का जोरदार स्वागत हुआ।

राइं नगर सणगारउ, नगर कीउ प्रवेस।
नगर स्त्री जोइ घणु, करती नव नवा वेस। १२॥

काम रूप देखी भलु, विस्मय पामी नार ।
धन जननी धन ए पिता, जे घर एह कुमार ॥१३॥

इसके पश्चात् रत्नचूल विद्याधर ने जम्बूकुमार को एवं राजा श्रेणिक को अपने यहां आमन्त्रित किया। राजा श्रेणिक ने जबूकुमार की खूब प्रशसा की तथा उसका सम्मान किया। खेचर पुत्री के साथ विवाह होने पर श्रेणिक एव जम्बूकुमार दोनों ही वहां से लौट गये और विध्यांचल पार करके स्वदेश आ गये। मार्ग मे उन्हें सुधर्माचार्य के दर्शन हुये। श्रेणिक एवं जम्बूकुमार दोनों ही उनके चरणों में बैठ गये। तत्वोपदेश सुना और अन्त में जम्बूकुमार ने अपना भव पूछा। सुधर्म्माचार्य ने उसके पूर्व भव का पूरा चित्र उसके सामने रख दिया। उससे जम्बूकुमार को वैराग्य हो गया लेकिन सुधर्माचार्य ने घर पर जाकर आज्ञा लेने की बात कही।

जम्बूकुमार ने माता-पिता के सामने जब वैराग्य लेने का प्रस्ताव रखा तो वे दोनों ही मूच्छित हो गये।[1] जम्बूकुमार को बहुत समझाया गया। स्वर्ग सुख के समान घर को छोड़ने के विचार का परित्याग करने को कहा। लेकिन जम्बूकुमार ने किसी की नही सुनी। चार कन्याओं को जम्बूकुमार के निश्चय की सूचना दी गयी तो वे भी विलाप करने लगी। अन्त में यह तय हुआ कि जम्बूकुमार चारों कन्याओं के साथ विवाह करेगा तथा एक-एक दिन मे घर मे रह कर फिर दीक्षा ग्रहण करेगा।[2]

जम्बूकुमार के विवाह की जोरदार तैयारी की गयी। बजे बजे। गीत गाये गये। बन्दी जनो ने प्रशसा गीत गाये। जम्बूकुमार चचल घोड़े पर सवार होकर

---

१ वचन सुणी मुर्छागति हुई, नांखी वाय ते बिठी थई।
रूदन करि दुख आणि घणउ, पुत्र प्रसमि माता सुणउ॥

२. एक रात्रि एक दिवस परणानि वली एह।
ब्रह्म समीपि तु रहितु, नवि छांडि गेह ॥१७॥

वचन सुणी कन्या तणां, कन्या नावनि तात।
अर्हदास घिर आवीया, कुमर प्रति कहि बात ॥१८॥

एक दिवस परणी करी, घिर रहु एक दिन।
पछि दीक्षा लेय जो, जु तुह्य हुइ मन। १९॥

तोरण के लिये गये। विवाह में विविध प्रकार के पकवान बनाये गये। विवाह सम्पन्न हुआ और जम्बूकुमार चारों पत्नियों के साथ अपने घर चला। रात्रि आयी। नव विवाहित पत्नियों के हाव-भाव से जम्बूकुमार का मन लुभाना चाहा लेकिन वे किंचित भी सफल नहीं हो सकी। जम्बूकुमार ने एक-एक पत्नी को समझाया। प्रत्येक स्त्री ने कथाएँ कही और गृहस्थी का सुख भोगने के पश्चात् वैराग्य लेने की बात कही लेकिन जम्बूकुमार ने सबका प्रतिवाद किया और वैराग्य लेने की बात को ही उत्तम स्वीकार किया।

उसी रात्रि को जम्बूकुमार के घर विद्युत चोर चोरी करने के विचार से आया। नगर कोटवाल एवं दण्डनायक के भय से वह जम्बूकुमार के पलंग के नीचे जाकर लेट गया। एक ओर जम्बूकुमार जब अपनी नव-विवाहित पत्नियों को समझा रहा था तो उस चोर ने भी उनके उत्तर प्रत्युत्तर को सुनने में मस्त हो गया। विद्युत चोर भी जम्बूकुमार से अत्यधिक प्रभावित हो गया और उसके भी जगत् को निस्सार जान कर वैराग्य धारण करने की इच्छा हो गयी।

प्रातःकाल होते ही जम्बूकुमार को नवीन वस्त्राभूषण पहिनाये गये। पालकी मे बैठ कर वह दीक्षा लेने चल दिया। नगर मे हजारों नर-नारी जम्बूकुमार के दर्शनार्थ उपस्थित हुये और उसकी जय जयकार करने लगे। उसकी माता जिनमती आकर रोने लगी। वह मूर्च्छित हो गयी। अश्रुधारा बहने लगी—

पुत्र आगिल माता रही, करि रूदन अपार।
बार बार दुख धरि, करि मोह अपार ॥

— — —

जल विण किम रहि माछली, तिम तुझ विण पुत्र।
मुझ मेहली बीसासीनि, कांइ जांउ वन सुत ॥

लेकिन जम्बूकुमार अपने निश्चय पर दृढ था। वह माता को कहने लगा—

पुत्र कहि माता सुणु, ए संसार असार।
दिक्षा लेवा मुझ देउ, कांई करू अंतराय ॥११॥

अन्त में माता-पिता, सास-श्वसुर सब से आज्ञा लेकर जम्बूकुमार सुधर्मास्वामी के चरणों में आ पहुँचा तथा उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। जम्बूकुमार निर्ग्रन्थ बन गये। उनके साथ विद्युत्प्रभ एवं उसके साथी, अर्हदास एव उसकी माता जिनमती, पद्मश्री आदि उसकी चारी पत्नियों ने भी जिन दीक्षा धारण करली।

कुछ वर्षों के पश्चात् जम्बू उसी नगर में आये। मुनि जम्बूस्वामी के दर्शनार्थ हजारों नर नारी एकत्रित हो गये। सेठ जिनदास के यहा मुनिश्री का आहार हुआ। आहार के प्रभाव से रत्नो की वर्षा हुई। कुछ समय पश्चात् सुधर्मास्वामी को निर्वाण प्राप्ति हुई और उसी दिन जम्बूस्वामी को कैवल्य हो गया। इन्द्र ने गन्धकुटी की रचना की। जम्बूस्वामी ने सभी को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र को जीवन को उतारने, बारह व्रत, भोजन क्रिया, अष्टमूलगुण, दशधर्म, षट् आवश्यक कार्य आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला। पर्याप्त विहार करने के पश्चात् जम्बूस्वामी एक दिन विपुलाचल पर्वत पर आये और वहीं से निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रादिक देवों ने जम्बूस्वामी का निर्वाण महोत्सव मानाया। जम्बूस्वामी के पिता अर्हदास ने छटठा स्वर्ग प्राप्त किया। उनकी माता जिनमती स्त्री पर्याय को छोड कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में इन्द्र हुई। जम्बूस्वामी की चारों स्त्रियों ने भी इसी प्रकार स्त्री पर्याय का विनाश कर स्वर्ग में जाकर देव हुई। विद्युच्चोर ने घोर तप कर सवार्थसिद्धि प्राप्ति की।

इस प्रकार कवि ने जम्बूस्वामी रास में जम्बूस्वामी का जिस व्यवस्थित शैली में जीवन चरित्र प्रस्तुत किया है, वह अत्यधिक प्रशंसनीय है। कवि का प्रस्तुत काव्य कथा प्रधान है। इसलिए इसमे कही-कही कथा भाग अधिक है तो कहीं-कही उसमे काव्य प्रधान अंश भी देखने को भी मिलता है।

मूल्यांकन

जम्बूस्वामी रास का रचना काल संवत् १६२५ है। उस समय तक बहुत से रास काव्य लिखे जा चुके थे। और रासो काव्य की दृष्टि से वह उसका स्वर्ण युग था। ब्रह्म जिनदास जैसे महाकवियों ने पचासो रास लिख कर रास शैली का निर्माण किया था। ब्रह्म जिनदास के पश्चात् भट्टारक ज्ञानभूषण, विद्याभूषण एवं रायमल्ल ने जिस परम्परा को जन्म दिया था उसी पर त्रिभुवनकीर्ति ने अपने दोनो रास काव्यों की रचना की। इन रास काव्यों में कथा प्रवाह बराबर चलता रहता है। और उसी प्रवाह से कवि कभी कभी काव्यमय वर्णन भी प्रस्तुत करने में सफल होता है—

जम्बूस्वामी रास का नायक है जम्बूकुमार जो राजपुरी के नगर सेठ अर्हदास का पुत्र है। जम्बूकुमार के जीवन में वीररस, शृंगार एवं शान्त रस का समावेश है। वह बचपन में ही महाराजा श्रेणिक के उन्मत हाथी को सहज ही वश में कर लेता है। १५-१६ वर्ष की आयु में वह सेना लेकर केरल के राजा की सहायतार्थ जाता है और उसमें अपनी अपूर्व वीरता से विजय प्राप्त कर लेता है। एक ओर विद्याधरों की सेना दूसरी ओर जम्बूकुमार की सेना। दोनों में घनघोर युद्ध होता है। स्वयं जम्बूकुमार विभिन्न प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करता है। और अन्त में युद्ध में विजय प्राप्त करता है। वह वीर है और किसी भी शत्रु को हराने में समर्थ है। जम्बूकुमार का जीवन शृंगार रस से भी ओत-प्रोत है। बचपन में वह बसन्तोत्सव मनाने के लिए नगर के बाहर उद्यान में जाता है और वहाँ बसन्तोत्सव का आनन्द लेता है। हैं। वैराग्य लेने से पूर्व अपने माता पिता के अनुरोध पर चार कन्याओं से विवाह बंधन में बंधता है। सुहागरात्रि को वे उनसे मिलता है। उनकी पत्नियाँ क्या थी स्वर्ग सुन्दरियां थी जो विभिन्न हाव-भाव से एवं अपने तर्कों से जम्बूकुमार से गृहस्थ जीवन परिपालन आग्रह करतीं है।[1] सभी पत्नियां एक एक करके जम्बूकुमार से विभिन्न दृष्टान्तों से गृहस्थ जीवन की उपयोगिता पर प्रकाश डालती हैं तो जो भविष्य के सुख का त्याग करते हैं वह उनकी दृष्टि में प्रशंसनीय कार्य नहीं है।[2] जम्बूकुमार एक एक पत्नी को अपने अकाट्य प्रमाणों से निरुत्तर कर देता है। इसी बीच उसे विद्युच्चोर मिलता है।[3] वह भी जम्बूकुमार को वैराग्य लेने में सहायक बनता है।

---

१. कामाकुल ते कामिनी करि ते विविध प्रकार।
अंग देखाडि आपणां, वली वली जम्बूकुमार।
गीत गान गाहे करी, कुमर उपाई राग ॥५॥

२. निस्फल फल मूकी करी, जे फल वांछि अन्य।
ते सुख कांइ नवि लही, चितवि आपणि मन ॥३॥१८०॥

३. मनरलीय भमीउ उत्तर दक्षण पूरव पश्चिम ए दिश ए।
करणाट सिंघल द्वीप केरल देश चीणक ए विशि।
कुंतल देस विदर्भ जनपद सह्य पर्वत आमीउ ॥१॥
मलयाच पाटण अहीर कुंकण देश कछि आवीउ।
सोराष्ट देसि किष्कंध नगरी गिरनारि पर्वत आवीउ ॥

जम्बूकुमार यौवन प्राप्ति के पूर्व ही वैराग्य धारण कर लेता है और अन्त में कैवल्य प्राप्त कर निर्वाण का महापथिक बनता है। उसका अधिकांश जीवन शान्त रस से समाविष्ट रहता है

भाषा

रास की भाषा गुजराती प्रभावित राजस्थानी है। क्रिया एवं क्रिया एवं क्रियापदो में दोनों एक साथ चलती हैं। क्रिया पदो मे आव्यु (३३।१६३) चाल्यु (५।१६३) पूछीया (६।१६३) आवीया (१०।१६४) पाम्यु (३६।१७३) आवीउ १६।१६४) जाइ, आवि (१५।१६४) लीधा दीधां (२३।१६५) का प्रयोग काव्य में प्रमुख रूप से हुआ है। वैसे रास की भाषा, अत्यधिक सरल एव सहज रूप से लिखी हुई है। उसमे कृत्रिमता का अभाव है। शब्दों को तोड़ मरोड़ कर प्रयोग करने में कवि की जरा भी रुचि नही है।

छन्द

रास गेय काव्य हैं। सभी छन्द गेय हैं और कवि ने उसे गेय काव्य बनाने का पूरा प्रयास किया है। रास के मुख्य छन्द, दूहा, चुपई, राग, गुडी ढाल साहेलडीनी, ढाल यशोधरनी, ढाल मिथ्यामोनी, ढाल मालतडानी ढाल सखीनी, ढाल सहीनी, राग आसाउरी, राग सन्यासी, राग विराडी, ढाल दमयतीनी, ढाल मोहपराजननी, राग सामेरी, ढाल भवदेवनी, ढाल विवाउलानी, ढाल हिंडोलानी राग देशाख, ढाल आणदानी, ढाल वणजारानी, ढाल दशमी यशोधरनी आदि विविध ढालो, रागो का प्रयोग किया गया हैं। इन रागो से प्रस्तुत रास पूर्णतः गेय काव्य बन गया है।

सामाजिकता

प्रस्तुत रास मे तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं का भी वर्णन उपलब्ध होता है।

नेम निर्वाण जिहां पाम्या, राजीमतीइ तप ग्रही।
तिहां आवी जिणवर पाय प्रणमी, मानव भव सफल ग्रही ।।२।।

अर्बुदाचल मेवाड देस लाड मरहठ पामीउ।
चित्रकोट गुजराति देस मालव सिंधु देशि कामीउ।
काशमीर करहाट देस विराट हु भम्यु अति घणउ।
परिभ्रमण कीधां द्रव्य कारणी पार न पाम्यु तेह तणु ।।३।।

पुत्र जन्मोत्सव पर अनेक प्रकार के प्रायोजनों का सम्पन्न होना, उपाध्याय के यहां विद्यार्थियों का अध्ययन, सभी तरह की विद्याओं, कला एवं अन्य विद्याओं में पारंगता प्राप्त करना, विवाह के अवसर पर बाजों का बजना, स्त्रियों द्वारा मंगल गीत गाना, नृत्य करना, बन्दीजनों द्वारा गुणानुवाद करना, घोड़े पर चढ़कर विवाह के लिये प्रस्थान करना, दहेज में सोना चांदी, रत्नों के आभूषण देना, विवाहोत्सव पर विविध प्रकार के व्यंजन तैयार करना, आदि प्रथाओं के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके तत्कालीन समाज का कुछ कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है। नारी को त्यागने के प्रति जैन काव्यों में उत्साह वर्धक अंश रहता है। नारी के त्यागने पर मुक्ति मिल सकती है। क्योंकि नारी और गृहस्थी का तारतम्य सम्बन्ध है है। यदि किसी के जीवन में नारी है तो वैराग्य का अभाव है। साधु के जीवन में प्रवेश करने के पूर्व नारी का परित्याग नितान्त आवश्यक है इसलिये प्रत्येक जैन कवि ने अपने काव्यों में नारी की प्रशंसा के साथ साथ उसकी निन्दा भी उसे संसार परिभ्रमण का कारण मान कर की है। प्रस्तुत काव्य भी इस से अछूता नहीं बचा और यहां भी त्रिभुवनकीर्ति ने नारी के प्रति निम्न विचार प्रस्तुत किये हैं—

कूड कपटनी कोथली, नारी नीठर जाति।
नसकि देखी रूयडउ, करि पियारी तात ॥१०॥

सीयल रयण नवि तेह गमि, हीयडा सुंदरी मोह।
रस सुंरमि अनेरडी, अन्य चडावि दोह ॥११॥

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार।
दयामणी दीसि, सही रूठी क्रूर अपार ॥१२॥

नारी के सौन्दर्य के प्रति अरुचि पैदा करके मानव में वैराग्य की भावना उत्पन्न करना ही जैन काव्यों का मुख्य उद्देश्य रहा है। काव्यों के रचयिता स्वयं जैनाचार्यों एवं सन्तों ने इसको पहले अपने जीवन में उतारा है और वही बात काव्यों में प्रस्तुत की है। जम्बूस्वामी भी अपनी नवविवाहित ऐसी पत्नियों का त्याग करते हैं जिनके विवाह की मेंहदी भी नहीं सूखी थी तथा विवाह का कंकण हाथों में ही बंधा था। लेकिन यदि निर्वाण पथ का पथिक बनना है तो इन सबका परित्याग करना पड़ेगा। इसी त्याग के कारण एक 'साधु' सम्राट द्वारा पूजित होता है इन्द्रों एवं देवों द्वारा आराध्य होता है।

भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति जैन सन्त थे । त्याग उनके जीवन में उतरा हुआ था । इस प्रकार के सन्त जल में कमलवत रहते है । वे अपने भक्तों को पाप के कार्यों का त्याग करने एवं पुण्य के कार्यों को अपनाने के लिए कहा करते हैं । यद्यपि पाप एवं पुण्य दोनों ही संसार का कारण है लेकिन पुण्य से उत्तम गति, उत्तम देह, ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति सभी तो मिलती है । इसलिए ऐसे कार्यों को करते रहना चाहिए जिससे सतत पुण्य का उपार्जन होता रहे । प्रस्तुत काव्य में कवि पुण्य की प्रशसा भी इसीलिये निम्न शब्दों में करते हैं—

पुण्य घरि घोडां नीलास, पुण्यि घिर लक्ष्मी नु वास ।
पुण्यि घिरि रिघि अविसार, एसहु पुण्य तणु विस्तार ।।२४।।

प्रस्तुत काव्य जवाछ नगर के शान्तिनाथ चैत्यालय मे रचा गया था । इसकी एक मात्र पाडुलिपि जयपुर के दिगम्बर जैन तेरह पथी बडा मन्दिर के शास्त्र भंडार में गुटका संख्या २५५ के पत्र सख्या १६१ से १९० तक सग्रहीत है । प्रस्तुत पांडुलिपि संवत् १६४४ फागुण शुक्ला अष्टमी की लिखी हुई है । लिपि स्थान बडवाल नगर का आदिनाथ जिनालय था । लिपिकर्त्ता थे ब्र० सामल जो काष्ठा सघ मे नन्दीतटगच्छ के विद्यागण के भट्टारक विश्वभूषण के शिष्य थे ।[1]

---

१. संवत् १६ ४४ वर्षे फागुण मासे शुक्ल पक्षे अष्टम्यां शुक्रवासरे बडवाल नगरे आदिनाथ चैत्यालये श्रीमत्काष्ठासंघे नंदीतटगच्छे विद्यागणे भट्टारक विश्वभूषण तत् शिष्य ब्र० सामल लिख्यते ।

जम्बूस्वामी रास

रचनाकाल - संवत १६२५

रचनास्थान—जवाछ नगर

अथ जम्बूस्वामी रास लिख्यते

मंगलाचरण

वीर जिणवर २ नमु ते सार ।
तीर्थंकर चुवीसमु वांछित फल बहु दान दातार ।
बालपणि रिधि परिहरी, धरीय सयम भार मार ।
बद्र पूरीसह अति सही, करी वली तप अघोर ।
हूया ते मुगति नाराजीया कर्महणी कठोर ।।१।।

दूहा—तीर्थंकर त्रेवीस जे पूरवि हूया ते सार ।
तास चरण प्रणामी करी, कवित करू मनोहार ।।२।।

सिद्ध सूरि उवज्झायना, प्रणमी साधु मुनिंद ।
हृदय कमल विकासवा, जाणउ अभिनव चंद ।।३।।

केवल वाणी ऊपडी, मनधरी सारद माय ।
निर्मल मति मुझ आपज्यों, प्रणमु तमचा पाय ।।४।।

श्री उदयसेन सूरी वर नमी, त्रिभुवनकीर्त्ति कहि सार ।
रास कहु रसीयामणु, अक्षर रयण भंडार ।।५।।

भवीयण जन तमे सांभलु, चरित्र जम्बूकुमार ।
सार सौक्ष जम लहु, वांछित फल बहु सार ।।६।।

मगध देश की राजधानी राजगृही का वर्णन

चुपई—सायर द्वीप असंख्या जाण, तेह मध्य जंबू द्वीप बखाण ।
लक्ष योजन कुंडल आकार, त्रिगुणी परिधि अछि विस्तार ।।७।।

मेर सुदर्शन मध्यि कह्यु, सहश्र नवाणु ऊंचु रह्यु ।
सहश्र योजन भू मध्यि जाण, पंच वर्ण रत्न मिव बखाण ।।८।।

मेर थकी दिक्षण विभाग, भरत क्षेत्र वसि तिहा भाग ।
पचसि योजन छवीस, छह कलावर जाणु ईश ।।६।।

मगध देश अछि तिहा चग, सविहू देश माहि मन रंग ।
राइण केल अनिसहकार, दाडिम द्राख तणउ नही पार ।।१०।।

ठाम ठाम दीसि प्रासाद, झालरि ढोल दादामा नाद ।
कनक कलस ध्वजा लहकत, ठाम ठाम मुनिवर महत ।।११।।

मटब धोख करबट छि घणा, पुर पाटण नगर नही मणा ।
ठाम ठाम पर्वत उत्त ग, मुनिवर ध्यान धरि रही अग ।।१२।।

देश मध्य मनोहर ग्राम, नयर राजग्रह उत्तम ठाम ।
गढ़ मढ मदिर पोल पगार, चउहटा हाट तणु नही पार ।।१३।।

धनवत लोग दीसि तिहा घणा, सज्जन लोक तणी नही मणा ।
दुर्ज्जन लोक न दीसि ठाम, चोर चरड नही तिहां ताम ।।१४।।

घरि घरि वाजित्र वाजि चग, घिर घिर नारी धरि मन रग ।
घिर घिर उछव दीसि सार, एह सहू पुण्य तणु विस्तार ।।१५।।

राजा श्रेणिक एवं चेलना रानी का वर्णन

तिणि नयर श्रेणिक छि राय, सवि भूपती जीता भडवाय ।
दान करी सुर वृक्ष समान, याचकनि देह बहुदान ।।१६।।

धर्म तणु राय करि विस्तार, पाप तणु करि परिहार ।
समकित रयण भूक्षउ शरीर, कामदेव सम रूपि धीर ।।१७।।

ज्ञान विज्ञान जाणि सवि भूप, जीवा जीवा जाणि स्वरूप ।।
प्रथम तीर्थंकर अनागत सार, कर्म ताणुउं करि परिहार ।।१८।।

ते घरि राणी चेलना कही, सती सरोमण जाणु सही ।
समकित भूक्षउ तास सरीर, धर्म ध्यान धरि मन धीर ।।१९।।

हंस गति चालि चमकती, रूपि रंभा आणउ सती ।
मस्तक बेणी सोहि सार, कंठ सोहिए फाउल हार ।।२० ।

काने कुंडल रत्ने जडयां, चरणे नेउर सोवन घड्या ।
मधुर वयण बोलि सुविचार, अग अनोपम दीसि सार ।।२१।।

राय तणी राणी छि इसी, सुख विलसि ते हसु उलझमी ।
बेहु सरसु भोगवइ सुख भोग, तेहु सरसु भवि अहि वियोग ।।२२।।

काल गउ नवि जाणि राय, राज्यपालि जिन पूजि पाय ।
चिहु प्रकार देइ बहु दान, मन अहिकार न धरि मान ।।२३।।

पुण्यि धरि घोड़ा नीलास, पुण्यि थिर लक्ष्मी तु वास ।
पुण्य थिर रिधि अविसार, ए सहू पुण्य तणु विस्तार ।।२४।।

भगवान महावीर के समवसरण का आगमन

दूहा—एक दिवस विपुलाचलि, आव्या वीर जिणंद ।
समोसरण धनदि रचउं सीख लेइ तब इंद ।।२५।।

रयण सुवर्णह रूप्पमि, धूली गढ़ ए च्यार
गढ गढ प्रति सोभति पोल अछिच्यार च्यार ।।२६।।

मानस्तंभ प्रति रूयडा सोहि च्यार उत्तंग ।
वायव सिद्ध जा लह लहि, आहवानन करि चंग ।।२७।।

निग्रंथ आदि प्रति भली, बार सभा माहंत ।
चतुर्निकाई देवता, तिहां अछि अनत ।।२८।।

मध्य सिंघासण विसणि, विठा जिनवर भाण ।
सप्त भंगी वाणी हुई, योजन एक प्रमाण ।।२९।।

भामंडल पूठि भलु, दिनकर कोडि समान ।
छत्र त्रय प्रति रूयडा पंच, धरि वली ज्ञान ।।३०।।

एक दिवस वनपालक, आव्यु वनह मझार।
छह रतनां फल देखीनि: मन माहि करि विचार ॥३१॥

श्रेणिक द्वारा भ. महावीर की वंदना

समोसरण जिन वीरनुं, आव्यु विपुलगिरि राय।
हरष धरी मन आपणि, देइ पंचाग पसाय ॥३३॥

सिंघासन थी उतरी, ते दिश नमीउ राय।
आणंद भेर देइ करी, वीरनि वदण जाय ॥३४॥

वस्तु—तिणि अवसर २ राय सुजाण, भाव धरी मन आपणि स्नान करी।
वस्त्रांग पिहरी सामग्री सवि सज करी।
निर्मल भाव मन माहि धरी।
पट हस्ती अंगरीनि चाल्यु सवि परिवार।
अष्ट प्रकार पूजा लेई, करतु जय जय कार ॥१॥ ॥३५॥

राग गुडी ढाल साहेलडीनी

वीर जिणेसर वांदवा जी, चाल्यु श्रेणिक भूप।
भाव धरी मन आपणे जी, जाण तु तत्व स्वरूप।
हो स्वामीय गुरू वंदण जाइ, वीर तणा गुण गाई रे साहेलडी ॥१॥ ॥३६॥

गज बिसी राजा चालीउ जी, साथि सहू परिवार।
वाजित्र वाजि अति घणा जी, संख्या रहित अपार ॥ हो स्वामी ॥२॥ ॥३७॥

मेगल माता अति घणा जी, राजवाहन चकडोल।
वाय वेग तुरंगमाजी, तेह अछि बहू मूल हो स्वामी ॥जग॥३॥३८॥

मस्तक छत्र सोहामणुं जी, चमर ढलि बिहु पास।
दान देइ राजा अति घणुं जी, याचक पूरि आस हो स्वामी ॥जग॥४॥३९॥

मान थरंतु अति धणुं जी, लागुं जिनवर पास।
त्रण प्रदक्षणा देईनिजी, वांदि मन उल्हास हो स्वामी ॥जग॥५॥४०॥

अष्ट प्रकारी पूजा करी जी, स्तवन करिं रे नरिंद ।
जग गुरु जय गुनु राजीउजी, जगमय सेवि जिणंद हो ।।स्वामी।।६।।४१।।

जिन जीइ धर्म प्रकासीउ जी, कहीउ तत्व स्वरूप ।
चिहुगति नां सुख दुख कहां जो, ते सवि सुणीयां भूप हो स्वामी ।।७।।४२।।

देव एक तिहां आवीउ जी, अपछरा च्यार सहेत ।
देखी मन माहि चमकीउ जी, पूछि देव नु हेत हो स्वामी ।।जग।।८।।४३।

राजा श्रेणिक की जिज्ञासा

राइं जिनवर पूछीया जी, कहु स्वामी कुण एह ।
विद्युन्माली देवता जी, जिनजीइ कहु सहू हेत हो स्वामी ।।जय।।९।४४।

आज थकी दिन सातमि जी, चवसि एहज देव ।
मन माहि संदेह आमिउ जी, पूछि श्रेणिक हेव हो स्वामी ।।जग।।१०।४५

चूरवि तह्यो इम कहुं जी, षट मास इह ज आयु ।
कठंमाला म्लांनज हुइ जी, तेह हुइ तुछ आयु हो स्वामी ।।जग।।११।।४६।।

देव आवी पूजा करी जी, बिठउ सवि परिवार ।
एतलि राइ पूछीउ जी, देवनु सहूइ विचार हो स्वामी ।।जग।।१२।।४७।।

सांभल राजा तुझ कहुं जी, देवनु सहूइ विचार ।
एक मनां सहू सांभलु जी, जिम लहु सौख्य अपार हो स्वामी ।।जग।१३।४८।।

भ० महावीर द्वारा समाधान

वस्तु बंध—सुणु राजन सुण राजन देव चरित्र ।
भवदत्त भवदेवनु कहु चरित्र, मन आणंद आणी ।
तप जप सयम आचरी धरीय ध्यान मन ज्ञान जाणी ।
आज थकी दिन सातमि स्वर्ग थकी चवी सार ।
देव देवी सुख भोगवी, मध्य लोक अवतार ।।१४।।४९।।

वर्द्धमानपुर नगर वर्णन

ढाल यशोधरनी

जंबूं द्वीप भरह क्षेत्र मध्यि अति सोहि।
वर्द्धमानपुर नाम सार भवीयण मन मोहि ॥१॥५०॥

मिथ्यात्वी द्विज अतिघणाए, तेह नयर मझार।
वेद स्मृति यज्ञ करीए हणि जीव अपार ॥२॥५१॥

स्वरग मारग तिणि कारणि ए, करि धर्मज एह।
जीव तत्व अजीव तत्व, नवि जाणि तेह ॥३॥५२॥

मिथ्यात्वी द्विज एक वसि, तेह नयर मझार।
आर्यवसु तसु नाम भलु, सोम सर्मा नार ॥४॥५३॥

तास तणी कुखि उपनीए, भवदत्त भवदेव।
शास्त्र सवे भणावीयाए पाम्या योवन तेव ॥५॥५४॥

अष्टादस वरसह तणु ए, हुउ भावदेव।
बार वरस तणो उलघूए, हुउ भवदेव ॥६॥५५॥

एक दिवस आर्यवसू ए, पापह परिभाव।
कुष्ट थणुं तेह नीसरयुउ पाम्यु दुख दाव ॥७॥५६॥

जीवत आस्या परहरीए, काष्टह घणां मेली।
चिहा करी प्रवेश कीउ, साथि स्त्री सहेली ॥८॥५७॥

पितृ तणां दुख पुत्र करि, नवि जाणि सर्म।
धिर रह्यां सुख भोगविए, नवि जाणि धर्म ॥९॥५८॥

एकदा मुनिवर आवीयाए, सौधर्म्मा स्वाम।
ज्ञानवंत यती नायकु ए तेज तणु धाम ॥१०॥५९॥

दश लक्षण धुर धर्म धरि, त्रण रत्न भण्डार।
च्यारि कषायनि त्रण सल्य, ते रहित संसार ॥११॥६०॥

भवदत्तादिक नगर लोक, आव्या तेणि ठाम ।।
मुनिवर वांदी पाय पूजी, बिठा सविताम ।।१२।।६१।।

मुनिवर बोल्यु बिहुय परि, श्रावक यती धर्म ।
सात तत्व पुण्य पाप भेद, कह्युं तेहज मर्म ।।१३।।६२।।

धर्म प्रभावि जीव, लहि स्वरग अवतार ।
पाप प्रभावि नरक माहि, छेदन दुख अपार ।।१४।।६३।।

जाइ आवि जीव एकलुए, चिहुं गति मझार ।
एकलु सुख दुख भोगवि ए, जीव इणि संसार ।।१५।।६४।।

मुनिवर वांणी सांभली, भावदेव चमक्यु ।
बैराग पाम्यु अति घणु ए, संसार थी संक्यु ।।१६।।६५।।

दिक्षा लीधी जिण तणी ए, सवि मूकी संग ।
चारित्र पालि निर्मलुए, मन धरीय सवेग ।।१७।।६६।।

एकदा मुनिवर चिंतविए, भ्राता भवदेव ।
मिथ्यात्व मत माहि पड्यु ए, प्रतिबोधु हेव ।।१८।।६७।।

गुरू बांदी एक शिष्य लेइ, चाल्यु मुनि तेह ।
भव देव घिर आवीउ, दीठउं तव गेह ।।१९।।६८।।

उछव देखी अति घणुए, पूछि भावदेव ।
कर कंकण कुण कारणिए, बोलि भवदेव ।।२०।।६९।।

वर्द्धमान पुर माहि द्विज, दुर्मख नागदेवी ।
तेह तणी धी नागलए, स्वजने परणावी ।।२१।।७०।।

सांभली मुनिवर कम कम्युए, सांभलि वछ वात ।
धर्म बिना जीव नवि लहिए, इन्द्रादिक ता तउ ।।२२।।७१।।

वचन सुणी अति बीहनुए, श्रावक व्रत लीधां ।
समकिति लीधउंनिर्मलउंए, मूलगुण दीधां ।।२३।।७२।।

मुझ थिर स्वामी आहार लेई, पवित्र करू गेह ।
आहार लेई मुनिवर कहिए, अलय अन्नं एह ॥२४॥७३॥

आहार लेई धर्म वृधि कही, चाल्यु तत रवेव ॥
कमडल लेई पूठ थकी, चाल्यु भवदेव ॥२५॥७४॥

मारग जातां चिंतविए, किम जाउ गेह ।
कंकण केरा काज सवि, किम करूंय तेह ॥२६॥७५॥

मारग जातां देखविए, सरोव नर वन वृक्ष
स्वामी जाणउ मुझ गेह, मुझ मंडप दक्ष ॥२७॥७६॥

बोलि मुनिवर सुणु वछ, नही मंडप गेह ।
चालिवि मुनि आवीयए, बिठा तिहां तेह ॥२८॥७७॥

देखी मुनिवर बोलिया ए, भाई प्रति बोधी ।
दिक्षा लेवा त्यावीउ, भवदेवह सोधी ॥२९॥७८॥

वचन सुंणी मन चिंतविए, हवि करूं केम ।
वाघ दोतड विचि पड्यउ, ए जीव धरूं केम ॥३०॥७९॥

लाज आणी मन आपणिए, मागि व्रत हेव ।
ससि दिक्षा मुनिवरिए, दीधी भव देव ॥३१॥८०॥

कामिक तप अतिघणु ए करि मन आणी ।
नागला रूप सौभाग्य कला, मन माहि जाणि ॥३२॥८१॥

वर्द्धमान पुर संघ सहित, आव्या मुनि ताम ।
ध्यान धरी मुनिवर सहुए, बिठा निज ठाम ॥३३॥८२॥

आहार लेवा नगर भणी, चाल्यु भवदेव ।
चैत्यालुं तव देखीउ ए ससि हूउ हेव ॥३४॥८३॥

वस्तु-तेह मुनिवर तेह मुनिवर आव्यु पुर मध्य
नेह धरी मन आपणि, नागला नारी उपरि अपार ।
नगर माहि वली पिसंता, देखु चैत्य नवु उधार ।
देखी प्रसाद रूयडउ, मन चिंति मुनिराय ।
चालीनी तिहां आवीउ, दीठी तिहां एक नारि ॥३५॥८४॥

दोहा– क्षीण गात्र अति दूबली, ओलाग्नि नही माय ।
मुनिवर वांदी नागला, बिठी अग्र वि माग ।।१।।८५।।

धर्मवृद्धि मुनि इम कही, पूछि पूर्व विचार ।
भवदत्त भवदेव द्विज, किसु करि व्यापार ।।२।।८६।।

वचन सुणी कहि नागला, मुनि हूया भवतार ।
सामली मुनि इम बोलीउ, नागला नारि विचार ।।३।। ८७।।

यौवन पामी अति घणु, परण्यु भवदेव ।
नारि तेह बडा किसु करि, किम रहकि आधार ।।४।।८८।।

वचन प्रलापिउ लक्षु, जाण्यु ए भवदेव ।
स्थितिकरण करू घणु, प्रतिबोधं मुनि हेव ।।५।।८९।।

वचन सुणी मुनिवर तणां, बोलि नागला नारि ।
रे रे मुनिवर तुझ कहु, सांभलि वचन उदार ।।६।।९०।।

जिन दिक्षा जिन दर्शन, प्रामी धरम संयोग ।
विषय सुख मन माहि धरी, कुण इछि वर भोग ।।७।।९१।।

समकित चिंतामणि समु, प्रामीनि ममहार ।
विषय सुख दुर्गति तणा, दुःख देइ अपार ।।८।।९२।।

स्वरग मुगति सुख दायनी, प्राणी दिक्षा सार ।
नयरतणी दाता सही, कुण ई छिए नारि ।।९।।९३।।

कूड कपटनी कोथली, नारी नठिर जाति ।
नसकि देखी रूयडउं, करि पियारी तात ।।१०।।९४।।

सीयल रयण नवि तेह गमि, छीयाडा सुंधरी मोह ।
रस सुंरमि अने रखी, अन्य चडावि दोह ।।११।।९५।।

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार ।
दया मणी बीलि सही, रूठी क्रूर अपार ।।१२।।९६ ।।

नारी रूप न राचीय, गुण राचउ सहू कोइ ।
जे नर नारी मोहीया, हो नवि जाणि लोय ।।१३।।९७।।

नवे द्वारे अशुचि चविमल पुस्यु तस देह ।
असत्य भाषि सदा, सत्य न बोलि तेह ।।१४।।९८।।

इशां बचन ज साभली मास्यु मुनिवर लाज ।
अधो मुख जोह घणउं, नवि सरयुउ मुझ काज ।।१५।।९९।।

जे पूछिति नागला, ते मुझनि तुं जाण ।
देह कुशिन्न मुझ देखीनि, मम कर मोह अयाण ।।१६।।१००।।

मोहि नर दुर्गति लहि, प्रामी दुखनी खाणि ।
मोह करि जे प्राणीया, करि सवि जीव नीहाणि ।।१७। १०१।।

द्रव्य हतु जे ताहरू, खरचीनि मनोहार ।
चैत्य कराव्यु रूयडउ, पुण्य तणु आधार ।।१८।।१०२।।

परिग्रह सहूइ परिहरी, श्रावक व्रत धरी सार ।
हणि स्थानिक तप जप करि, रहती जिन आधार ।।१९ ।।१०३ ।।

एहवी मुझनि जाणीनि, चंचल चित्त मम थाय ।
निश्चल मन करे आपणु, सेवि जिनवर पाय ।।२०।।१०४।

वचन सुणी नारी तणा लाज लही अपार ।
नाव समान मुझ तु हूई, उत्तारवा भव पार ।।२१।।१०५।।

जे नारी सहूइ कहि ते ए नारन होइ ।
स्वरग मुगति सुख दायनी, एह समान न कोइ ।।२५।।१०६।।

क्षमा क्षमतव्य कही, आव्यु वनह मझार ।
गुरु चरणे प्रणमी करी, मांगि संयम भार ।।२३।।१०७।।

भाव चारित्र लेई करी, तप जप करि अघोर ।
राग द्वेष सहू परिहरि, विषय निवारि घोर ।।२४।।१०८।।

बि मुनिवर अति रूपड़ा, ध्यान धरि बन माहि।
संयम पालि निर्मलं, करीय ते मन उछाह ॥२५॥१०९॥

अवसानि विपुलाचलि, आव्या बे मुनिराय।
अणसण लेई ध्यान सू, मुंमि बे मुनिकाय ॥२६॥११०॥

वस्तु बेहू मुनिवर बेहू मुनिवर करी तप घोर।
स८न सागरनि आयु खि तृतीय स्वरग अवतार।
प्रामी समकित पालि निर्मलुं चारित्र भावि।
स्वरग गांमीय सुख भोगवि बे अति घणुं कीडा करि अपार।
काल गउ जाणि नहीं भोग लही सुख सार ॥२७॥१११॥

ढाल–मिथ्यामोती

जंबू द्वीपि अति भलुं ए, पूर्व बिदेह बिख्यात तु।
उत्सर्प्पणी अवसर्पणीए, काल तणी नहीं बात तु ॥१॥११२॥

सलाका पुरुषह उपजिए, अंतर नहीं तिहां हेततु।
कोड पूरवुं नुं आयुं खुए, पंच सिध नु देहतु ॥२॥११३॥

अन्य मिथ्यात्व तिहां नहीए, दीसि सास्वतु काल तु।
पंच ज्ञान तिहां सास्वताएं, सास्वतां तत्व रसाल तु ॥३॥११४॥

बिदेही मुनिबर अतिघणाए, मुनि दीसि रिधिवंत तु।
मोक्ष मारग एक जाइए, संचि सौख्य अनंत तु ॥४॥११५॥

व्यसन एक तिहां नहीं, एक नवि दीसि तीहां कुरीति तु।
सत्य भाषि नर अति घणाए, नवि दोसि तिहां ईत तु ॥५॥११६॥

तस मध्यि देसह भलउए, पुकलाबती तसु नाम तु।
मटंब घोष करबट भरयुं ए, नगर दीसि ठाम ठाम तु ॥६॥११७॥

पुंडरीकणी नगरी भलीए, देसह तेह मझारतु।
चैत्य चैत्यालां अति घणां ए, बन उपवन अपार तु ॥७॥११८॥

ध्यान धरि मुनि अति घणाए, स्वरग मुक्ति तणि हेतु तु।
पुण्यवंत नर अति भलाए, नारी नर शीलवंत तु ॥८॥११९॥

तेह नगरी नु राजीउ ए, वज्रदंत तेह नाम तु।
धीर प्रतापी अति भलु ए, सोहि अभिनवु काम तु ।।१२०।।

तस पट राणी रूयडीए, विशालाक्षी तस नारि तु।
भवदतु जीव जे अछिए, त्रीजा स्वरग मझार तु ।।१०।।१२१।।

तिहाँ थकी चवी उपनुए, तास यपरि अवतार तु।
सागरचन्द्र नामि भलु ए, दिन दिन वाधि अपार तु ।।११। १२२।।

वीतशोका नगरी भली ए, तेह देस माहि जाण तु।
मणि माणिक पुरी अछिए रत्न तणी ते खाणि तु ।।१२।।१२३।।

तेह नगरी नु राजीउए, चक्रधर महा पद्म तु।
षट खण्ड ते भोगविए चौद रत्न तेह छद्म तु ।।१३।।१२४।।

नवह निधि घिर अति भलीए, सहस बत्रीस राय तु।
छनू सहस अते धरीए, सेवि तेह न पाय तु ।।१४।।१२५।।

अठार कोड तुरंगमाए, लक्ष चउरासी नाग तु।
एतला रथ चंदन तणा ए, पायदल तणु नही भाग तु ।।१५।।१२६।।

छन उप कोडि ग्राम अछिए, सहम बत्रीसह देस तु।
त्रण कोडि गोकल अछिए, एक कोडि हल हेसतु ।।१६।।१२७।।

राज रिद्धि सुख भोगविए, पुत्र रहित राय तु।
पुत्रनी वांछा जब करिए, सेवि जिनवर पाय तु ।।१७।।१२८।।

भवदेव चरजे अछिए, स्वरग थकी चवी हे तनु।
शिव कुमार नरमि भलु ए, पुत्र हुउ तस गेह ।।१८।।१२९।।

बीज चंद तणी परिए, दिन दिन वाधि देह तु।
आठ बरस जब वु लीयां ए, भणवा मुक्यु तेह तु ।।१९।।१३०।।

शास्त्र सवे भणावीउए, आम्यु ज्ञाननु सच तु।
विवाह मेली परणावीए, कन्या सुमति पंच तु ।।२०।।१३१।।

तिहुं सरसां सुख भोगविए, क्रीडा करि अपार तु ।
एह कथा हवि इहां रही ए, अवर सुणुं विचार तु ।।२१।।१३२।।

सागरचंद्र नामि भलु ए, सुख भोगवि समान तु ।
अवधि ज्ञानी मुनि आवीयाए, आव्यु नगर उद्यान तु ।।२२।।१३३।।

नगर लोक कुमारसु ए, चाल्या सब परिवार तु ।
मुनि वांदी धर्म सांभलीए, पूछि निज भवसार तु ।।२३।।१३४।।

पूरव भव मुनि वर कह्या, ए आव्यु अति वैराग्य तु ।
दिक्षा लेई मुनि तप करिए, करतु जीवनु भाग तु ।।२४।।१३५।।

विहार करंतु आवीउ ए, वीतशोक मुनिराय तु ।
राज द्वार पासि आवीउ ए, सेठि प्रणम्या पाय तु ।।२५।।१३६।।

पडधाई घिर आणीउ ए, अहार दीउ अपार तु ।
रत्न वृष्टि तिहां हुई ए हुउ तिहां जयकार तु ।।२६।।१३७।।

कोलाहल हुउ घणाउए कुमरि सुणीउ ताम तु ।
मुनि साहमुं जब जोई ए, जाति समर तिणि ठाम तु ।।२७।।१३८।।

पूरव वृतांत ह जाणीउ ए, आव्यु मुनिवर पास तु ।
देखी मुनिवर मूरछ्यु ए, चेत रहित नीसास तु ।।२८।।१३९।।

स्वजन मिली तिहां आवीयाए पूछि मातनि तात तु ।
कुण कारण तुं मूरछ्यु ए, अम्हनि कहु सहू वात तु ।।२९।।१४० ।

दिक्षा लेउ अह्मो रूयडीए, तप करसूं अह्मो माय तु ।
सुणीय वचन विलखी हुई ए, कुल मावली अनिराय तु ।।३०।।१४१।।

तात निवारि पुत्रनि ए, दिक्षा नु नहीं काल तु ।
जिन दिक्षा दोहिली अछिए, घिर रही व्रत पालतु ।।३१।।१४२।।

सुणी वचन तातह तणाए, घिर रहु कुमार तु ।
तप करि तिहां अति घणु ए, नीरस लेइ आहार तु ।।३२।।१४३।।

विषय सुख सहू परिहरिए, परिहरि नारी संग तु ।
राग द्वेष सहू परिहरिए, ध्यान धरि मनरंग तु ॥३३॥१४४॥

बरस चउरासो सहस्र लगि, तप करयु अपार तु ।
अन्त काल दिक्षा धरीए, सयम पाली सार तु ॥३४॥१४५॥

सुभ ध्यानि काल करीए, छट्ठा स्वरग मझार तु ।
विद्युत्माली देव हुउ ए, इंद्र तणु अवतार तु ॥३५॥१४६॥

सागर दशनि आयुषिए, नगि जाणि गत काल तु ।
च्यार देवीसउ मन रलीए, भोगवि सौख्य रसाल तु ॥३६॥१४७ ॥

सागरचन्द्र तप करीए, पाली अणसण सार तु ।
विणि स्वर्गि प्रेते इहूउए, भोगवि सोक्ष अपार तु ॥३७॥१४८॥

वस्तु—सुणु श्रेणिक सुणु श्रेणिक एह कथा सार ।
विद्युन्माली देवता च्यार नारिसुं इहां आव्यु ।
आज थकी दिन सातमि चवीय भवह अवतार ।
पावि मगध देश राजग्रहि अर्हदास घिर सार ।
जिनमती कूखि अवतरि जम्बूकुमार भवतार ॥३८॥१४९॥

चुपई—जम्बूद्वीप भरत मझार, नयर राजग्रह उत्तम ठार ।
राजकरि तिहा श्रेणिक राय, सवि भूपति प्रणमि तस पाय ॥१॥१५०॥

नयर धुरंधरि श्रेष्ठी वसि, अर्हदास नामि उल्हसि ।
धर्मधुरा धरि मन धीर, समकित भूष्यउ तास शरीर ॥२॥१५१॥

दाता धरमीनि गुणवत, राज्य मान अति शीलवत ।
च्यार अहार देइ बहू दान, मन अहिकार न धरि मान ॥३॥१५२॥

तस घिर राणी शीलि सती, चद्र वदना नामि जिनमती ।
पीन पयोधर मदनावास, विद्याधर कोकिल संकास ॥४॥१५३॥

नव योवन पूरि ते नार, कंठ सोहिए काउल हार ।
सीलाभरण भूषयउ तस देह, दिन दिन पति सूं अधिक सनेह ॥५॥१५४॥

एक दिवस सूती जिनमती, पश्चिम रयणी देखि सती ।
पंच स्वपन देखां अभिराम, नयणे नींद न आवि ताम ॥६॥१५५॥

पहिलि जंबू वृक्ष विसाल, परिमल सहित फल फूल रसाल ।
बीजि निरधूम अग्नि अंगीठ, शाल क्षेत्र त्रीजि चमक दीठ ॥७॥१५६॥

सरोवर चुथि दीठउ जाम, हंस सारस क्रीडा करि ताम ।
पंचमि समुद्र दीठउ तिहां सार, हूउ प्रभात जागी तिणि वार ॥८॥१५७॥

अर्हदास आगलि कही वात, पंच स्वपन देख्या विख्यात ।
सुणी वचन वन आई नाह, मुनिवर प्रणमी पूछि साह ॥९॥१५८॥

सुणी वचन बोलि मुनि रही, स्वपन फलाफल जाणउ सही ।
जंबू फल देख्यउ तम्हेव नारि, पुत्र हसि चिर जंबूकुमार ॥१०॥१५९॥

निरधूम अग्नि देख्यउ तम्हे सुणउ, क्षय करसि सवे करमह तणु ।
शाल क्षेत्र देख्यां अभिराम, लक्ष्मीपति होसि गुणधाम ॥११॥१६०॥

जल पूरयु सर दीठउ सार, पाप तणु करसि परिहार ।
रत्नाकर देख्यु तिणि वार, जन बोधी भव तरसि पार ॥१२॥१६१॥

बरस सोले त्यजी घर बार, च्यारि नारि छंडी परिवार ।
दीक्षा लेई तप करसि सार, चरम देही होसि भवतार ॥१३॥१६२॥

सुणी वचन हरष्यु अर्हद्दास, स्वजन सहित आव्यु आवास ।
सुखविलसि नारीनि नाह, काल गयु नवि जाणि साह ॥१४॥१६३॥

आउ अंति तडित्माली देव, स्वरग थकी चवी ते खेव ।
जिनमती उपनु गर्भ, दिन दिन वाधि तेहज डंभ ॥१५॥१६४॥

गर्भ धरी सोहि जिनमती, उत्तम डोहला धरती सती ।
त्रिवलय भंग न पामि देह सुख विलसि रमती निज गेह ॥१६॥१६५॥

मन वछित पूरि भरतार, ए सहू पुण्य तणु विस्तार ।
पुण्यि नर पामि घणी रिधि, पुण्यि घिरि हुइ सहू सिधि ॥१७॥१६६ ।

मास नव पूरा थया जसि, पुत्र जनम हुउ घिर तसि ।
आषाढ घिर अजू पालि पास, आठिम दिन जाणउ ए साथ ॥१८। १६७ ।

वस्तु—पुत्र जन्म पुत्र जन्म अति मनोहार ।
घिर घिर उछव अति घणा, घिर घिर वसिय मंगल च्यार ।
स्वजन जन सहू हरषीउ, नयर लोक अति अपार ।
बंदी जिन बिडदावली, बोलि अति घणी सार ।
हरष हूइ हीइडि घणु अर्हंदास तस नारि ॥१९॥१६८॥

ढाल मालंतडानी

घिर घिर उछव अति घणाए, मालतडे घिर घिरमंगलच्यार सुणु सुदरे ।
नयर लोक सहू हरषीउए । म उछव करि रे अपार ॥१॥

घिर घिर गुडी उछलीए । म तलीया तोरण सार ।
बदी जिन बोलि घणु ए, मा० बिउदा बलीय कुमार ॥२॥१७०॥

जय जय शब्द करि घणु ए ।मा०। आकासि रह्यी देव ।
दुंदभि नाद करि घणुं ए ।मा०। रतन वृष्ठि करि सेव ॥३॥१७१॥

नारि अक्षाणा लेई लेई ए ।मा०। आवि श्रेष्ठ आवास ।
वधावीनि इम कहीए ।मा०। जीव जे कोडि बरस ॥४॥१७२॥

नयर सहू सणगारीइए ।मा०। क्लीय विसेखि हाट ।
चउहटां सवे सणगारीइए ।मा०। घिर गवाक्षनि वाट ॥५॥१७३॥

नृत करि करि नृत्यंगनाए ।मा०। गीत गाइ रसाल ।
वाजिन वाजि प्रतिघर्णा ए ।मा०। ढोल ददामां कंसाल ।।६।।१७४।।

निवली तूरया दल घणाए ।मा०। भेरि वाजि वर भंग ।
इणी परि जनम महोत्सवए ।मा०। श्रेष्ठि किरहूउ रंग ।।७।।१७५।।

जिन मंदिर पूजा रचिए ।मा०। पूज जिनवर देव ।
चउविह दान देइ घणाउए ।मा०। सदगुरुनी करि सेव ।।८।।१७६।।

इणी परिदश वासरहूयाए ।मा०। उछिव सहितअपार ।
सोयणा अणसारि करू ए ।मा०। जंबूय नाम कुमार ।।६।।१७७।।

बीजना चंद्र तणी परिए ।मा०। दिन दिन वाधि बाल ।
एणी परि अष्टवर सहूयांए ।मा०। सुंदर सिगुण माल ।।१०।।१७८।।

जिनवर बिंब पूजी करी ए ।मा०। भणावा मेल्यु कुमार ।
जैन उपाध्याय भणावताए ।मा०। प्रामीउ भणवा पार ।।११।।१७८।।

कुण कुण मास्त्रज जोईयांए ।मा०। कुण कुण ग्रंथनी जाति ।
कुण कुण भासज जोईयां ए ।मा०। कुण कुण जाणि वात ।।१२।।१७६।।

व्याकर्ण शास्त्रज वली भण्यु ए ।मा०। साहित्य तर्क प्रमाण ।
योतिक वैदिक ते भण्यु ए ।मा०। छंदनि काव्य पुराण ।।१३।।१८०।।

चौदह विद्या नर लक्षणाए ।मा०। जाणि लिप अठारा ।
सर्व कलावती सीखीउ ए ।मा०। जाणि सास्त्र विचार ।।१४।।१८१।।

घिर आवी क्रीड़ा करिए ।मा०। रायना पुत्र सघात ।
राज लीला करि घणी ए ।मा०। धर्म तणी करि वात ।।१५।।१८२।।

रूपि काम देव समुए ।मा०। बल करी सिंघ समान ।
समुद्र समु गभीर छिए ।मा०। रवि प्रति कोपनि मान ।।१६।।१८३।।

यशकीर्ति न घणउ विस्तरू ए ।मा०। भूमण्डल जग माहृ ।
वन जातां देखी करी करीए ।मा०। पौर नारी मन माहि ।।१७ ।१८४।।

विरहानल व्यापी घणु ए ।मा०। करिय्छि विविध प्रकार ।
पगनुं नेउर कंठि धरिए ।मा०। कठ तणु पगे हार ।।१८।।१८३।।

किह्डि तणी कटि मेखलाए ।मा०। कंठ धरी तिणि वार ।
मस्तक वेणी सोहामणाउ ए ।मा०। किड धरि सुविचार ।।१६।।१८६।।

आपणु पुत्र मुकी करी ए ।मा०। पुरनु पुत्र धरेव ।
घरना काम मूकी करी ए ।मा०। चालि जे बात तखेव ।।२०।।१८७।।

रूपदेखी कुमर तणुए ।मा०। पामि मोह अपार ।
मन संकल्प धरि घणु ए ।मा०। देखि रूप कुमार ।।२१।।१८८।।

माहो माहि एकलुं कहिए ।मा०। बोलि एहवी बात ।
धन जननी कुमर बणी ए ।मा०। धन धन एहनु तात ।।२२।।१८६।।

जो थिर पुत्र एह अछिए ।मा०। सरयां सवे तेह मां काम ।
शीलवंत स्त्री जे अछिए ।मा०। तेह लेइ एहलुं नाम ।।२३।।१६०।।

कामा कुल बोलि इसुं ए ।मा०। ते करीइ तप सार ।
अन्य जन्म एह समुए ।मा०। पामीइए भर्त्तार ।।२४।।१६१।।

आपणु यसकीर्त्ति न सहूए ।मा०। सांभलि आपणे कांन ।
इणी परि थिर सुखि रहिए ।मा०। धरतु धरमनुं ध्यान ।।२५।।१६२।।

उत्तम पुत्र एकि भलुए ।मा०। भार धरि कुल जेह ।
घणे मुंडे सुं कीजीइए ।मा०। खापण आंणि जेह ।।२६।।१६३।।

श्रेणिक रायनि बापसुए ।मा०। स्नेह धरि रे कुमार ।
सुख विलसि थिर रह्या ए ।मा०। भोगवि सोख्य अपार ।।२७।।१६४।।

तिणि नयर विवहारीउए ।मा०। सागरदत्त ते नाम ।
पद्मावती कुखि भलीए ।मा०। पद्मश्री सुता नाम ।।२८।।१९४।।

धनदत्त बीजु भलुए ।मा०। कनकमाला तस नारि ।
कनकश्री पुत्री भलीए ।मा०। सर्व कन्या माहि सार ।।२९।।१९५।।

वैश्रवण त्रीजउ भलीए ।मा०। विनयमाला स्त्री जाण ।
विनयश्री दुहिता भली ए ।मा०। बोलि मधुरी वाणि ।।३०।।१९६।।

वणिकदत्त चउथउ अछिए ।मा०। विनयवती तस नारि ।
लक्ष्मी दुहिता तस घिर ए ।मा०। जाणि धरम विचार ।।३१।।१९७।।

चार कन्या अछि अति भली ए ।मा०। रूप सोभागनी खाणि ।
पृथु पीन पयोधरा ।मा०। बोलि अमृत वाणि ।।३२।।१९८।।

कटियंत्र अति रूडीए ।मा०। मृग नयणी गुणवंत ।
स्वरग थी च्यारि अवतरीए ।मा०। जाणि पूर्व वृतांत ।।३३।। १९९।।

सास्त्र सवि भणावीयां ए ।मा०। कन्या केरे तात ।
कला गुण सहू सखिवीए ।मा०। हुई छि लोक विख्यात ।।३४।।२००।।

पुत्र पुत्री जण्या विना ए ।मा०। पूरवि बोल्या बोल ।
अर्हदास घिर आवीया ए ।मा०। मनसुं धरी रंगरोल ।।३५।।२०१।।

आसण विसन घणां दीयांए ।मा०। मान दीधांरे अपार ।
मीठां मधुरा बोलीयांए ।मा०। ते बिठा तिणि ठाम ।।३६।।२०२।।

दूहा —ते च्यार तिहां बोलीया, अर्हदास प्रतिसार ।
जंबूकुमार ए पुत्रीयां, योग्य अछि भरतार ।।३७।।२०३।।

इशां वचन जब सांभली, मनसुं धरी उल्लास ।
स्त्रीय सहित आलोचियो, प्रमाण कहि अर्हदास ।।३८।।२०४।।

उत्तम जोसी तेडीउ, लगन लीउं तिणी वार ।
अखय तृतीया नु दिन, उत्तम जाणी सार ।।३६।।२०५।।

निज मंदिर च्यारि गया, हरष धरि मन मरहि ।
घिर जाई घिर आपणि, उछव करि विवाह ।।४०।।

अर्हदास घिर इणी परि, उछव हुइ अपार ।
मंडप खाल्या रूपडा, अति घणी विस्तार ।।४१।।२०७।।

तोरण बांध्या रूपडा, चंद्रो या चुमाव ।
मुगता फलनां झुंबखां, पुष्पतणी नरमाल ।।४२।।२०८।।

इणी परि उछव पंच घिरि, गीत गान अपार ।
महोछव हुइ अति अणु, को नवि लाभय पार ।।४३।।२०९।।

वस्तु—वसंत आव्यु वसन्त आव्यु अति हाली रग ।
कामीजन मनरंजनु, पंथीजन उद्वेष करतु ।
कोकिल कलिरव अति, हूया मधुप शब्द अधिक ।
घरता मंडप अतिघणा, दान करी बरसत ।
विवाह उछव जोयवा, आव्यु मास बसत ।।४४।।२१०।।

ढाल सखीनी

सखी आव्यु मास बसंत, वन वन वृक्षत मुरीयाए ।
चपक चूत रसाल, केसूयडां घणा आवीयाए ।।१।।२११।।

मलयाचल संभूत वाइ, सुंगघ वाइ घणाउए ।
सुखकरी कामी काय, पंथी जन दुख तणउए ।।२।।२१२।।

सखी कोकिल पंचम राग, हसी हुंसी सबद करीए ।
आव्यां वृक्ष असंख्य, वन सकाम पूर धरिए ।।३।।२१३।।

सखी आव्यु जाणी बसंत, क्रीड़ा करिवा बन भणीए ।
नगर लोक समेत, साथि सेना अति अणीए ।।४।।२१४।।

वन क्रीडा वर्णन

सखी श्रेणिक राय सुजाण, रमवा वन अभी चालीउए ।
चेलणा सहू परिवार, जंबू कुमार वली भावीउए ॥५॥२१५॥

सखी वन श्राव्या सहू कोइ, बसंत क्रीडा करि भलीए ।
सरोवर क्रीलि लीक, जंबूकुमर क्रीलि बलीए ॥६॥२१६॥

सखी क्रीडा करि चिरकाल, सरोवर कंठि श्रावीयाए ।
सज करी वाहन सर्व, नगर भणी सबे चालीयारे ॥७॥२१७॥

सखी भेरी मुंगल नाद, ढोल ददमां अति घणाए ।
रण काहुण रणतूर, पारन पामुं तेह तणु रे ॥८॥२१७॥

हाथी का पागल होना

सखी तिणि दिन श्रेणिक नाग, साकलि श्रोडी मन रलीए ।
चाल्यु नगर मझार, दुष्ट पणुं धरतु वली रे ॥९॥२१८॥

सखी वन माहि श्राव्यु नाग, वन वृक्ष ऊपाडी यारे ।
ताल तमाल कदंब, मल्लकी कपित्थ ऊजाडीयारे ॥१०॥२१९॥

जबू जंबीर अशोक, सहिकार नारिंग बलीए ।
खजूर कदली द्राख, क्रमुक चंपक पाडलीए ॥११॥२२०॥

श्रीखड दाडिम बिलूनाल, केर राइण खरीरे ।
नागवेल वर बोल, श्राखोड बदाम बुलमरीरे ॥१२॥२२१॥

सखी धुव खरणी गिरमाल, बहेडा महूडा श्रांवलीरे ।
लींबूंइ लींबक बार, बीजोरी बीली बलीरे ॥१३॥२२२॥

भखीए लाख वग प्रमुख. वन वृक्ष सहू भांजीयारे ।
पंखी सबे अनेक तिहुना माला टालीयारे ॥१४॥२२३॥

सखी महामद पूरयु नाग, अंकुशनि मानि नही रे ।
त्रास बिन रनि नार, राजादिक लोको सहूरे ॥१५॥२२४॥

सखी दक्ष दिशि नाग लोक, श्रेणिक सु भूपति मवेरे ।
नाग नर नि नारि, प्रांण राखु ए सुलविरे ।।१६।।२२५।।

सखी को जंपि नवकार, अराधन केवि दे इरे ।
सन्यास लेइ केवि, के वि अणसण लेइरे ।।१०।।२२६।।

जंबुकुमार द्वारा हाथी को वश में करना

सखी दुजर्य जाणी नाग, जबकुमार आव्यु वली रे ।
नाग प्रति कुमार दृष्टि, देइ मननी रली रे ।।१८।।२२७।।

युद्ध करि तेह साथ, अंकुस घाय मूकि रही रे ।
साग तणा वली घाय, कुंडल घाय चूकि नही रे ।।१९।।२२८।।

सखी निरमद कर वली नाग, पग देई ऊपरि चढ्यु रे ।
फेरवीनि चिरकाल, मुष्ट प्रहारि सुनड उरे ।।२०।।२२९।।

जीतु तेवली नाग, जय लक्ष्मी तिहां पामी उरे ।
पुष्प वृष्टि करि देव, ए तलि श्रेणिक आवीउरे ।।२१।।२३०।।

सखी करीय प्रसंसा सार, मनसुं स्नेह धरि घणउरे ।
पुण्यि लाछ भंडार, पुण्यि घिर घोडां सुणु रे ।।२२।।२३१।।

पूज्यु श्रेंणिक राइ, अर्द्धासन देइ वली रे ।
महोछव सहित कुमार, नगर माहि आवि रलो रे ।।२३।।२३२।।

सखी नगर नारि तिनी वारि, वृद्धा वि गुखि रही रे ।
जोती जंबूकुमार, तृपति न पामि ते सही रे ।।२४।२३३।

सखी इणि पिरि आव्यु आवास, माय बाप स्वजन मिल्यु रे ।
पूछि क्षेम समाधि, कहु नाग तम्हे किम कलु रे ।।२५।।२३४।।

सखी जिम जिम जीतु नाग, ते ते पिर सघली कही रे ।
सुखि रहि मंदिर माहि, दिन जाता जाणि नही रे ।।२६।।२३५।।

दूहा—एह कथा हवि इहां रही, अवर सुणु तम्हो बात ।
विमान बिसी एक आवीउ, विद्याधर विख्यात ।।२७।।२३६ ।

गगनगति विद्याधर का आगमन

गगन, मारग थी अदसि, आव्यु सदसि मझार ।
प्रणमी श्रेणक रायनि, बिठउ ते तिणीवार ।।२८।।२३७।।

विस्म चित्त ते आणीउ, पूछि श्रेणिक राय ।
कुण कामि इहां आवीउ, वासि कु कुण ठाम ।।२६।।२३८।।

सांभलि राजा तुझ कहू, सहस्र श्रग गिरि ठाम ।
खेचर नु हुं राजीउ, गगनगति मुझ नाम ।।३०।।२३६।।

तिणि पर्वत मुझ वासडउ, हूं आव्यु जिन काज ।
ते बात तुझ हु कहू, सांभलि तुं महाराज ।।३१।।२४०।।

ढाल सहीनी-रागगुडी

मलयाचल दक्षिण दिसि, केरामा नगरी तिहां अछि ।
धन कण सपति पूरीय, ते भली सहीए ।।१।।२४१।।

मृगांक विद्याधर भूपती, तस घिर राणी मालती ।
रूप सौभाग्य गुणो आगलीए, सहीए ।।२।।२४२।।

तेह तणी कूखि उपनी, यौवन करी बली नीपनी ।
विलासवती नाम रूयडड, ए । सहीए ।।३।।२४३।।

द्रढ पीन पयोहरा, कनक वर्ण काया बरी ।
मृग नयणी हस गति गामिनीए । सहीए । ४।।२४४।।

एक दिवस रूप देखीय, मन चिंत्ति राय पेखीय ।
वन आई ज्ञानी मुनि पूछीउए । सहिए ।।५।।२४५।।

कुण वर होसि एहनु, मुनिवर बोलि राय निसुणउ ।
श्रेणिक भूपति वर एह नु । सहीए ।।६।।२४६।।

एसुं मन निश्चिच धरी, थिर रहि सुखो करी ।
ए तलिए अन्य कथांतर चालीउए । सहीए ।।७।।२४७।।

हूंर द्वीप द्वीपापती, रतन चूलि तिहा खग पती ।
सपताग राज राय सुख भोगविए । सहीए ।।८।।२४८।।

स्याम दाम भेदि करी, कन्या मागी तिणि खरी ।
तेह नि मृगांक कि नवि दीधीए । सहीए ।।९।।२४९ ।

कोप करी सेना मेली, देस नयर सवे भेलीय ।
पछिए केरला नगरी आवीउए । सहीए ।।१०।।२५०।।

रतनचूल भय मन धरी, नगरी गढ नि अणुसरी ।
स्वीकीय सैन्यइ रहु ते वलीए । सहीए ।।११।।२५१।।

काहलि सग्राम राय करिसि, रतन चूल सुं वली भडसि ।
एहवुं ए पूरव वृत्तांत तुझ कहु ए ।।१२।।२५२।।

मान तणु धन जेह नि, सवे पदारथ तेह नि ।
मान रहित मूं उ अति भलउए । सहीए ।।१३।।२५३।।

एहवुं कहीनि क्षण रही, चालवा उद्यम करि सही ।
ए तलि जंबूकुमार बोलीउए । सहीए ।।१४।।२५४।।

क्षण पडखु विद्याधरु, जंबूकुमार कहि सेचरू ।
सैन्य लेई श्रेणिक आवसिए । सहीए ।।१५।।२५५।।

हसी करी खग इम कही, सग्राम मारग नवि लहि ।
वामनु हस्ति चड्र किम ग्रहिए । सहीए ।।१६। २५६।।

सउ योजन मारग दूर, भूचर जावा नवि सूर ।
खेचर पाखि कोइ नवि जाइए । सहीए ।।१७।।२५७।।

भूपति विस्मय पामीया, विश्राम सिखा दामीया ।
श्रेणिक चितातुर तव हूउए । सहीए ॥१८॥२५८॥

हवडां राइ कहि किम करूं, किम काया किम जीव धरूं ।
अति घणुं कष्ट हूं पामीउए । सहीए ॥१९॥२५९॥

जंबुकुमर द्वारा जाने का प्रस्ताव

चितातुर रा देखीउ, जंबुकुमारि पेखीउ ।
बोलीए सांभलि राय तुझ कहूंए । सहीए ॥२०॥२६०॥

मुझ आदेश देउ राय, खग साथि जाउ तिणि ठाय ।
काजए करसुं राइ तह्म तणउए । सहीए ॥२१॥२६१॥

कुमर वचन खग सांभली, विस्मि प्राम्यु ते वली ।
रतन चूल आगवि, आवीसुं करीए ॥२२॥२६२॥

वचन सुणी तव मन रली, मुझ लेई जाउ खग वली ।
वैरी जीपी मृगांक राज देउ ए । सहीए ॥२३॥२६३॥

तव भांणेज श्रेणिक देई, जय लक्ष्मी तवहु लेइ ।
आपणि नगर वेगि आवसुए । सहीए ॥२४॥२६४॥

श्रेणि पर्वत कुण भेदि, दुर्जय विरि कुण छेदि ।
बलवंत साथि बालक कुण भडिए । सहीए ॥२५॥२६५॥

श्रेणिक राइ इम कहि काल जीव घणा ग्रहि ।
एक सष शबद गजना सि घणाए । सहीए ॥२६॥२६६॥

एक गरूड बहू अहिदलि, एक जीव संमति रलि ।
एक एक केवली लोक सहू देखिए । सहीए ॥२७॥२६७॥

एक अगनि वन सहू दहि, एक जीव दुख सहि ।
एक जीव मुगति रमिए । सहीए ॥२८॥२६८॥

एक समुद्र जाल बहू, संचि एक दोष गुण बहू ।
वंचि एहवी अद्भुत वाणी, खग सुणीए ॥२९॥२६९॥

संग्राम आंणी मर मीय, जंबू श्रेणिक प्रणमीय ।
विमान लेईबि सैनि लेई चालीए । सहीए ॥३०॥२७०॥

जंबुकुमार का प्रस्थान

वस्तु—ताम श्रेणिक ताम श्रेणिक कही तिणी बार ।
भो भो क्षत्रय सज थई जरह जीणसनाह लेइ ।
यान वाहन सय सज करी चतुरंग सैन्य सुहय लेइ ।
विविध वाजित्र वाजतां, आव्या ते तेणि ठाम ।
रत्नचूल खग जीपवा, श्रेणिक चालि ताम ॥३१॥२७१॥

दूहा—केत लाग चदने चड्या, के तला अस्वारोह ।
सनाह लेई केतला, छांडीनि घरना मोह ॥३२॥२७२॥

सेना वर्णन

पायक आगलि चालीया. सेना सवे चतुरग ।
समुद्र सरीखीए अछि, रणस्थानिक नहीं भंग ॥३३॥२७३॥

सैन्य सागर तिहा चालता, जल स्थल एकज होइ ।
सम विसम पंथा सहू, ते सवे सरखा जोइ ॥३४॥२७४॥

ढोल ददांमा दरबडी, रण काहल रणतूर ।
पच शबद वाजि घणां, जाणे सायर पूर ॥३५॥२७५॥

सैन्य सहु तिहा आवीउ, विध्याचल उत्तग ।
जीव घणा तिहां देखीया, विस्मय पाम्यु मन चग ॥३६॥२७६॥

कपि केकी वाराहनि, हरण रोभ्र गोमाउ ।
हस व्याघ्र गज सावरा, मृग वृष महिष निकाय ॥३७॥२७७॥

भिल्ली भिल्लज देखीया, ते आयुध सहित अपार ।
सैन्य साव देखी करी, नाठा ते तिणी वार ॥३८॥२७८॥

तिहां थी सैन्यज चालीउ, आव्यु कुर गिरि ठाम ।
जिन प्रासाद छि ऊपरि, ते देख्या अभिराम ॥३९॥२७९॥

जिन पूजी जिनवर नमी, मुनि प्रणमी वली पाय ।
पंथाश्रम विनास वा, विश्रामि तिहां राय ॥४०॥२८०॥

राग धन्यासी

के नर समायक करि, के जपि नवकार ।
के जबुकुमार नी, बोलि क्षाति अपार ॥४१॥२८१॥

तिणि अवसर विमान थी ऊतरी, जंबू कुमर विद्याधरू रे ।
केरला नगरी विन्धि आव्या, सैन्य देख्यु तेणेवा करे ॥१॥२८१॥

जबूकुमर खग प्रति बोलि ए, सैन्य कहितु अछि रे ।
रतन शिखिर विद्याधर वैरी, गढवीटीपडउ अछि रे ॥२॥२८२॥

मृगाक विद्याधर आपणउरे, स्वामी गढ माहि इणि राख्यु रे ।
वचन सुणी कुमार ज बोलि, क्षण एक विमान तेराखुरे ॥३॥२८३॥

गगन मारगथी ऊतरी रे, हेठउ सैन्य सागर माहि आव्यु रे ।
विद्याधरे जब तेहज दीठउ । दैत्य दानव मन भाव्यु रे ॥४। २८४॥

द्वार आवी प्रतिहारज कहीउ रतन चूलनि किहि जोरे ।
मागांकि मोकल्यु दूतज आव्यु, इणि स्थान्कि तम्हो घर ओरे ॥५॥२८५॥

नुति स्तुति कर्‍या विना विटउ, सिंह समान तव दीठु रे ।
दैत्य दानव मानव नही, एह दूत पणउ किम मीठउरे ॥६॥२८६॥

विस्मि प्राम्यु बोलि विद्याधर कुण कामि इहां आव्यु रे ।
सांभलि रतन चूलह तुझ कहु, न्याय मूंकी कोई चालाव्यु रे ॥७॥२८७॥

रूप सुंदरी स्त्री तम तणि घिर, तेह तणु नही पार रे ।
एक मृगांक पुत्री तिणि कारणि, ए आग्रह नहीं सार रे ॥८॥२८८॥

मांन मु'की मृगांकज, प्रणमी सुख भोग बुधिर जाइ रे ।
मांनि दुजोर्धन नासज, प्राम्यु' मांनि दुर्गति जाइ रे ॥६॥२८६॥

बापि कन्या श्रेणिक दीधी, ते तुझनि किम देइ रे ।
मोह छांडी प्रास्या परी, मुकी परस्त्री सुख कुण वेई रे ॥१०॥२६०॥

पर स्त्री कारण रावण राणि, नरक माहि दुख सहिरे ।
वचन सुणी रतन चूलज, कोप्यु इसा वचन कांइ कहिरे ॥११॥२६१॥

कोप करी रतन शिखिरज, बोल्यउ तुझ स्वामी भूमि गोचरी रे ।
रावण विद्याधर रामि जीतु, तु सू' कीजि खेचरी रे ॥१२॥२६२॥

भूमिचर सिंघ खेचर वाय, सतु सु' कीजि खेचरी रे ।
सिंघ सियाल सरसां नवि होइ, तुसु' भला भूमि गोचरी रे ।१३॥२६३॥

क्रोध करी रतनचूल ज ऊठउ, लेउ लेउ दूतज एहजरे ।
सजथाई खेचर सवे, ऊठ्या बल जाण्या बिना तेहरे ॥१४॥२६४॥

होठ उसी क्रोध करी, कुमर खडग धरी तव उठ्यउरे ।
प्रायुध सघलां कुमरनि, प्राधां गमनगति तव तूठइरे ॥१५॥२६५॥

दूहा राग प्रासाउरी

जबुकुमार द्वारा युद्ध करना

जबू कुमर तव ऊठीउ, खडग धरी तिणी वार ।
युध करि खेचर समुबलह न लाभि पार ॥१॥२६६॥

ते प्रागलि नवि को रहि, जुद्ध करवा नही जाण ।
कोटी भट्ट कहीइ सदा, कवण सहि ते बाण ॥२॥२६७॥

जबू कुमरि एकलि रिण, सग्रामि सेन ।
क्षण एकि विद्याधर भंग पमाड्या तेण ॥३॥२६८॥

जंबू तिणि अवसरि विद्याधरा, माहोमाहि चवति ।
ए बल नहीं मृगांक नु, ए बल दूत न हुंति ॥४॥२६६॥

सत्य दानव को देवता, ए बल तेहना होइ ।
इसु निस्यउ मनसु धरी, जुद्ध करि सहु कोइ ॥५॥३००॥

तिणि अवसर मृगांकनि जई कहु बली केण ।
श्रेणिक मोकल्यु को नर जुद्ध करि बली तेण ॥६॥३०१॥

एहवां वचन ज सांभली, देवडा वीरण मेर ।
सैन्य सवे लेई आवीउ, मन करी निश्चल मेर ॥७॥३०२॥

केतला समकित लेईनि, अणसण लेई केवि ।
रिण संग्रामि आविया जरहु जीण धरी केव ॥८॥३०३॥

मोहो माहि अति घणउ, सुभट करि संग्राम ।
कंपि कायर हाथ थी, लोह पडि तिणि ठाम ॥९॥३०४॥

पति जुद्ध तिहां हुइ, कायरनि करि भीति ।
जे संग्रामि वाउला, तेहसु करि सम प्रीति ॥१०॥३०५॥

आरति पामी केतला, पुत्रि कलिअ बली मोह ।
पंच थावर तिर्यंच गति, मरी करी उपजि छोह ॥११॥३०६॥

रोद्र ध्यानि मरी केतला, मरी करी नरकि जाम ।
धर्म ध्यानि मरी केतला, देव मनुष्य गति थाय ॥१२॥३०७॥

वाधे चक्रि मुदगरि खडग तो मरनि पास ।
कुंत धेनुनि सांग सुं, उभय सैन्य हुइ नास ॥१३॥३०८॥

रत्नचूल कुमर सु, युद्ध करि अपार ।
मुह थकी तब देखीउ, मृगांकराय तिणी वार ॥१४॥३०९॥

कुमरि मुकी अंबरि, रत्न शिखिर आव्यु भूमि ।
नाग पड्युए कुण अछि मृगांक पूछि एमि ॥१५॥३१०॥

गगनगति हूम उच्चरि, तम विरीए जाण ।
एसुं जाणी युषह करि को नवि मूकि मांण ।।१६।।३११।।

छत्रीस आउध लेईनि तिहाँ करि संग्राम ।
अवसर लही नाग पास, सुमृगांक बाध्यु ताम ।।१७।।३१२।।

आठ सहस्र खग जी पीनि, कुमर आव्यु मुइ लग ।
जुद्ध करतां देखी करी, विस्मय पाम्यु खग ।।१८।।३१३।।

वस्तु बंध

तिणि अवसर तिणि अवसर विद्याघर सहू कोइ
विस्मय प्राम्या अति घणउ, माहो माहि करिए बात ।
ए सामान्य नर नवि अछिए सीकरी तेहनी सवे क्षात ।
जुद्ध करता देखी करी विस्मय पाम्य खग ।
आठसहस खग जीपीनि, कुमर आव्यु भूइ लग ।।१९।।३१४।।

राग विराडी ढाल दमयंतिनी

संग्राम भूमिज देखीय पेरवीय रौद्र रूप इम चितवए ।
निरापरांध ए खेचरा भूचरा मारयामि इम चितविए ।।१।।३१५।।

निरदय भाव ते मनधरी परहरी दयाभाव ते अति घणुए ।।
ए वडउ कर्ममि कांइ करूं, करूय भोगव जीवतु आपणउ ए ।।२।।३१६।।

पूरवि जीव जे करम करि ते करम इह लोकि जीव भोगविए ।
इसु चित्त कोमल जव कर्यउं तव आगिल आवी खग इम चविए ।।३।।३१७।।

सांभलि कुंमर तुझ कहुं तुझ विण आठ सहस्र खग कुण हणिए ।
दूत वचन मृगांक सुणी सग्राम कीधु, गगन गति इम भणिए ।।४।।३१८।।

रतन सिखर प्रस्ताव लही, साहीय नाग पासि बांधीउ ए ।
इसां वचन जब सांभली क्रोधिय कुमरि बाणज सांधीउ ए ।।५।।३१९।।

महा उरग मणि कुण ग्रहि कुण काल मुख पिसीनी सरिए ।
मद पूरयउ गज कुण धरि, कुण पुरष सिह साथी संग्राम करिए ।।६।।१२०।।

जिनधर्म पाखि सुख नही पामिय नरग माहि जीव दुख सहिए ।
मुझ छतां मृगांकज साहीय, देसन परमाहि कुण रहिए ।।७।।१२१।।

खडग धरी मुझ आगलि कुण रहि गगन गति मुझ तुम्हो कहउए ।
कुमर वचन खगपति सुणी, सुणीय सज्रा सेना इम लहीए ।।८।।३२२।।

उभय सैन्य तब सज थई जरह जीण लेइय आव्यु अति भलाए ।
रण काहल रण बाजीयां गाजीयां ढोल नीसाण एकलाए ।।९।।३२३।।

रतनचूल रण आवीउ भावीउ जबूकुमारनि अति रलीय ।
उभय सैन्य तिहां एक थई, थईय युद्ध करि सवे एकलाए ।।१०।।३२४।।

हस्ती-हस्तीसु भडि असवार असवार साथि अति घणउए ।
रथवत रथवंत सुकरि, करिय संग्राम पार बिना घणउए ।।११।।३२५।।

रतनचूल पासी आवीउ आवीय कुमर कहि विद्याधरूए ।
मृगाक साही मुझ आगलि जीवतु किम रहे सतु खेचरूरे ।।१२।।३२६।।

आठ सहश्र खगमि मारी याहवि तुझ तणु वाल अवीउए ।
जु तुझ माहि बल अछि पछि कांउ विद्याधर ल्यावीउए ।।१३।।३२७।।

एणे रांके मारे काइ अछि आपणविन्य जुध करू ंयकलाए ।
एसा वचन जल सांभलि रण संग्राम करिय विन्यि ते अति भलीए ।।१४।।३२८।।

दूहा—रण काहल रण बाजीयां वागां ढोल नीसाण
बाणगा भेर तिहा अति घणां कोनवि लाभि माण ।।१५।।३२९।।

ढाल मोह् पराजतनी-राग सामेरो

तिहां कोध करीनि ऊठीया, मुकि बाण अपार ।
तिहां मेघ तणी धारा परि बरसि तिणिवार ।।१।।३३०।।

तिहां संघ तणी परिणाजतां, मेहलइ नही ठाम ।
तिहां छत्रीस आयद्ध लेईनि, राइ करि संग्राम ॥२॥३३१॥

तिहां सबल वैरी तव जाणिनी, समरि देव बाण ।
तिहां नाग बाण राइ मूकीउ, कुमर हूउ आण ॥३॥३३२॥

तिहां गुरड बांण कुमरी धरी, मेरू तिणि वार ।
तिहां अगनि बांण वैरीधरि, मउ क्युं उ सैन्य कुमार ॥४॥३३३॥

तिहां अगनि सघलि हुई, हूउ हाहाकार ।
तब जरहू जीव बलि घणां, बलि रयण अपार ॥५॥३३४॥

तेहू समावया मूकीउ, कुमरि मेघ बाण ।
तिहां गाज बीज करी, आवीउ आव्यु घन प्राण ॥६॥३३५॥

तव वाय बाण राइ प्ररीउं, कुमर प्रति हेव ।
तिहां पवनि मेघनि वारीउ, हरख्यउ सहू सेव ॥७॥३३६॥

तव कटक सहु नासी गउं, नाग सवे भूप ।
तिहां हा हा कार हूउ घणु, हूउ बली कोप ॥८॥३३७॥

आकासि नारद रही, नीच्यु तिणी वार ।
देव सबे तिहां नाचीया, बोल्या जय जय कार ॥९॥३३८॥

युद्ध में जम्बु कुमार की विजय

बहा—नाग पास मूकी करी, साहउ रतनचूल ।
सैन्य सवे भंग पामीउ, जिम नासि मृगतूल ॥१०॥१३९॥

जय जय शबद तिहां हउ, मूकाव्यू मृगांक ।
हरष हुउ हीयडि घणउ, को नवि लाभि बंक ॥११॥३४०॥

नगर प्रवेश

रांइ नगर सणगारउ, नगर कीउ प्रवेस ।
नगर स्त्री जोइ घणु, करती नव नवा बेस ॥१२॥३४१॥

काम रूप देखी भसु विस्मय पामी नार ।
धन जननी धन ए पिता, जे घिर एह कुमार ॥१३॥३४२॥

अस महिमा निज आपणउ, सांभल तु गुणग्राम ।
मृगांक सभा माहि आवीउ, बिठउ ते निज ठाम ॥१४॥३४३॥

कुमर कहि रत्नचूलनि, सांभल तु ं महाराय ।
तूं राजा मोटु महि, सेवि तुझ खगराय ॥१५॥३४४॥

मीठे वचन संतोषिनि, कुमरि मुकयउ तेह ।
नगर पधारू आपणि, काज करू निज गेह ॥१६॥३४५॥

एसां वचन जब सांभली, रत्न चूल कहि बात ।
श्रेणिक राजा नोयवा, आवु ं तम संघात ॥१७॥३४६॥

केतला दिन तिहां रही, विमान रची तिणि वार ।
पंचसि रच्या भलां, दीसंता मनोहारा ॥१८॥३४७॥

रतनचूल तब चालीउ, मृगांक कुमर वली साथ ।
गगनगति वली रूयडउ ं, कन्या छिवली साथ ॥१९॥३४८॥

कुराल गिरि सहू आवीया, श्रेणिक छि जहां राय ।
हरष धरी हीयडि घणु, प्रणमि श्रेणिक पाय ॥२०॥३४९॥

ढाल भवदेवनी राग धन्यासी

आकास विमान मूकी करी, हेग आव्यु सहू ताम ।
जम्बू कुमर राय तिहा निल्यारे, मिलि सुहू लेई नाम ॥१॥३५०॥

कुरल गिरि सहू आवीया, भेटउ श्रेणिक राय ।
हरष धरी मन आवणि रे, प्रणाछि श्रेणिक पाय ॥२॥३५१॥

कुसल कल्याण सहू पूछीउरे, पूछि संग्राम नी बात ।
पूर्व वृत्तांत कुमरि कह्यु रे, तिहूनी बोलि सविख्यात ॥३॥३५२॥

कुमरि खग उलखावीयारे, रतनचूलि धरी आदि ।
श्रेणिक राय प्रसंसीयारे, तिहुं प्रति बोली साद ।।कुरल।।४।।३५३।।

मृगांक सुता तिहां परणी उरे, श्रेणिक राय सुजाण ।
सहूइ खग चलावीयारे निज निज मंदिर प्राण ।।कुरल।।५।।३५४।

तिहा थी श्रेणिक चालीउरे, आव्यु विंध्याचल ताम ।
विलासवतीनि देखाल तुरे, विविध कुगति तिणि ठाम ।।
विंध्या चल सहू आवीया ।।६।।३५५।।

विंध्याचल वर्णन

हरण रोझ गज सावरा रे, मृग मयूरनि सेह ।
कपि महुषि सिंघ अति भला, देखालतु स्त्रीयनि तेह ।।कुरल।।७।।३५६।।

तिहा थी श्रेणिक चालीउरे, साथि जम्बूकुमार ।
सैन्य सवे साथि अछिरे, देख्यु सौधर्म्माचार्य ।।कुशल।।८।।३५७।।

नगर उद्यान सहू आवीयारे, भेटउ सौधर्म्मा स्वाम ।
हरष हूउ हैयडि घणउरे, प्रणमि मुनिवर पाय ।।९।।३५८।।

तप जप ध्यानि आगलु रे, पचसि शिष्य समेत ।
ज्ञानवत मुनिवर अछिरे, तत्व तणउ जाणि हेतु ।।१०।।नगर।।३५९।।

सौधर्म्म मुनिवर वादीयारे, विठु श्रेणिक राय ।
धर्म वृधि मुनिवर कही रे, प्रणमि जंबू पाय ।।११।।नगर।।३६०।।

वस्तु—तिणि अवसर तिणि अवसर जम्बूकुमार ।
प्रणमी मुनिवर चरण युग, विठउ ते वली अग्रवि भाग ।
कुमरि मुनिवर पूछीया, स्वकीय भव लही लाग ।
सांभलि वह तुझ हु कहु, स्नेह तणी वली बात ।
एक चित्त मनधरवी, पूरव भव सहू क्षति ।।१।।३६१।।

पूर्व भव वर्णन

चुपई—मगध देश देशां माहि सार, वर्द्धमान पुर उत्तम ठाम ।
भवदत्त भवदेव बाडव कही, समकित पामी दिक्षा लही ।।१।।३६२।।

तप जप संयम पामी कला, तृतीय स्वरग हूया भला ।
स्वर्गा तर्णा सुख भोगवी सार, मध्य लोक हूउ अवतार ॥२॥३६३॥

भवदत्त वर जेह तु सुरेन्द्र, वज्रदंत घिर सागर चंद्र ।
भवदत्त वर जे स्वरग मझार, महा पद्म घिर शिव कुमार ॥३॥३६४॥

वैराग्य वस धरी दिक्षा लेह, स्वरग छठि अवतरीया बेह ।
इंद्र प्रतींद्र हूवा तिहां रही, देव देवी सुख भोगवि सही ॥४॥३६५॥

सांभलि वछ अम्हारी बात, मगध देश सवाहन ख्यात ।
सुप्रतिष्ठ राजाधि भलु, दान शील संयम गुण निलउ ॥५॥३६६॥

तस घिर राणी शील सती, सुलक्षणा नामि गुणवती ।
सागरचन्द्र वर जे सार, तस कूखि हूउ अवतार ॥६॥३६७॥

नव मास पूरे हूउ सूत, सौधर्म्म नामि दीउ तब पुत्र ।
दिन दिन वृद्धि घिर रहुउ, अनुक्रमि विद्या सवे लह्यु ॥७॥३६८॥

एक दिवस विपुला वीर, आव्या जाण्या राइ धीर ।
जिन वांदी जिन पूजी पाय, बिठउ नरपति तिणे ठाय ॥८॥३६९॥

धरम वली प्रामी वैराग, दीक्षा लेई कीधु माग ।
तप जोगि गणधर पदलही, देखउ मुनिवर संवयु सही ॥९॥३७०॥

हू वैरागि वासउसार, लीधी दिक्षा मि अवतार ।
पचम गणधर हूउ वली, विहार करम करि मन रली ॥१०॥३७१॥

आव्यु एणा नगरोद्यान, ध्यान रहूं मूकी वली मान ॥
मुझ देखी तुझ उपनु नेह, पूरव भव सस्कारज एह ॥११॥३७२॥

सांभलि वछ तुमारी बात, भवदेव ब्राह्मण विख्यात ।
लही वैराग दीक्षा धरी जेह, तृतीय स्वरग हूउ वली तेह ॥१२॥३७३॥

स्वरग तर्णा सारां सुख लही, शिव कुमार हूउ ते सही ।
तप जप ध्यान सूधउ तिणि धरी, अंत काल जिणि दीक्षा करी ।।१३।।३७४।।

अणशण पाली स्वरग मझार, विद्युत्माली हूउ भरतार ।
च्यार देवी सु लही सयोग, तिहुसर सुखली सही भोग ।।१४।।३७५।।

दस सागर ते जीवी आय अंग अनोपम रूडी का म ।
तिहां थकी चवी सुरसार, अर्हदास घिर जंबूकुमार ।।१५।।३७६।।

स्वरग देवी च्यारि जे हुती, तिहां थकी चवी ते सती ।
जू जूउज नमहूउ तेह तणु, समुद्रदत्त आदि ते सुणु ।।१६।।३७७।।

नव यौवन पूरी ते नारि, आज थकी दिन दशमी सार ।
चिहुनि परणी लही सयोग, तिहुं सरसउ तु लहे सवियोग ।।१७।।३७८।।

जे पूछी ते तुझ कही बात, पूरव भव तणीय क्षात ।
वचन सुणी प्राम्यु वैराग्य, घिर जावा नही ए लाग ।।१८।।३७९।।

जंबुकुमार का दीक्षा के लिये निवेदन

दिक्षा मागी मुनिवर पास, ससार तणी छोडी आस ।
वचन सुणी मुनिवर कही बात, घिर जाई तम्हे पूछउ तात ।।१९।।३८०।।

माय बाप हुया बहूबार, स्वजन बंधउ एणि संसार ।
तु माता तु तातज कही, भव संसार उतारू सही ।।२०।।३८१।।

प्रथम ससार भमंतां अह्मो, पडतां राख्यु स्वामी तम्हो ।
हवडा काइन कस समाल, हु छु स्वामी तम्हारू बाल ।।२१।।३८२।।

माता पिता से आज्ञा मांगना

गुरु वचने घिर जई कुमार, माय तात मिल्यु तिणि वार ।
दुख करि माता तिहा रही, पुत्र प्रससि माता सही । २२।।३८३।।

सुणउ माता अम्हारी बात, अहमे दिक्षा लेसु सुणु तात ।
वचन सुणी मूर्छा गति हुई, नाखी वाय ते बिठी थई ।।२३।।३८४।।

रयन करि सुख प्राणि पथउ, पुत्र प्रसंसि माता सुमउ ।
बार बार स्वर्गि सुख भोग, भोग सही लहि वियोग ।।२४।।३८५।।

तुहि नृपति न पाम्यु सार, दुख सह्यो एणि संसार ।
हिवडां दिक्षा लेउं वन रही, पंच महाव्रत पालु सही ।।२५।।३८६।।

पूरब भव मातानि कह्या, पुत्र थकी माताइ लह्या ।
सुणु हो पुत्र सुखी हुउ जेम, इसु प्रादेश दीउ वली तेम ।।२६।।३८७।।

दूहा—तिणि अवसर तिणे श्रेष्ठी ए, मोकल्या पुरुष ज बेह ।
कन्या घिर आई कहु, कुमर लेइ तप हेव ।।१।।३८८।।

तिणे जाई तिहु नि कहुं, पूरब सहू वृतांत ।
वज्रपात तिहुंनि हुउ, बात सुणी वली कत ।।२।।३८९।।

अन्य मन माहि चिंतवि, अन्य हुइ तिणि वार ।
शुभ शुभ जीव भोगवि, कर्म तणि अनुसार ।।३।।३९०।।

दूत वचन जब सांभली, बोली कन्या सार ।
ताहरी मागी कन्या का, कुण परणिए नारि ।।४।।३९१।।

जाति शुध जे स्त्री हुइ, ते नवि वांछि अन्य ।
एक बाप एकह गुरु, एक एक कुल धन्य ।।५।।३९२।।

एणि जन्म एह वर अन्यह तात समान ।
ए सुनिस्यउ मन सुं करी, मूकि नहीं ते मान ।।६।।३९३।।

एक रात्रि एक दिवस परणी नि बली एह ।
अम समीपि जु रहितु नवि छांडि गेह ।।७।।३९४।।

वचन सुणी कन्या तणां, कन्यानो बलि तात ।
अर्हदास घिर आवीया, कुमर प्रति कहि बात ।।८।।३९५।।

एक दिवस परणी करी, घिर रहू एक दिन ।
पछि दिक्षा लेय जो, शु तम्ह हुइ मन ॥९॥३९६॥

वचन सुणी सुसरा तर्णा, बोलि जंबूकुमार ।
लाज श्राणि मन श्रापणि, हाय भणी तिणी वार ॥१०॥३९७॥

ढाल वीवाउलानी
जंबू कुमार का विवाह

श्रर्हदास श्रादि चइहु घिरे, उछव हुइ अपार रे ।
मडप घाल्या श्रति रूयडा, सोहि घिर घिर सार रे ॥१॥३९८॥

चन्द्रोया तिहां वांधीया, साधीय पट्टकूल पट्टरे ।
तोरण को रणी श्रति भली, रयण मि ऊब स्वां थहरे ॥२॥३९९॥

कुशम माला तिहां लहि लहि, मह मह परिमल पूर दे ।
भमर भमि तिहां श्रति घणा, परिमल लीणाबे सूर रे ॥३॥४००॥

बाजित्र वाजि ते श्रति घणा, ढोल ददामां नीसांण रे ।
तिवलीय तूर सोहामणा, जाजिय वाजिय जाण रे ॥४॥४०१॥

गीत गाइ वर कामिनि, भामिनी करि रंग रोलरे ।
नृत्य करि वर कामिनि, भाभीय भामणा रंग रे ॥५॥४०२॥

धन धन जननीय एह तणी, धन धन एह तु तात रे ।
धन धन जिणि कुल ऊपनु धन धन एह नी जात रे ॥६॥४०३॥

बंदी जन बिरदालली, बोलिय कुमरनी सार रे ।
लगन तणु दिन श्रावीउ, भावीउ ते तिणी वार दे ॥७॥४०४॥

चपल चंचल श्रश्व चडीय, चालीउ जंबू कुमार रे ।
तिणी चडी श्रति सोभीउ, जाणउ इद्र श्रवतार रे ॥८॥४०५॥

सासुइ कीधां पूषणा, पूरयीउ वर तिणे ठाम रे ।
माहिरामाहि श्राणीउ, श्राचार करीय ते ताम रे ॥९॥४०६॥

हस्त मेलापक तिहां हूउ, हूउ छि जय जय कार रे ।
च्यारि कन्या तिहां परणीउ, जिनदास तणु कुमार रे ॥१०॥४०७॥

दूहा—च्यार कन्या तिहां परणीउ, चिहुं श्रेष्ठीनी ताम ।
हरष धरी हीयडि घणउ, बोलि ते गुण ग्राम ॥११॥४०८॥

ढाल बीजी वीवाउलानी

च्यार कन्या तिणी वार, परणीड जंबूकुमार ।
सुसरि आपी परिद्धि, पामीउ अति घणी सिधि ॥१॥४०९॥

आपीयां माणक मोती, कनक प्रवालां सजोती ।
रयणामि हार दीनार, आपीयां सोवन सार ॥२॥४१०॥

बाजूबंध बिरखी आप्या, रयण संघासन थाप्या ।
सासुए वर वधाव्यु इणी परि, बहू द्रव्य लाव्यु ॥३॥४११॥

सुसरि आप्यु भंडार, आप्सु सार शृंगार ।
अति धण संतोषीए, बोलिय गुण ग्राम तेह ॥४॥४१२॥

जमण जमि मनोहार खाजां लाडूय सार ।
विविध प्रकार पकवान, जमणजमि घणि मान ॥५॥४१३॥

बहूवर दीधी आसीस, जीव जे कोडि वरीस ।
उछव उहित अपार, वाजिभ बाजतां सार ॥६॥४१४॥

दिवसह पश्चिम भाग, चालीउ आणीय भाग ।
च्यार कन्या तब लेई, आव्यु मदिर सोइ ॥७॥४१५॥

मंदिर मचक ताम, बिठउ ते तिणि ठाम ।
धरी मन हरष आनंद, बांध्यु धरमनु कंद ॥८॥४१६॥

दूहा—तिणि अवर अस्ताचल, अस्तज पाम्यु सूर ।
अंधकारि सहू व्यापीउ, कोइ नवि दीसि सूर ॥१॥४१७॥

पदमनी अंकनि चंकमा, विरह करंतु तेह ।
कामी अननि कामिनी, तेह सुं धरतु नेह ॥२॥४१८॥

थिर थिर दीपक प्रगटीया, मन उपयउ तव चंद ।
अंधकार सहू नासतु, करतु उद्योत आणंद ॥३॥४१९॥

स्वजन आदेसि कन्यका, आवी तेह पल्यंक ।
जबूकुमार पासि रही, पामी तेह नु अक ॥४॥४२०॥

प्रथम मिलन

कामाकुल ते कामिनि, करि ते विविध विकार ।
अंग देखाडि आपणां, वली वली जबूकुमार ॥५॥४२१॥

गीत गांन गाहे करी, कुमरउ पाइ राग ।
अधिक वैरागि वासीउ, ते किम पामी राग ॥६॥४२२॥

तिणि अवसर ते चिंतविए, ससार असार ।
सार वस्तु कांइ नही, कामिनी काय मझार ॥७॥४२३॥

दुर्गति दाता कामिनी, बाघिण सापिण एह ।
नव द्वारे अश्रु श्रवितो, ते सरसु सउ नेह ॥८॥४२४॥

जे स्त्री आठइ लाघी धीया, ते नर छूटि केम ।
जउ माया छौडि सही, तु नर छूटि एम ॥९॥४२५॥

ढाल हिंडोलानी—राग मारूणी
परस्पर वार्तालाप

पदमस्त्री सखीया कहि सांभलि मोरी बात ।
बधिर आगि लगांन, जिसु जीविडलारे अघ आगिल जे सु नृत्यु ॥१॥४२६॥

तु इम जाणि तप करी, स्वरगज थांउ देवि ।
तिहां अह्मो देवांगना, जीवड लारे इ सुय कहि ते देवि ॥२॥४२७॥

निस्पल फल मूकी करि जे फल वांछि अन्य ।
ते मूरख कोइ नवि लहि, जीवडलारे चिंतवि आंपणि मन ॥३॥४२८॥

एह ऊपरि कथा कहुं सांभलि तुं कंत सार ।
धनदत्त एकहालिक, जीवडलारे परणीउ एकज नारि ॥४॥४२६॥

ते नारी एक सुत हुउ मरणज पामी नारि ।
वृद्ध पणि बीजी वरी, जीवडलारे कामा कुल तेणी बार ॥५॥४३०॥

एक दिवस सूतां बिन्यि पर्ल्यंक, रात्रि मझार ।
परांग मुखी नारी हुइ जीवडलारे सांभलि तु भरतार ॥६॥४३१॥

प्रथम पुत्र जे तुझ अछि, ते हुनि तुह जमार ।
तु आपण सुख भोगवउ, जीवडलारे एम बोलि ते नारि ॥७॥४३२॥

सबल पुत्र तुझ तणु, मुझ पुत्र करि सेव ।
तु आपणा यु किम मिलि, जविडलारे इणि मारि सुख हुइ हेव ॥८॥४३३॥

कठिन वचन जव सांभली, बोलि धनदत्त बात ।
बस रांखि ग्रह उद्धरि, जीवडलारे ते किम मारीय सुत ॥९॥४३४॥

राज डंड वली ऊपजि, पाप हुइ अपार ।
ए कर्म कीम कीजीइ, जीवडलारे सांभलि नारि विचार ॥१०॥४३५॥

हल आगिल तेहनि धरी, हलनि चउढि तेह ।
इणिमां अंतर मार जे, जीवडलारे काई नहीं हुइ तुझ गेह ॥११॥४३६॥

समीप थकी पुत्रि सुणी सघली तिहुंनी बात ।
शाल क्षेत्र ऊखेडीनि, जीवडलारे बाव सुणी पाबली तात ॥१२॥४३७॥

इसे दृष्टांते बूझव्यु बूझ्यु ते वली बाप ।
निस्फल फल मूकी करी, जीवडलारे कुण वंछि संताप ॥१३॥४३८॥

स्वाधीन सुख मूकी करी, स्वरस वांछि जे सार ।
ते हालि कसम जाणीइ, जीवडलारे तिम आपउ एह कुमार ॥१४॥४३९॥

वचन सुणी नारी तणां, बौलि जंबू कुमार ।
एह समु मुझ कांई करू, जीवडलारे सुणु एक कथांतर सार ॥१५॥४४०॥

विंध्याचल मोटु गज मरणज प्राम्यु एक ।
नदीय नीरि ताण्यउ वली, जीवडलारे काखि छिवाउ सेक ॥१६॥४४१॥

ते ऊपरि एक वायस विठउ, ग्रामिख लोभ ।
समुद्र माहि जाई पड्यु जीवडलारे पामी अति घणउ लोभ ॥१७॥४४२॥

करां करां करि घणु जीवानि नही लाग ।
गज वायस विन्यि पड्या जीवडलारे समुद्र मध्यि विभाग ॥१८॥४४३॥

मास लोलप वायस मूउ पडीड समुद्र मझार ।
तेह सरीखु हू नही, जीवडलारे नहि पड्यु एणि संसार ॥१९॥४४४॥

कनकश्री बोली वली सांमलि कत मुझ बात ।
कैलासगिर थी वानरि, जीवडलारे कीउ वली झपापात ॥२०॥४४५॥

शुभ ध्यानि ते वली मउ, विद्याधर हुउ चंग ।
एकदा मुनिवर वांदीया जीवडलारे तिणि भव कहु मन रंग ॥२१॥४४६॥

एकदा स्त्री सहित सु, आव्यु तेणि ठाम ।
पूरव कथांतर स्त्री कही, जीवडलारे मरण करु एणि ठाम ॥२२॥४४७॥

वचन सुणी भरता तणां, रदन करि वली नारि ।
स्त्रीय निखेधउ ते पडउ, जीवडलारे कपि हूउ प्रौढि अपार ॥२३॥४४८॥

स्वीकीय सुख मुकी करी, वाछि देवज सुख ।
ते नर गजनी परि जीवडलारे प्रामि अति घणु दुख ॥२४॥४४९॥

ते नर सरखु हू नही, सांमलि नारि विचारि ।
विध्याचल पर्वत भलु, जीवडलारे वानर एक उदार ॥२५॥४५०॥

कामातुर पीड्यु सही जे, अचि वानरी पुत्र ।
तेहनि मारि ते वली, जीवडलारे प्रजांपति रह्य, एक सूत्र ॥२६॥४५१॥

ते कपि यौवन प्रामीउ, जननी सुकरि संग ।
वृद्ध वानर तिणे देखीउ, जीवडलारे जुध करतां प्राम्यु भंग ॥२७॥४५२॥

ते पूठि वानर थउ, नाग वानर वृष ।
गहन वन माहि जाई रह्य, जीवडलारे नीसरू तेह प्रबंध ॥२८॥४५३॥

क्षुधा तृषा पीड्यु वली सरोवर प्राप्यु तेह ।
पक माहि रकतु वली, जीवडलारे प्रामीउ मरणज तेह ॥२९॥४५४॥

बिषायतुर जे नर हुइ, कपि मरि यामि मृत्यु ।
विषय कर्द्‌म माहि पड्यउ, जीवडलारे हु नही कएसी कात ॥३०॥४५५।

विनयश्री बोलिइसु साभलि तुं मुझ कंत ।
संखनाम दारिद्री एक, जीवडलारे दरिद्रं करि रे एकांत ॥३१॥४५६॥

उदर भांटउ देई घणउ. दिन दिन दमकउ एक ।
एकठउ करी मुइ खेपवि जीवडलारे नवि खाइ कांइ ते रंक ॥३२॥४५७॥

तिणि वन को एक नर रूप टंका भूइ मध्य ।
घातीनि यात्रा गउ, जीवडलारे दरिद्री लही पाम्यु सिधि ॥३३॥४५८॥

लोभ थकी दरिद्री तिहां पुनपि खेम्यु ताम ।
यात्रा करी पूरव नर, जीवडलारे काढि लेउ गउ ताम ॥३४॥४५९॥

स्त्रीनु वचन लेई करी, खणवा लागउ ठाम ।
पुनरपि कुंभ सोनी भरयु, जीवडलारे प्रामीउ तेणि ठाम ॥३५॥४६०॥

लोभ थकी तिहां खांतीउ, प्राम्यु हरखज तेह ।
वन संचित पूरव धन, जीवडलारे वली भोगवुं एह ॥३६॥४६१॥

कष्ट करी दिवस प्रति दम कु मूकि एक ।
धूरत एक देखीउ जीवडलारे गलबी सेइ गउ छेक ।।३७।।४६२।।

एक दिन तिणि जोइउं गलु देखु सर्व ।
दुख करिते मतिघणु जीवडलारे पूरब गयु मुझ द्रव्य ।।३८।।४६३ ।

द्रव्य लह्या विलसि नहीं, लहु नवि भोगवि सुख ।
लोभ थकी सखनीं परि, जीवडलारे ते नर प्रामि दुख ।।३९।।४६४।।

वस्तु—तेण अवसर तेण अवसर जंबू कुमार ।
सुणीय वचन वली बोलीउ सामानि नारी मुझ बात ।
ते सुरसुहं नवि अछु करू नहीं संसारपात ।
ए कथांतरि तुझ कहु सांभलि नु वलि नार ।
सार सौक्ष जिम भोगवु संसृत पामु सार ।।१।।४६५।।

राग रामिरी

सांमलि नारि एक कथा रे, लुब्ध दत्त एक सार ।
एक दिवस व्यापार गउ रे, चाल्यु आव्यु वन माहि रे ।
भवीयण धर्म्म करू एक सार, धरमि सिव सुख पांमीइरे ।
धरमि अरथ भंडार रे, प्राणी धर्म्म करू एक सार ।।१।।४६६।।

वणिक पूठि एक गज थउरे, यम रूपी तेह जाण ।
वणिक नासी ते आवीउरे, कूप कांठि ते सुजाण ।।२।।४६७।।

कूप तढि,एक वट वृक्ष रे, वउवाई साई तेह ।
मूषक कालु ऊजलु रे, वडवाई कापि वेहरे ।।३।।४६८।।

चितातुर श्रेष्ठी हुइ रे हुय कंइ हवि केम ।
कष्ट पड्यु दुःख भोगवुरे मरण पाम्यु वली ए परे ।।४।।४६९।।

हेठउ तिण जब जोईउरे, आजगिरि देख्यु ताम ।
चिहुं पासे सर्प देखीयारे, कसाय रूपी एह नाम रे ।।५।।४७०।।

इसीय चिंता माहि पड्यउरे, गज आव्यु तिणि ठाम ।
आवीय वट हलावीउरे, मधउ पड्यु मुखह ताम रे ॥६॥४७१॥

मक्षिका ऊडी अति घणी रे, आवी लागी तास देह ।
दुख देई ते अति घणां रे, कुण सहि दुख तेहरे ॥७॥४७२॥

तिणि अवसर एक खगपतीरे, आव्यु तेणि ठाम ।
कष्ट पड्यु नर देखीउ रे, बोलि विद्याधर ताम रे ॥८॥४७३॥

सांभलि नर इहां थकी रे, काढु तुम्हनि हेव ।
परवस दुख कांई भोगवी रे, इसुअ कहि तेणि खेचरे ॥मधी॥९॥४७४॥

मधु विंद लोभि लोलिउरे, वांछि बीजी वार ।
तां लगि रहु तम्हे खगपति रे, इसुंय कहि निरधार रे ॥१०॥४७५॥

वचन सुणी खग बोलीउरे, सांभलि मूढ गमार ।
मधु विंदु सुखकरी लेखविरे, दुख न देखि अपार रे ॥११॥४७६॥

बिंदु बीजु मुख नवि पडि रे, तुरषा तुर बली तेह ।
दुख घणा पामीउ रे, खग गउ आपणि गेह ॥१२॥४७७॥

वडवाई कापी मुख किरे पडीउ कूप मझार ।
पडतु गिरि ते गल्यु रे, दुख सह्यां अपार रे ॥१३॥४७८॥

लवलेस सुख कारणि रे, दुख न जाणि गमार ।
एणि संसार नहू पडउं रे, नारि सुणु विचार रे ॥१४॥४७९॥

रूपश्री एसु बोलीउ रे साभलि कंत मुझ बात ।
एक कथा कहुं रूयडी रे, सर्प्प तणी विख्यात रे ॥१५॥४८०॥

एक दिवस मेघ आवीउरे गाज बीज करी आर ।
सात दिवस वृष्टि करी रे, बोडी हुई पक्षि धार रे ॥१६॥४८१॥

क्षुधा पीड्यु एक नीसरयु रे कोट बाहिर चकलास ।
ममता देखीउ रे महा भुयंगम वासरे मवीयण धर्म करु एक सार ॥१७।४८२॥

चल चपल जिह्वा अछि रे, मेल्हतु विष तणी झाल ।
कुंडल वाली जब रह्यु उ रे, जाणउ एह्ज काल रे ॥१८॥४८३॥

देखी कार्किडउ चितविरे, ए आगिल जीव केम ।
इसुय चिती ते चालीउरे, नकुल तिणि छिद्र एमरे ॥१९॥४८४॥

पूठि थकी अहि चालीउरे, ते गउ छिद्रज माहि ।
चकलास पाम्यु मूंकीउरे, नकुल तणि गउ गेहरे ॥२०॥४८५॥

नकुलि अहि तव मारीउ रे, भक्ष कर्यु तणि ठाम ।
चकलास पाम्यु मूंकीउरे, सर्प्प पाम्यु दुःख ताम रे ॥२१॥४८६॥

स्वाधीन सुख नवि भोगवि रे, ते नर प्रामि दुःख ।
सर्प तणी पिरि अतिघणां रे, कांइ नव पामि सुख रे ॥२२॥४८७॥

ते सरषु स्त्री हुं नही रे, बोलि जंबु कुमार ।
शीयाल कथा कहु रूयडी रे, सांभलु तम्हो सहू नार रे ॥२३॥४८८॥

दूहा—जबुक एक रात्रि वली आव्यु नगर मझार ।
वर्ला वई एक देखीउ, मरण पाम्यु एक वार ॥१॥४८९॥

मंस लोलप सीयालीउ, बलद पंजर मध्य भाग ।
मांस खाई तिहां रह्यु, नवि लह्यु रात्रि विभाग ॥२॥४९०॥

दिनकर ऊग्यु जाणीउ, जावानि नहीं लाग ।
पंच सात जोवा मिल्या, न लहि जावा माग ॥३॥४९१॥

हृदय मांहि इम चिंतवि, खूटउ मुझ तणु आयु ।
रजनी माम् जु किमि तु राखु, वली काय ॥४॥४९२॥

एक पुरुष तिहां आवीउ, लीधां करणनि पूछ ।
दत पाडि वींजि लीया, वसीकरण तिणि अछि ॥५॥४९३॥

जीवत आम्या परहरी, मारयु ते मीयाल ।
स्वान वायस भक्षण करयु, तव पाम्यु वली काल ॥६॥४९४॥

विषयासक्त जे नर हुइ ते सहि दुख अपार ।
नरक तिर्यंच माहि रलि, कहां नवि लहि सुख सार ॥७॥४९५॥

ढाल थूल भद्रनी—राग वेशाख

एक अवसरि रे विद्युच्चर आव्यु वली, काम लता रे घिर थी रात्रि मनरली ।
पुर भमतुरे आव्यु जबू घरि भणी, जिहां सुतुरे नारी सुकुमार सुणी ॥१॥४९६॥

धन देखी रे मनमाहि चित रही, धन लेवु रे एह तणु चिति सही ।
तिहां सांभली रे कथा तिहुनी अति घणी, विस्मइ प्राम्यु रे चोर मनसुते सुणी ।२।४९७।

तिणि अवसर रे माय आवी कुमर तणी, संवेग धासु रे तप लेई जाइ वन भणी ।
इसु जाई रे माता तिहा रही, देखउ प्रभवु रे माताइ तिहां सही ।३।४९८।

पूछिउ कुण रे चोर छउ माता हू वली, आव्यु चोरी रे करवा प्रभवु कही रली ।
धन लेउ रे नगर तणा उमि अति घणउ, तुझ मिंदर रे धन लेवा आव्यु सुणु ।४। ४९९।।

बोलि जिनमती रे जे जोइ लेउ तम्हो, विप्र चित रे कांइ अछु माता तम्हो ।
मुझ पुत्र रे एक छि भाई तम्हो, सुणु दिक्षा ले वारे ऊपरि भावछि अति घणु ।५।५००

इणि कारण रे विप्र चित्त घणी अछउं, तिणि कारण रे वार वार रे जोउं अछुं ।
बोलि प्रभवु रे विद्या मुझ कनि घणी, मोहस्तभन रे मेलापक भजन तणी ।६।५०१।

दिघि दर्शन रे सुप्त प्रबोधन अंजन, केम रूठा रे केम मनावीइं भंजन ।
मुझ विद्या रे जु मोह पाडउ एवली माय, मावीरे तुम कहि इसु सांभली ।७।५०२।

पुत्र पूछि रे कुण कारण आव्यां इहां, तुझ मांमुरे दिवस घणे आव्युउ इहां ।
लीधउ प्रभवि रे वेस वणिकनु अति भलु, आव्यु मंदिर रे माहि बिठउ एकलु ।८।५०३।

कुण ठाम थी रे प्राव्या मामा तम्हे कहु, बोलि प्रभवु रे सांभलि बोणेजहुं कहु ।
धणउ भमीउ रे व्यापार कारणि हुं वली, तुझ आगिलइरे कहु सांभलु मन रली ।९।५०४

ढाल

विभिन्न देशों के नाम

मन रलीय भमीउ उत्तर दक्षण पूरव पश्चिम ए दक्षि ए ।
करणाट सिंघल द्वीप केरल देश चीणक ए दिशि ।
कुंतल देस विदर्भ जन पद सह्य पर्वत प्रामीउ ।
नर्बदा नारि विंध्य पर्वत तिहां प्राव्यु मामीउ ॥१॥५०५॥

भरुयच पाटण आहीर कुंकण देस कछि प्रावीउ ।
सौराष्ट्र देसि किष्कंध नगरी, गिरनारि पर्वत भावीउ ॥२॥५०६॥

नेम निर्वाण जिहां पाम्या राजीमतीइ तप ग्रही ।
तिहां प्रावी जिणवर पाय प्रणमी, मानव भव सफल ग्रही ॥३॥५०७॥

अर्बुदाचल मेवांड देस लाड मरहठ पामीउ ।
चित्रकोट गुजराति देस मालव देशि कामीउ ॥४॥५०८॥

कासमीर करहाट देस विराट हुं भम्यु अति घणउ ।
परिभ्रमण कीधां द्रव्य कारणि, पार न पाम्यु तेह तणु ॥५॥५०९॥

चालि

बोलि प्रभवु रे सांभलि जंबू तुझ कहुं इणि संसार रे सुख दुर्लभ जीव सहू ।
सुख प्रामी रे भोगवि जे पुरख नही, ते प्रामी रे दुख सहि इहां रही ॥१॥५१०॥

तप लेई रे परलोकि सुख लहि ते मूरख रे कांइ न जाणिइ सुं कहि ।
जीव पारधि रे सुख दुख कुण भोगवि, जीव पाखि रे पुण्य पाप कुणसमवि ॥२॥५११॥

देह माहि रे पंच भूते जीव हुवउ, पंच भूते रे गई जीव तिहां चवउ ।
इम जांणि रे पुण्य पाप को नवि लहि, इसु जाणि रे संसार सुख मोक्ष कहि ।३।५१२॥

परस्पर वार्तालाप

बोलि जंबू रे सांभलि प्रभवा तुझ कहुं, तु एह देह रे पंच भूते करी सहुउ ।
माता पिता रे वाधिए देह मनि हूउ, कुंभ नीपनु रे पंच भूते करी इम कहुं ।४।५१३।।

तुं ज्ञानी रे ए कुंभ काइंसि नही जीव मोहि रे संसार माहि पडि सही ।
जीव धरमि रे स्वरग सुगति लहि वली ।
जीव पापि रे नरक दुख भोगवि भली ।।५।।५१४।।

जीव पाखि रे सुख दुख कुण भोगवि, जीव पाखि रे पाप पुण्य कुण संभवि ।
बोलि जंबू रे पूरव भव सहू थापणा मि पूरवि रे सुख दुख सह्यां घणां ।।६।५१५।।

कहि प्रभवु रे सांभलि जंबू तुझ कहूं, एक उटि रे वन भमता कूप लहुं ।
कूप कांठि रे भव ऊजालु वृषि अछि, तिहां ऊंची रे मक्षक च लगी देह पछि ।।७।५१६।।

मधु भक्षणु रे कीधु करभि मन रली, धावेइ रे जेतलि तेहुज वली ।
कूप मध्यि रे पडीउ तेहज बापडउ, मधु लौभि रे मरण प्राम्युं उंटडउ ।।८।५१७।।

दुख सहीयांरे अति घणां तिणि प्राणीइ इसु जाणी रे संवर मन माहि आणीइ ।
बोलि जंबू रे सांभलि प्रभवा ए तुझ कहूं एक वाणीउरे व्यवसाय करि बहू ।।९।५१८।।

चडावु

व्यवसाय वणिक एक चालयु देस देसि ते भमि ।
लोभिय लीणउ तेह प्राणी दुख घणां ते खमि ।।
सहस्र हूउ लाख वांछि लाख नु घणी कोड ए ।
कोड पामी राज पाम्युं तुहि तृपति न ओडए ।।१।।५१९।।

पंथी जातां तृषा पीडउ जल किहां किम मिलउ ।
अरण्य पडीउ इसुं चिंति केमइ हांथी नीकलउ ।
नीसरउ जे तलि चोर देखउ मूसीयचन सहुइ लीउ ।
तृषां पीडिउ रात्रि सूतां स्वपन माहि जल पीउ ।।२।।५२०।।

आव्यु रे जे तलि कांइ न देखि, किहां सर किहां जल ।
जिह्वा रे स्वादन करि प्राणी कांइ नवि लहि बल ।
जिह्वा रे स्वादस वरस तेहनी तृषा तेहनी नवि गई ।
तृषा पीडइ मरण पांम्यु दुख भोगवि तिणि सई ।।३।।५२१।।

दूहा—विद्युच्चर इम बोलीउ सांभलि जंबू कुमार ।
वणिक एक तस कामइनी यौवन प्रामी सार ।।१।।५२२।।

निज द्रव्य लेई नीकली मिलीउ धूरत एक ।
स्नेह बांधी तेह सुवली सुख विलसि अनेक ।।२।।५२३।।

तिहां रहती वली अन्य सुं लब्द हुइ तिणीवार ।
विहू सरसां सुख भोगवि को नवि जाणी पार ।।३।।५२४।।

जरि वृतांतह जाणिउ कपट धरी मन माहि ।
पूर्व वृतांत तलवर कही मन सुं धरी अति दाह ।।४।।५२५।।

आजि रात्रि तम्हो आव जो, लाभ हसि मुझ गेह ।
इंसु कहीय घिर आवीउ, सयन सूतु वली तेह ।।५।।५२६।।

कामाकुल ते कामिनी, सूती सिज्या जई सार ।
तिहा धूरति सहू देखीउ, स्त्रीय चरित्त तिणि बार ।।६। ५२७।।

रात्रि संकेति आवीउ, नगर तणु रक्षपाल ।
नगर लोक जागवतु, आव्यु तिहां कोटपाल ।।७।।५२८।।

जार सिप्या थी ऊठी करी आवी धूरत पास ।
तल रक्षक वली आवीउ धूरत तणि आवास ।।८।।५२९।।

आवी धूरत बोलीवीउ कुण अछि तुझ गेह ।
हुं नवि जाणउ बोलीउ कोई अहउ वली तेह ।।९।।५३० ।

मुष्ट मुष्ट करी बांधीउ जार अह्यु तिणि ठाम ।
राजभय थी नीकल्यु, धूरत स्त्री लेई ताम ।।१०।।५३१।।

नदी कांठिथि आवीया धूरत चिंति एम ।
एह मूकी वसु लूटीनि चिंति आउ केम ॥११॥५३२॥

सांभलि स्त्री तुझ हुं कहुं, द्रव्य हुइ वली जेह ।
मुझ हाथि आपु तम्हे, पछि उतारू एह ॥१२॥५३३॥

लोभ पणि वसु आपीउ, धूरत पाम्यु सुख ।
एकाकिनी मूकी तिहां रदन करि धरि दुख ॥१३॥५३४॥

एतलि एक सियालिणीं मांस धरी मुख एम ।
रही रही जोइ तिहां हवि करसिए केम ॥१४॥५३५॥

मास मूकी पूठि थई मछ गउ थल ठाम ।
मछ मांस लेइ गउ, रही रही जोइ ताम ॥१५॥५३६॥

हे नारी तिसुं करूं निज मारी भरतार ।
जैसा थि तुं नीकली, ते गउ तुझ जार ॥१६॥५३७॥

नारी संबुक प्रति कहि मुझ थुं डाह पण तुझ ।
उभय भ्रष्ट हुई वली किसुंय कहुं वली मुझ ॥१७॥५३८॥

वस्तु—तेण अवसर तेण अवसर जंबू कुमार ।
विद्युच्चर प्रति बोलीउ सांभलि माम्।मुझ बात ।
अबती जंबुक ते सम्बु कांई तु मुझ बात ।
ए संसार असार छिइ सु जाणु सहू कोइ ।
एक कथा कहु रूयडी सहू सांभलु तम्हो लोइ ॥१॥५३९॥

ढाल आणंदानी

जंबु स्वामी बोलीउ आणंदानी
सांभल प्रभवा बात तु वणिक एक वाहण चड्यु ।
द्रव्य लेइ सघाततु ॥आ०॥१॥५४०॥

विविध वस्तु लेई करी ।आ०। द्वीपांतर गउ तेह तु ।
वस्तु वेची तिहां आपणी ।आ०। विविध वस्तु लीधी तेह तु ॥२॥५४१॥

हस्ती घोडा अति घणां ।भ्रा० अणि अणक सीया ताम तु ।
मनसु चिंति घर जई ।भ्रा०। भोगवु राजनि ग्राम ।।३।।५४२।।

रतन पाम्यउ अति ऊपजउ ।भ्रा०। हरषहूउ मन माहि तु ।
बांहण पूरी निज आपणा ।भ्रा०। आवीउ समुद्रह माहि तु ।।४।।५४३।।

समुद्र माहि जब आवीउ ।भ्रा०। रतन पडउ तिणि बार तु ।
हा हा कार तिहां हूउ ।भ्रा०। दुख करि वारो वार तु ।।५।।५४४।।

वांहण खेडि ते नाउडी ।भ्रा०। तिहुं प्रति बोल्यु साह तु ।
वाहण राखउ तम्हो आपणउ ।भ्रा०। रतन पड्यु जल माहि ।।६।।५४५।।

ते जोउ तम्हो इहा रही ।भ्रा०। बोलि नौ खब तामतु ।
साथ लहूउ ए बाणीउ ।भ्रा०। किम लाभि रत्न एणि ठामतु ।।७।।५४६।।

वायवेग वांहण जाइ ।भ्रा०। समुद्र अछि अपार तु ।
रत्न पड्यउं इहां किम जाडि ।भ्रा०। मूरख तुं य गमार तु ।।८।।५४७।।

तिम ससारह जलनिधि ।भ्रा०। माणस जन्म ए रत्न तु ।
हस्त थकी जब ए गयु ।भ्रा०। नव लहीइए नर रत्न तु ।।९।।५४८।।

वचन सुणी चोर बोलीउ ।भ्रा०। सांभलि जंबू कुमार तु ।
विंध्याचल एक भील रहि ।भ्रा०। पारधि करि रे अपार तु ।।१०।।५४९।।

उष्ण कालि गज आवीउ ।भ्रा०। पांणी पीवा सर ताम तु ।
बांण मूकी तिणि भीलडि ।भ्रा०। मारीउ गज तिणि ठाम तु ।।११।।५५०।।

सर्प डसु भील मूउ ।भ्रा०। धनुषि मूउ तव काल तु ।
तिणि स्थानिक ते त्रण पड्या ।भ्रा०। एतलि आव्यु सीयाल तु ।।१२।५५१

हस्ती भिल्ल अहि देखीउ ।भ्रा० धनुष देखु तिणि ठाम तु ।
हरष हूउ सीयालीया ।भ्रा०। भक्ष प्राम्यु घणुं ताम तु ।।१३।।५५२।।

षट मास ए रत हुसि ।प्रा०। मास एक मांनव जाण तु ।
एक दिवस ए प्रहि प्रछि ।प्रा०। मन चिंतिए तु प्रयाण तु ।।१४।।५५३।।

भाग्यवंत जीव मुक्त सयु ।प्रा०। को नही एणि संसार तु ।
प्रबल्ल वनुष मराए मच्छु ।प्रा०। ए सहू पछि आधार तु ।।१५।।५५४।।

धनुष प्रत्यंचा खाइतां ।प्रा०। तालुउ फूटउ तेह तु ।
मरण पांम्यु ते बापडउ ।प्रा०। दुख तण्या हुउ गेह तु ।।१६।।५५५।।

विद्यमान सुख परहरि ।प्रा०। जे वांछि स्वर्ग सुख तु ।
लोभ थकी ते बापडउ ।प्रा०। प्रति घणा प्रामि ते दुख तु ।।१७ ।५५६।।

वचन सुणी ते बोलीउ ।प्रा०। जंबू नाम कुमार तु ।
सांभलि प्रभवा तुझ कहुं ।प्रा०। कबाडी एक निराधार तु ।।१८।।५५७।।

काष्ट वेचिते प्रति घणां ।प्रा०। दिन दिन पर ति तेह तु ।
कष्ट करी उदर भरि ।प्रा०। एकदा वन गउ तेह तु ।।१९।।५५८।।

उष्ट काल पीड्यु घणउ ।प्रा०। लेई लेई प्रावि काष्ट तु ।
ताप पीड्यु ते प्रति घणु ।प्रा०। प्रावीय सुतु ते वाट ।।२०।५५९।।

स्वपन माहि तिणि देखीउ ।प्रा०। जाणि भोगवु राज तु ।
राज लीला करुं प्रति घणी ।प्रा०। वली करुं आपणुं काज तु ।।२१।५६०।

छत्र चमर वली भोगवुं ।प्रा०। सिंहासन रहुं ताम तु ।
सेवक बहु सेवा करि ।प्रा०। भोगवुं देस ग्राम तु ।।२२।।५६१।।

राजपुत्री वली भोगवुं ।प्रा०। भोगवुं सोक्य प्रपार तु ।
स्वपन माहि ए सुख देखतु ।प्रा०। जगवु स्त्रीइ भरतार ।।२३।।५६२।।

जाग्यु नवि देखि कोइ ।प्रा०। कोप हुउ तेणी वारतु ।
स्वपन सुख जे देखीइ ।प्रा०। ते नवि कांइ सार तु ।।२४।।५६३।।

कृष्ण वर्णी अति बीखणा ।म्रा०। दीसती विकराल तु ।
इसी स्त्री भ्रामिल रही ।ग्रा०। फावडीइ देखी तिणि काल तु ।।२५।।५६४।।

कोप करीनि बोलीउ ।भ्रा०। कांइ अणाव्यु रंड तु ।
दुख करि मनसु घणु ।भ्रा०। वस्त्र तणु नहीं खंड ।।२६।।५६५।

स्वपन सरीखां जाणवां ।भ्रा०। संसार तणांए सुख तु ।
जे नर नारी मोहिया ।भ्रा०। ते नर पामि दुख तु ।।२६।।५६६।।

दूहा—वचन सुणी चोर बोलीउ, सांभलि जंबू कुमार ।
नृत्य कला एक पूरीउ, नाटक कीउ एक सार ।।१।।५६७।।

एक दिवस राय मंदिरि वेश्या लेई बहुत ।
नृत्य करि तिहां रूयडउ हाव भाव संयुक्त ।।२।।५६८।।

विलास विभ्रम करि घणा, देखाली बली नेह ।
लोक तणा मन रीझवि, नृत्य करतां तेह ।।३।।५६९।।

संतु बउ राजादिइ कणक कंचण दीनार ।
मणि मुक्तफल अति घणा, नृपति देइ तिणि बार ।।४।।५७०।।

राजा सनमान लही सुख विलसि घणं उ तेह ।
रजनी सूतां चेतवि, द्रव्य लेई जाउं एह ।।५।।५७१।।

द्रव्य लेई जब नीसर्‌यु, ग्रहीउ अन्य संघात ।
लुष्ट मुष्ट करी बांधीउ, पाम्यु अति घणउ घात ।।६।।५७२।।

राज डंड राजा दीउ. पाम्यु दुख अपार ।
लोभ करि जे लोभीउ, इणी परि दुख भार ।।७।।५७३।।

ढाल साहेलडीनी (राग धन्यासी)

वचन सुणी तब बोलीउ, जंबू संभलि प्रभवाहो बात ।
नयर वाणारसी राय लोकपाल, तेहनी छि बहू भात ।।
साहेलडी बोलि जंबू कुमार, एह संसार असार ।।सा०।।१।।५७४।।

तस थिर राणी रूपनी खाणे, कमला तेहनुं नाम ।
नव यौवन पुरी ते नारी, काम बाणे पीडी ताम ।।सा०।।२।।५७५।।

आठ मद करी पूरी राणी, नवि आणि कांई विवेक ।
निर्लज नारी कुलनी खांपण, आणि मति वणु एक ।।सा०।।३।।५७६।।

एकदा धाव प्रति कही राणी, माय जोउ मुझ अंग ।
काम बाणे मुझ पीडी काय, प्राम्याछि प्रति घणउ भंग ।।सा० बोलि ।।४।।५७७।।

को एक पुरष इहा तम्हे आणउ, आणीनि मुझनि मेलु ।
वचन सुणी दासी इम बोलि, जे कहि ते तुझ मेलु ।सा० बोलि ।।५।।५७८।।

रूपि करी काम सरीखु नीसरयु अग्र विभाग ।
स कोमल अंग अनोपम काय एं, अछि तेडवा लाग ।।सा० बोलि ।।६।।५७९।।

नव यौवन पूरू सुंदर रूप स्वर्णकार चग नाम ।
ते देखि मन विह्वल हूउ एह्वा तेडउ एणि ठाम ।७।।५८०।।

धात्रिका जाई तेडीउ तेह आणीउ राणी पास ।
राय तणी सेज्या जब मूंक्यु पूरसि ए मुझ आस ।।सा० बोलि ।।८।।५८१।।

स्नान मज्जन चंदन पुष्प पिहरी, लेई सार शृंगार सजथई जब ।
आवी हो रांणी वाजित्र वांगा तब ।सा० बोलि ।।९।।५८२।।

छत्र चमर सामंत सहित, अवीउ राजा हो ताम ।
चंग लेई संचारीइ नाख्यु गुप्त राखउ तेणि ठाम ।।१०।।५८३।।

राणीनि मंदिर राय पधार्या, भोगवि सौख्य अपार ।
षट मास चग रह्यु तेणि ठाम, भोगवि दुखनु भार । सा० बोलि ।।११।।५८४।।

पांडु रोग दुरगंध शरीर, पामीउ तेहनु अंग ।
राय आदेसि सोधाउ कुंड, जखखाल नीसर्यु चंग ।।सा० बोलि ।।१२।।५८५।।

मंग पखालउ नदी आइ तेथि, आवीउ नगर मझार ।
पांडुरोग जब देखिउ, लोके विस्मय प्रामीया भार ।।सा० बोलि ।।१४।।५८६।।

क्षीण गात्र जब दीखीउ, लोके पूछइ हो तेहूनि ताम ।
एतला दिवस कहि रया, भंग ते कहु भमनि ठाम ।।सा० बोलि ।।१५।।५८७।।

पाताल कन्या लेई गई, मुझनि तिहां रहुं षट मास ।
इम कहीनि ऊतर भाप्युं, भवीउ निज भावास ।।सा० बोलि ।।१६।।५८८।।

स्नान भोजन करी हुउ सुरूप, प्रामीउ रूप भनंग ।
पुनरपि रांणीइ देखीउ भंग, नेह पाम्यु घणउ रंग ।।सा० बोलि ।।१७।।५८९।।

पूरवलीपिरितेडीउ तेह, बोलीउ सोवन कार ।
तुझ विर भोगव्या जे भोग सार, सांभलि ते मुझ भपार ।।सा० बोलि ।।१८।५९०।

इसुय कही विर भावीउ, तेह नवि मान्यु तेणि ।
बोल जे परनारी लंपट पुरुष, नयर माहि करि रंग रोल ।।सा० बोलि ।।१८।५९१।

नरक तिर्यंच गति उल्लंघी प्रामीउ माणस जन्म ।
भोग इछा नवि नीगमउ, ए हइसंुय जाणे तम्हे मर्म ।।सा० बोलि ।।२०।।५९२।।

भचल मेरचु चालवु मांडि तुं नवि चलि मुझ चित्त ।
पूरवलु सूर पश्चिम ऊगितु, मन नवि भामि भंग ।।सा० बोलि ।।५९३।।

हस्तनागपुर संवर राजा, तेह तणु पुत्र एह ।
विद्युप्रभ तम्हे नामि जाणउ, भासन भव्यछिदेह ।।सा० बोलि ।।२२।।५९४।।

पद्मश्री भादि च्यार नारी, ते पण हुई निरास ।
पंचसि चोर सहि तसु. प्रभवु, तेणे मूंकी वली भास ।।सा० बोलि । २३।।५९५।।

ज्ञानी करी प्रभवु प्रति बोध्यउ, प्रति बोधी च्यार नारी ।
पंचसि चोर तिहां प्रति बोध्या, मात तात तिणी वार ।।सा० बोलि ।।२४।।५९६।।

दूहा—तिणी अवसर उदयाचलि, उदय पाम्यु तव सूर ।
राय रहित कुमरनि, जोवा आव्यु पूर ॥१॥५९७॥

सिय्या कुमर मूकी करि, करि सामायक सार ।
केतला पडि कमणु करि, केवि जंपि नवकार ॥२॥५९८॥

अधिक वैरागि वासीउ, इहां रहिवा नही लाग ।
वन जाई दिक्षा लेउं, करुं हूं जीवनु माग ॥३॥५९९॥

इसुय जाणी थिर थकी, आव्यु श्रेणिक पास ।
हरष हूउ हीयडि घणउं, प्राम्युं मन उल्लास ॥४॥६००॥

वाजित्र वांगा अति घणां, को नवि लाभि पार ।
मुकट कूंडल बाजूब हरसा पहिराव्या कुमार ॥५॥६०१॥

सिबका आणी रूयडी, विसास्यु तिणी वार ।
नगर लोक राय सहित, सुं चाल्युं जम्बूकुमार ॥६॥६०२॥

कुमर चाल्यु तव जाणीउ आवी जिन मती माय ।
दुखि रुदन करि घणु, वली वली लागि पाय ॥७॥६०३॥

ढाल बलभद्रनी—राग वेलाउल

बिलवि ते पुत्रहू एकली तुझ विण रहि उ न जाय ।
तुझ विण उद्दस एस हूइ, सुय कहि वली माय ।
बोलि माय पुत्र पाछावलु, ए दिक्षानु नहि काल ।
तु सुंदर नान्हु अछि दीसतु सकोमाल ॥बोलि ॥१॥६०४॥

पुत्र आगिल माता रही करि रूदन अपार ।
बार बार दुख धरि करि मोह अपार ॥बोलि ॥२॥६०५॥

सीयालिसी काजलि बन रहिवउ न जाइ ।
वत ताढि तिहां खड खडि किम रहिसि हो काय ॥बोलि॥३॥६०६॥

पाए मणू हांणे चालवुं ऊपरि सूरज ताप ।
तपती वेलू तपती सिला किम सहि सुहो बाप ।।बोलि।।४।।६०७।।

वरषा काल वरसा तनी किम सहि सुहो धीर ।
झाझावात बाइ घणा किम रहिसु निरधार ।।बोलि।।५।।६०८।।

छह आवस्यक दोहिला महाव्रत पंच ।
अठावीस मूल गुण दोहिला दोहिलुं तेहनु संच ।।बोलि।।६।।६०९।।

जल विण किम रहि माछली तिम तुझ विण पुत्र ।
मुझ मेहली बीसासीनि कांइ जाउ वन सुत ।।७।।६१०।।

परभव दव पर जालीया, किमि दीधी हो आव ।
किमि मुनिवर दूहव्या किवि छोहां हो बाल ।।बोलि।।८।।६११।।

हाहाकार करि घणुं करि रुदन अपार ।
अश्रुपात करि घणुं करि विविध विकार ।।बोलि।।९।।६१२।।

मूरछा वस धरणी पडी करी भाणा हो बाय ।
मूर्छा वाली तेहनी सावधान हूउ तस काय ।।बोलि।।१०।।६१३।।

पुत्र कहि माता सुणु ए संसार असार ।
दिया लेवा मुझ देउ, कोई करु अंतराय ।।बोलि।।११।।६१४।।

दर्शन ज्ञान चरित्र बिना नवि लहीइ मोक्ष ।
माता मुझ मा वारसु, मां धरसु हो रोष ।।१२।।६१५।।

हेतु दृष्टांत वेह घणा प्रति बोधी मात ।
सासु सुसुरा बूझवी प्रति बोधी हो तात ।।१३।।६१६।।

आदेस लेई माय नु चाल्यु, राय संघात ।
लोक सवे तिहां चालीया, बोलता बहू वात ।।बोलि।।१४।।६१७।।

दूहा—वाजित्र वाग्या अति घणा, वंदी जन जयकार ।
हरष हुउ हीयडि घणउ, को नवि लाधि पारि ॥१॥६१८॥

तिहां थी वली आवीउ नंदन वनह मंझार ।
सोधर्म्म स्वामी प्रणमीनि विठउ जंबू कुमार ॥२॥६१९॥

नगर लोक सहू आवीया, आव्यु श्रेणिकराय ।
त्रण प्रदक्षणा देइनि, विठउ प्रणमी पाय ॥३॥६२०॥

अवसर पामीनि वली, बोलि जंबूकुमार ।
स्वामी मुझ दिक्षा देउं, ऊतारू भवपार ॥४॥६२१॥

इसु कहीनी तिहां रहुं, मुनिवर अग्रवि भाग ।
दिक्षा लेई तिहां निर्मली, छोडि परिग्रह भाग ॥५॥६२२॥

ढाल वाजारीनीर-राग गुडी

मुकि परिग्रह बाह्य, आभ्यंतर मूकी वली ।
चेतन हीयलारे ॥१॥६२३॥

मुकट कुंडल बाजूबंध हार ऊतारि मन रली । चेतन॥१॥६२४॥

शरीर तणां जे वस्त्र सार शृंगार मूंकि सही ।
स्वकीय हस्ति करि लोच, पंच मुष्टी तिहां रही ॥चेतन॥२॥६२५॥

पंच महाव्रतन भार, पंच सुमति भण गुप्त सुं ।
चारित्र तेर प्रकार, तेह धरि मन सुध सुं । चेतन॥३॥६२६॥

छह आवश्यक सार मूल गुण धरि वली ।
इंद्रीय पंच सहित, विषयनि वारि ते वली ॥चेतन॥४॥६२७॥

गुरनु लही ऊपदेश, लीधी दिक्षा तिहां सही ।
परिसह सहिरे बावीस, ध्यान धरि मन रही ॥५॥६२८॥

हरष्यु श्रेणिकराय स्वजन लोक सहू हरषीउ ।
केतले लीधां समकित केतले व्रत तिहां लीधां ।।चेतन।।६।।६२६।।

पंचसि चोर सहित विद्युत्प्रभ तिहां आवीउ ।
प्रणमी मुनिवर पाय दिक्षा लेईनि भावीउ ।।चेतन।।७।।६३०।।

मुकी परिग्रह सर्व चारित्र भार तिहां धरी ।
हूउ मुनिवर राय सर्व सम तिहां परहरी ।।८।।६३१।।

संसार जाणी असार, अर्हद्दास मुनिवर हूउ ।
लीधी दीक्षा सार, ध्यान धरि मुनिवर सहू ।।चेतन।।९।।६३२।।

जिनमती जे वली माय, दिक्षा लीधी निर्मली ।
पदमश्री आदि नारि दीक्षा लीधी मनरली ।।चेतन।।१०।।६३३।।

सुप्रभा प्रणमीय पाय, शास्त्र भणी तिहां रही ।
तप जप करि अपार, स्त्री लिंग हणवा ते सही ।।चेतन।।११।।६३४।।

श्रेणिक धरी सहू कोय सोधर्म्म मुनी नमी चालीया ।
आव्या हो नगर मझार, धर्म ध्यानि करी बासी ।।चेतन।।१२।।६३५।।

एक दिवस जंबूस्वाम नगर प्रतिवली आवीउ ।
ईर्यापथ सोधत, नीची दृष्टि करी आवीउ ।।चेतन।।१३।।६३।।६

नगर तणी जे नारि, भवन लोकन करि घणु ।
पड़घाई मुनिराय, भाव सहित सुं अति घणउ ।।चेतन।।१४।।६३७।।

बोलि हो नगरी नारि, च्यार नार छोडी करी ।
परहरी मायनि बाप, भव भ्रणु मनसु धरी ।।चेतन।।१५।।६३८।।

लीधउ हो संयम भार इह सरीखउ को नहीं ।
इहवी बोलइ सहू भाति, नगर लोक नारी रही ।।चेतन।।१६।।६३९।।

जंबू हो मुनिवर राय, जिनदास घिर आवीउ ।
पडघाई मुनिराइ, आहार देईनि आवीउ ।।चेतन।।१७।।६४०।।

तिणि अवसर जिनदास, पुण्य करि नव पिरा ।
आहार अनंतर नाम, रत्न वृष्टि हुई घरि ।।चेतन।।१८।।६४१।।

धर्म वृद्धि कही तेण, तप स्थानिक मुनि आवीउ ।
मुगति तणि वली हेतु, अधिक तपि करी आवीउ ।।१९।।६४२।।

ध्यानि धरि मुनिराय, विपुलाचल पर्वत रही ।
शुक्ल ध्यान चढी स्वाम, मोह समाधि तिहां सही ।।२०।।६४३।।

सोधर्म मुनि तिणी ठाम, आठ कर्म हणी थया ।
प्रथम पक्ष माघ मास, सप्तमी दिन मुगति गया ।।२१।।६४४।।

दूहा—तिणि दिन जंबू केवली, चडीउ उपसम श्रेणी ।
कर्म सवे समावतु, चडीउ क्षपकह श्रेणि ।।१।।६४५।।

तिसठ प्रकृति तिहां क्षय करी, घात कर्म करी हानि ।
गुणस्थानिक लही तेरमु ऊपनु केवल ज्ञान ।।२।।६४६।।

इंद्रादिक तिहां आवीया, आव्या चतुर्निकाय ।
गंध कुटी रची भली, प्रणमी केवलि पाय ।।३।।६४७।।

धर्म प्रकास्यं केवली, सागार अणगार ।
बार व्रत प्रकासीयां किया ते त्रेपन सार ।।४।।६४८।।

आठ मूलगुण कह्या, श्रावक नो छह कर्म ।
छ आवश्यक मूलगुण कहइ ते यत्न धर्म ।।५।।६४९।।

धर्म सुणी राजादिक, आव्या श्वसुर मझार ।
निज स्थानिक देव गया, करता जय जय कार ।।६।।६५०।।

विहार करि वली केवली, पुर पाटणनिग्राम ।
भव्य जीव मति बूझवी, आव्या विपुल गिरि ठाम ।।७।।६५१।।

ध्यान धरी तिहां मुनिवरि, बहुत्यरि प्रकृति करि घात ।
गुणास्थानिक लह्यु, चौदमु, क्षय करी कर्म प्रघात ।।८।।६५२।।

तेर प्रकृति तिहां क्षय करि, रह्यी तिहुं अधर पंच ।
हूया ते मुगति नाराजीया, सौख्य तणु लही संच ।।९।।६५३।।

ढाल दशमी यशोधरनी

जिहां नही ए जामण मरण रूप रस जिहां नही ए ।
जिहां नही ए भोग वियोग, भोग सौख जिहां नहीं ए ।।१।।६५४।।

ते स्थानिक ए प्राम्यु कुमार, आठ कर्म हणी करीए ।
प्राम्यु मुगति निवास, सार सौख वली धरीए ।।२।।६५५।।

तिहां नहीं ए देशनि ग्राम पुर पाटण जिहां नही ए ।
जिहा नही ए शीतनि उष्ण, वर्ण गंध जिहां नही ए ।।३।।६५६।।

जिहां नहीं ए मातनि तात, पुत्र कलित्र जिहां नहीं ए ।
जिहां नहीं ए योग वियोग, रात्रि दिवस जिहां नहीं ए ।।४।।६५७।।

जिहां नहीं ए काय विकार, सौख्य अनंत जिहां अछिए ।
जिहा नहीं ए आयु नु अंत, तेज अनंतु जिहां अछि ए ते स्थानि ।।५।।६५८।।

जिहां नही ए जीव समास, गुणस्थानिक जिहां नहीं ए ।
जिहां नहीं ए सञाचार, छमयाति तिहां नही ए ।।६।।६५९।।

जिहां नहीं ए मार्गणा नव सिद्ध मार्गणा जिहां ।
अछिए जिहां अछि केवल ज्ञान, केवल दर्शन जिहां अछिए ।।७।।६६०।।

जिहां पखिइ अयक 'सम्यकत्व, कलाहृरक जिहां मक्रिद् ।
पर्वतालीसए योजन लाख, ल्याविक पीम्यु ते मक्ति ।।१०।।६६१।।

महोछव ए कीउ निर्व्वाण, देवे मिली मननी रलीए ।
गया सहुए निज निज ठाम, संस्कारी काया वलीए ।।११।।६६२।।

दूहा—अर्हदास मुनि तप करी, छठा स्वर्ग मझार ।
इंद्र तणी पदवी लही, भोगवि सौख्य अपार ।।१।।६६३।।

स्त्री लिंग छेदी जिनमती तपहु तणी परभाव ।
ब्रह्मोत्तर पर्त्तेंद्र हूउ, भोगवि सौख्य स्वभाव ।।२।।६६४।।

वासपूज्य चंपापुरी, तिहां अई च्यारि नारी ।
तप जप संयम आदरी, ध्यान धरी अवतार ।।३।।६६५।।

सन्यासि कालहु करी, स्त्री लिंग छेदी हेव ।
स्वर्ग महर्द्धिक देवता, अवतरीया तत खेव ।।४।।६६६।।

विद्युच्चर मुनि तप करी, सही परीसह भार ।
काल करी सर्वार्थसिद्धि, अवतरीउ भवतार ।।५।।६६७।।

तेत्रीस सागर आयुषु, प्रामी मन उल्लास ।
मध्य लोक वली अवतरी, लहिसि मुक्ति निवास ।।६।।६६८।।

प्रशस्ति

काष्ट संघ जगि जाणीइ, नंदीयड गछ मझार ।
रामसेन मुनिवर हुआ, गछ तणा सणगार ।।७।।६६९।।

तेह अनुक्रमि मुनिवर हुआ, सोमकीर्ति सुविचार ।
ज्ञान विज्ञानइ आगला, सास्त्र तणा भण्डार ।।८।।६७०।।

तसु पट्टि अति रूयडा, विजयसेन जयवंत ।
तप जप ध्यानि मंडीया, क्षमावंत गुणवंत ।।९।।६७१।।

मही मंडल महिमा च्यउ, महीमलि मोटु नाम ।
यशकीरति यश प्रागला, श्री यशकीर्ति अभिराम ।।१०।।६७२।।

तस पट्टि उदयाचलिइ, ऊग्यु अभिनव भांण ।
वाणी जन मन मोहीया, श्री उदयसेन सूरी जाण ।।११।।६७३।।

तस शिष्यइ मति रूयडउ, रच्यु रास मनोहार ।
त्रिभुवनकीर्तिइ सूरीश्वरइ, सौख्य तणु भावार ।।१२।।६७४।।

जे कवीयण मति रूयडा, तेणे सोधवु एह ।
ऊरू करी विस्तारवु, दोष न ग्रांमि जेह ।।१३।।६७५।।

जांइ मंडल महीधर, जां सायर ससि सूर ।
तां लगिइ रहु रास, जंबू स्वामिनु ज्ञान तणु ए ।।१४।।६७६।।

संवत सोल पंचवीसि, जवाछ नयर मझार ।
भुवन शांति जिनवर तणि, रच्यु रास मनोहार ।।१५।।६७७।।

इति जंबूस्वामी रास समाप्त ।

संवत् १६४४ वर्षे फागुण मासे शुक्ल पक्षे अष्टमं सुक्रवासरे वडवाल नगरे आदिनाथ चैत्यालये श्रीमत्काष्ठा संघे नंदीतट गच्छे विद्यागणे भ० विश्वभूषण तत् शिष्य ब्र० सामल लखांत ।
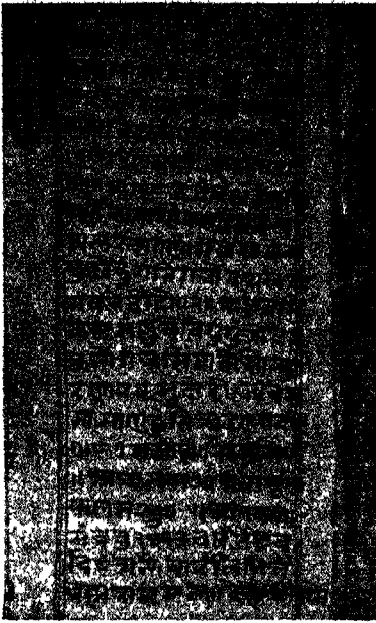
← महाकवि ब्रह्म रायमल्ल द्वारा संवत् १६१३ में देहली में लिपिबद्ध पांडुलिपि के अन्तिम पृष्ठ का चित्र।
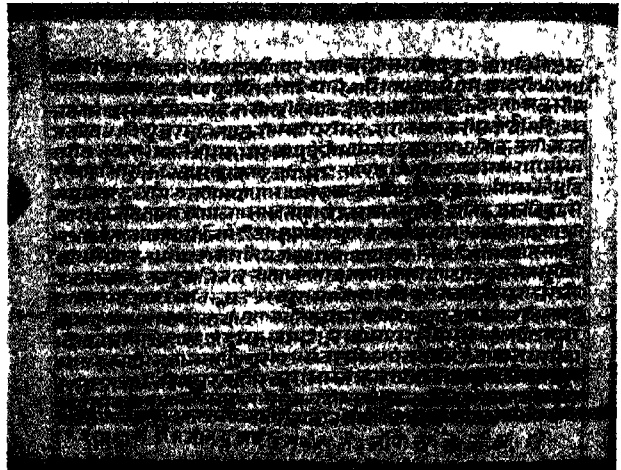
→ कविवर त्रिभुवनकीर्ति द्वारा निबद्ध जम्बूस्वामीरास की पांडुलिपि का अंतिम पृष्ठ का चित्र।